A PEER REVIEWED JOURNAL ISSN 2347 8152
अंक :10

शोध दर्पण

भूमंडलीकरण विशेषांक

© हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम
2020

हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम
2020

A PEER REVIEWED JOURNAL

शोध दर्पण

हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम

2020

A PEER REVIEWED JOURNAL

परामर्श मंडल

डॉ. गरिमा श्रीवास्तव, प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू . नई दिल्ली

डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव, प्रोफेसर, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय , नई दिल्ली

संपादक

प्रोफ. (डॉ.) आर . जयचंद्रन

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

सह- संपादिका

डॉ. लीना बी .एल

सहायक आचार्य

संपादक मंडल

डॉ. सी . एस . सुचित

ISSN: 2347-8152

©

संपादक

HINDI SHODH DARPAN- KATHA SAHITHY VISHESHANK-EDITOR DR.R.JAYACHANDRAN, HEAD, DEPARTMENT OF HINDI.PUBLISHED BY DEPARTMENT OF HINDI, UNIVERSITY OF KERALA,KARIAVATTOM, THIRUVANANTHAPURAM-695581. EDITORIAL ASSISTANCE, COVER PAGE DESIGNING AND LAYOUT SHIJU S.G PRINTED AND PUBLISHED BY KERALA UNIVERSITY PRESS, PALAYAM, THIRUVANANTHAPURAM

संपादकीय

शोध दर्पण का प्रस्तुत अंक भूमंडलीकरण पर केन्द्रित विशेषांक है । इस अंक में हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव किस प्रकार हावी हुआ है, इस पर विचार व्यक्त करते हुए लिखे गए आलेख हैं ।

हमें यकीन है कि इस अंक के आलेख पाठकों के चिंतन-मनन की प्रक्रिया को नयी ऊर्जा प्रदान करने में कामयाब साबित होंगे ।

शोध दर्पण के प्रस्तुत अंक के लिए वित्तीय सहायता केरल विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई है । इसलिए हम केरल विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति आभार प्रकट करना चाहेंगे।

इस अंक को साकार बनाने में जिन लोगों ने लेख भेजकर सहयोग दिया है, उन सब के प्रति हम आभारी हैं ।

मुद्रण कार्य केरल विश्वविद्यालय के मुद्रणालय में हुआ है । इसके लिए निरंतर प्रयास किए मुद्रणालय के अधीक्षक एवं अन्य कर्मचारियों के प्रति भी हम आभारी हैं ।

संपादक

प्रोफेसर.(डॉ.)आर. जयचंद्रन

शोध दर्पण - अनुक्रमणिका

1. समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में भूमंडलीकरण - डॉ. सी. एस .सुचित
2. मौन प्रतिरोध से मुक्तिचेतना की ओर - डॉ.शामली एम.एम
3. लोकतांत्रिकता के मायने पर फिलॉसफर की परख - डॉ षीला कुमारी एल
4. भूमण्डलीकृत संस्कृति का समाधान ढूँढते हैं समकालीन हिन्दी उपन्यास - डॉ. के. वनजा
5. वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी उपन्यास - डॉ. शबाना हबीब
6. वैश्वीकृत भारतीय समाज और 'दौड' उपन्यास - डॉ. लता डी
7. 'नौकर की कमीज़' में चित्रित वैश्वीकृत स्वरूप - कृष्णप्रीति ए.आर
8. 'ग्लोबल गाँव के देवता' : वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी जीवन का आख्यान - डॉ.जयकृष्णन.जे
9. 'सपनों की होम डिलिवरी ': भूमंडलीकृत भारतीय पारिवारिक संरचना का सही दस्तावेज़ - डॉ. पी. गीता
10. "मोबाइल" उपन्यास - वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में - डॉ. आशा एस नायर
11. हिंदी उपन्यास : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में - डॉ महेश्वरी एस
12. नासिरा शर्मा के उपन्यासों में वैश्वीकरण - डॉ. के.जयकुमारी
13. समकालीन उपन्यासों में बदलते मानवीय सम्बन्ध - डॉ. ज्योति एन
14. हीरा भोजपुरी का हेराया बाजार में - राजीव रंजन गिरि
15. दलित संघर्ष और संगठन की राजनीति - डॉ.सुमा एस
16. वैश्विक स्तर पर स्त्री की भूमिका : 'दस द्वारे का पिंजरे' के संदर्भ में - डॉ सुधा ए . एस
17. वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन - डॉ. एस. सुनिल कुमार, अनिताराणी .आर
18. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास - नीतू एस. एस

19. जाल बिछा इंटेरनेट: शब्द बनाम पखेरू - डॉ. आशालता जे

20. 'रेहन पर रग्घू' में वैश्वीकरण और बिगड़ते मानवीय मूल्य - श्रीनिता पी.आर

21. भूमंडलीकरण का जादूगर - तू है बड़ा बाज़ीगर (रणेन्द्र के उपन्यास ' गायब होता देश ' के विशेष संदर्भ में) - डॉ. संध्या मेनन

22. 'हम यहाँ थे' उपन्यास में उत्तराधुनिक चिंतन - षिजु एस.जी

23. लाल पसीना और अफीम सागर में उपनिवेशवाद का संघात : एक अध्ययन - अरुंधती मोहन

24. 'वैश्विकता के परिप्रेक्ष्य में 'शब्द पखेरू' - डॉ इन्दू के.वी

25. वैश्वीकरण - प्रो. एन. मोहनन

26. आधुनिकोत्तर स्थिति गति - डॉ.षीला टी नायर

27. 'विज़न' उपन्यास में नारी और समाज का वैश्विक दृष्टिकोण - डॉ. लीना बी.एल

28. समकालीन यथार्थ से मुठभेड़ करता उपन्यास - 'गूँगी रुलाई का कोरस' - प्रो. (डॉ.) एस.आर. जयश्री

1

समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में भूमंडलीकरण

डॉ. सी.एस. सुचित

जब हमारे विभाग की तरफ़ से 'शोध दर्पण' केलिए "समकालीन हिन्दी उपन्यास : वैश्वीकरण के दौर में" विषय को चुन लिया गया तब जल्दी ही अलका सरावगी का उपन्यास 'शेष कादंबरी' की ये पंक्तियाँ ही याद आयीं- "यहाँ दुनिया का सबसे बड़ा दादा बिल क्लिंटन अपनी दादागिरी करने दिल्ली आया हुआ है। उसके स्वागत के लिए लेफ्ट हो या राइट सब रेड कार्पेट की तरह बिछे हुए हैं। उससे हाथ मिलाने केलिए पार्लियामेंट में धक्का- मुक्की तक हुई। आज दुनिया का सबसे पवित्र शब्द तुम जानती हो नानी क्या है, 'ग्लोबलाइज़ेशन।' "[1] उपभोक्तावादी संस्कृति, भोगो – फेंको संस्कृति, बाज़ारवाद सब भूमण्डलीकरण की उपज है। हमारी संस्कृति को इसने खतरे में डाल दिया है कि लोग सभ्यता, संस्कृति, देश, आत्मा तथा मानवीय मूल्यों तक बेचने को उतारू हो चुके हैं। शरदसिंह कृत ' पिछले पन्ने की औरतें ', ममता कालिया के 'दौड ', चित्रा मुद्गल के ' आवाँ ', लता शर्मा के 'सही नाप के जूते ', अलका सरावगी के 'शेष कादंबरी' , 'एक ब्रेक के बाद , मैत्रेयी पुष्पा के 'इदंनमम' आदि में वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव का खुला चित्रण है।

भूमण्डलीकरण, विज्ञापनबाज़ी, व्यावसायिकता, आजीविकावाद, उपभोक्तावाद आदि के मिश्रण से बने मानव की कहानी प्रस्तुत करनेवाला सफल उपन्यास है 'दौड ' । ममता कालिया ने बाज़ारवाद को केन्द्र में रखकर औद्योगीकरण व विज्ञान- तकनीक के विकास के परिणाम स्वरूप उत्पन्न मूल्यहीनता, संवेदन शून्यता जैसी समस्याओं को 'दौड' में खड़ा कर दिया है। लुभावने विज्ञापन एवं प्रलोभन प्रस्तुत करके युवाओं को आकर्षित करनेवाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की चमकीली दुनिया का पोल खोलने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास में है। उपन्यास का नायक पवन वेतन वृद्धि, कम्पनियों की चालें, इंटरव्यू, माल-सप्लाई में उलझा हुआ है कि परिवार के बारे में सोचने का भी उसे समय नहीं है। धन राशि की दौड में घूमते समकालीन युवा समाज का खुला चित्रण उपन्यास में है। "मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो न हो, कंज़्यूमर कल्चर ज़रूर हो। मूझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[2] पवन के मन की व्यावसायिक चिंता की गहराई प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट है।

शरद सिंह का उपन्यास ' पिछले पन्ने की औरतें ' व्यावसायिक विरोधाभास का नमूना पेश करता है। भूमण्डलीकरण का खुला चित्र पेश करनेवाला यह उपन्यास व्यवसाय का और एक चेहरा पाठकों के सामने पेश करता है। बेडिया समाज के लोगों को अपने पेट भरने के लिए और पैसा कमाने के लिए बाज़ारवाद का सहारा लेना पड़ता है। नृत्य, शरीर विक्रय, चोरी करके पैसा कमाते हैं और पकड़ी जाए तो देह परोसकर छुटकारा पाते हैं। आत्मसम्मान व मानवीय मूल्यों को खोकर ये लोग कमाई करते हैं। धनिक वर्ग पैसा फेंककर इन पर यौनात्याचार करते हैं। पैसे के लालच में ये बेडनियाँ नरम बिस्तर से लेकर चलती गाडियों में भी यौनात्याचार सहन करती हैं। "अन्य व्यवसाय में विक्रेता प्रथम दर्जे में तथा ग्राहक दोयम दर्जे में होता है। किन्तु इस व्यवसाय में ग्राहक रूपी पुरुष प्रथम दर्जे में तथा विक्रेता रूपी स्त्री दोयम दर्जे में होती है।"[3]

उपभोक्तावादी संस्कृति में नारी केवल एक बिकाऊ माल बन गयी है। बहुराष्टीय कंपनियाँ अपना बाज़ार बनाने के लिए नारी का शोषण करती रहती हैं। उपभोक्तावाद- विज्ञापन- नारी इन तीनों का अटूट सम्बन्ध है। विज्ञापन की ओर सबसे पहले आकृष्ट होनेवाले नारी है। इसका फायदा उठाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना बाज़ार बनाने के लिए सुंदरियों का शोषण करती हैं। चित्रा मुद्गल का ' आवाँ ' में स्त्री ही स्त्री का दुश्मन बन जाने का चित्र है। भौतिक सुख- सुविधाओं के चक्कर में, धन के लालच में अपना मान- सम्मान खो बैठनेवाली स्त्रियों की संख्या दिन- ब-दिन बढ़ती जा रही है। ' आवाँ ' में ज्वैलर्स की मालकिन अंजना बासवानी नारी शोषण की दलाली का काम करती है। अपने जुबान की मिठास से नमिता जैसी स्त्रियों को छल – कपट के जाल में फँसाती है। उनकी राय में ताकत बड़े नोटों में है। "पैसे की ताकत मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है। पैसे की ताकत से एक बुद्धिमान का मस्तिष्क और सबल की शक्ति खरीद, बडी आसानी से अपने हित के लिए उसका उपयोग कर समाज और संसार का सर्वाधिक समर्थ व्यक्ति बन सकता है।"[4]

आज कमोडिटी का युग है। सब कुछ बिकाऊ माल है। लता शर्मा का नवीनतम उपन्यास ' सही नाप के जूते' में बाज़ार देखते – देखते बाज़ार हो जाने की व्यथा देख सकते हैं। विज्ञापन की चकाचौंध भरी ज़िन्दगी की ओर आकृष्ट होनेवाली स्त्रियाँ बाज़ार की गंदी, मटमैली ज़िन्दगी की ओर धकेल दी जाती हैं । "क्या करना है डॉक्टर या इंजीनियर बनकर। जब मिस इंडिया बनने केलिए सिर्फ ग्रेजुएट होना अनिवार्य है। तो फिर चलो फिनिशिंग स्कूल, सीखो कैट वॉक और मोहक अंदाज़। जॉइन करो एक्ज़ोटिक क्लब। भरो मिस इंडिया बनने का फार्म। कामयाबी आगे खड़ी इंतज़ार कर रही है। बनो करोड़ों दिलों की मलिका और अंततः बदल जाओ खुद एक कमोडिटी में। खरीदो भी और बिकती भी जाओ।"[5]

अलका सरावगी का उपन्यास 'शेष कादंबरी' भूमण्डलीकृत समाज की विडम्बनाओं का सच्चा चित्र पेश करता है। धनलोलुपता और लालच के कारण लोग अपनी संस्कृति को भी बेचने के लिए तुले हुए हैं। अमिताभ बच्चन का 'कौन बनेगा करोडपति' कार्यक्रम के द्वारा लालच और 'विकल्प' का वर्णन करते हुए देवीदत्त मामा बताता है- "तभी अमिताभ बच्चन पूरे देश की सड़कें, सिनेमा हॉल, रेस्टारेंट एक घंटे के लिए खाली करवा सकता है। वह देश का लालच भुना रहता है। अभी विदेशियों को लालच नीम, हल्दी, बासमती बेचता जा रहा है, उसके बाद धूप बेची जाएगी। ...धूप भी बेची जा सकती है।"[6]

अलका सरावगी के ' एक ब्रेक के बाद ' में परंपरागत कलाओं तक का बाज़ारीकरण हम देख सकते हैं। कलाओं की अपनी महिमा थी। पर आज कलाओं को भी बिज़नेज़ की सीमा पर लाया है। उपन्यास का पात्र भट्ट कला का मुनाफाखोर व्यापारी है। वह एक आर्ट गैलरी शुरू करता है। उसके ज़रिए नाम और दाम कमाना उनका लक्ष्य है। इसकी संभावनाएँ बताकर विदेशी मुद्रा विनिमय के मास्टर जमाल मकलाई को बता देता है- "भारतीय समकालीन कला देश का अगला इन्फोसिस बन सकती है। "[7]

भट्ट यही चाहता है कि भारतीय कलाओं को विदेश में लाकर पैसा वसूल करना है। क्योंकि विदेशियों को भारतीय कला एवं संस्कृति से गहरा प्यार है। अलका सरावगी का उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' का भी मुख्य प्रतिपाद्य विषय बाज़ारीकरण है।

उपभोक्तावादी दुनिया में सबसे अधिक फायदा उठानेवालों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का स्थान बडा है। ये कॉर्पोरेट कंपनियाँ पूरे देश को लूट रही हैं। लेकिन आम जनता इसके बारे में चिंतित नहीं। उनके दिल- दिमाग में मुनाफे की चिन्ता मात्र है। आज के नवयुवकों के मन में तरक्की पाकर धन कमाने की इच्छा मात्र है। शहर के सबसे ज़्यादा पैसा कमानेवाले मार्केटिंग

कन्सल्टेंट के. वी. शंकर अय्यर का मत इस प्रकार है- "अब नौकरी की दुनिया खरीददारों की मार्केट नहीं है, बेचनेवालों की मार्केट है। जो बीस हज़ार की नौकरी छोडता है, वह जानता है कि पच्चीस हज़ार की नौकरी उसके लिए तैयार है। "[8]

इसी बाज़ारीकरण के फलस्वरूप नौजवान कपड़े बदलने के समान दिन- ब- दिन नौकरियाँ बदल रहे हैं। ऊँचे ओहदे पाने और अपने सपनों की मंजिलें चढ़ने के लिए प्रयासरत युवा पीढ़ी को चंगुल में फँसाने की कोशिश करती रहती हैं ये मल्टीनेशनल कंपनियाँ।

इस प्रकार परखें तो पता चलेगा कि आजकल शिक्षा, कला, सेवा, संस्कृति, नीति, सब भूमण्डलीकृत बाज़ार में बिकाऊ माल मात्र हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था का भाग बनना ज़रूरी है, पर इसके दुष्प्रभावों से अलग रहना हमारा कर्तव्य है। अगर वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण सामाजिक असंतुलन को बढ़ावा देता है, तो सतर्क रहना चाहिए। किसी भी देश के विकास के प्रभाव का वास्तविक मापदंड आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध करवाना है। पर आज इस वैश्विक उदारीकरण ने अमीर और गरीब के बीच की खाई को बढ़ावा दिया है। अगर वैश्वीकरण का उपयोग ठीक तरह से हो जाए तो सभी को लाभ (absolute advantage) और राष्ट्रों के बीच की खाई नहीं रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अलका सरावगी, शेष कादम्बरी, पृ.13.

2. ममता कालिया, दौड, पृ.18.

3. शरदसिंह, पिछले पन्ने की औरतें, पृ.226.

4. चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृ.201.

5. लता शर्मा, सही नाप के जूते, पृष्ठावरण से।

6. अलका सरावगी, शेष कादम्बरी, पृ.117.

7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृ.198-199.

8. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृ.10

डॉ. सी. एस .सुचित

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

केरल विश्वविद्यालय।

****

2

मौन प्रतिरोध से मुक्तिचेतना की ओर

डॉ. शामली एम .एम

वैश्वीकरण एक व्यापक प्रक्रिया का नामकरण है जो राजनीति ,तकनीकी, अर्थव्यवस्था, सभ्यता एवं संस्कृति को गतिशील बना देती है । इससे भौतिक संसार के फासले तो मिटते ही जाते हैं साथ ही मूल्यों ,मान्यताओं एवं सोच में भी नए मान-प्रतिमान की स्थापना होने लगती है । युग में आये इस नए परिवर्तन के खास हिस्सेदार बने इक्कीसवीं सदी के युवावर्ग । नई रीति और नए रूप-रंग में रोज़गार के दरवाज़े उनके सामने खोल दिये गए । व्यावसायिकता से आजीविका वाद की दूरी कम होने लगी । आजीविकावाद के दबोच में वैयक्तिक एवं पारिवारिक संबंध डाँवाडोल होने लगा । फलस्वरूप नए-नए जीवन मूल्यों की स्थापना होने लगी और इन्हें एक व्यापक फलक मिलने लगा । धीरे-धीरे साहित्यिक धरातल में भी इसे देखने की कोशिश शुरू होने लगी । इन्हीं सच्चाइयों की बुलन्द आवाज़ श्रीमती क्षमा शर्मा के 'मोबाइल' उपन्यास में गूंज उठती है ।

कथा साहित्य के माध्यम से सामाजिक न्याय पर आधारित नई मूल्य व्यवस्था की स्थापना करने वालों में श्रीमती क्षमा शर्मा का नाम अव्वल आता है । समाजिक न्याय के विषय में स्त्री सुरक्षा या स्त्री स्वतंत्रता को ही लें, आज भी स्त्री स्वतंत्रता शब्द को सीमित अर्थ में ही लिया जाता है । क्योंकि ज़्यादातर देखा गया है कि स्त्री स्वतंत्रता को गलत ही मानने लगे हैं । इसके पीछे की राजनीति तो बिल्कुल पुरुषसत्तात्मक ही है । स्त्री स्वतंत्रता के अर्थ को स्त्री द्वारा किसी भी बन्धन

को न मानना,सिर्फ उसी की इच्छाओं की पूर्ति आदि के रूप में माना जाता है । ऐसा भी मान लिया जाता है कि स्त्री अगर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है तो वह समाज के सभी नियमों को ठुकराकर स्वच्छंद जीवन जीने लगेगी । लेकिन श्रीमती क्षमा जी ने मोबाईल उपन्यास की नायिका मधुलिका द्वारा स्त्री स्वतंत्रता के वास्तविक अर्थ को तर्कशुद्ध रूप में परिभाषित किया है।

शिक्षा के बलबूते पर मिली नौकरियों ने आज की नारी में आत्मविश्वास, आर्थिक सुरक्षा तथा आत्म जागरण प्रदान किया है । इस आत्मजगरण से जागृत संघर्षचेतना आज की नारियों में प्रबल मात्रा में दिखाई देती है । मोबाइल उपन्यास के तीनों नारी पात्र ऐसे ही आत्मनिर्भर नारी हैं । एक है मधुलिका शुक्ल जो उपन्यास की नायिका है । सम्पूर्ण उपन्यास की कथा इसके आगे-पीछे घूमती है । आधुनिक विचारवाली होने के साथ-साथ आत्मगौरव और आत्मसम्मान को साथ ले चलने वाली नारी है मधु । पढ़ी-लिखी कामकाजी होने के साथ-साथ अपनी गृहस्थी भी सफलतापूर्वक ले जाने वाली नारी है वह । दफ़्तर की सहकर्मियों के बीच काम करते वक़्त भी अपना मत एवं दृष्टिकोण बिना किसी डर के बता देती है । होशियार होने के बावजूद वह नवीन खन्ना के प्रेमजाल में फँस जाती है । सबकुछ जानते हुए भी धोखा खाती है । वह टूटती है,तड़पती है,बिलखती है, पर हिम्मत नहीं हारती । कुँवारी लड़की का गर्भवती होना और जुड़वा बच्चियों को जनम देना तो एक क्रांतिकारक कदम ही है । बेटियों को अभिशाप मानकर भ्रूणहत्या करने वाले इस समय में दोनों बच्चियों को बिना किसी पुरुष की सहायता से पालकर बढ़ा करना कोई छोटा-मोटा काम नहीं था । सम्पूर्ण नारी जाति के लिए मधु एक मिसाल है । बिना किसी से शिकायत किए वह एक माँ की जिम्मदारियों को भरपूर निभाती है । प्रेमिका से बढ़कर एक माँ की ज़िम्मेदारियाँ मधु के ही शब्दों से खूब झलकती हैं। "अगर मैं ने उस वक़्त तुमसे नाराज़

होकर उन्हें खत्म कर दिया होता,तो हो सकता है ज़िन्दगी भर मैं इन बच्चियों को देखने केलिए तरस रही होती''[1]।

मोबाइल उपन्यास की दूसरी नारी पात्र है फ़रहत । मधु की सहेली और रूममेट। मुस्लिम धर्म के पिछड़ेपन और कट्टरता का विरोध करनेवाली है फ़रहत। "पिता अमरीका गए तो लौटे नहीं। वहीं बस गए,एक के बाद दूसरी और तीसरी सौतन उसे मंज़ूर नहीं है"[2]। शादी के विषय में फ़रहत का अपना विचार यही है। फ़रहत,मधु की हमउम्र की है फिर भी दोनों अलग अलग आदर्शों पर विश्वास रखनेवाली दोस्त हैं । कभी-कभी साथियों के मुस्लिम विरोधी बयान से फ़रहत आहत हो जाती है । फिर भी मुस्लिम कट्टरता एवं खोखले विचारों पर अपना विचार प्रकट करनेवाली है फ़रहत । हर बात पर उत्तराधुनिकता और विकास के नारे लगाने वाले समाज से प्रस्तुत उपन्यास फ़रहत के द्वारा काफ़ी सवालातें पूछता है । उपन्यास की तीसरी सशक्त नारी है मधु की माँ । बहुत आज़ाद खयालों वाली है पर मौन प्रतिरोध को अपनाने वाली होती हुई भी आत्म गौरव पर बल देने वाली माँ है । उनका मानना है "अपने पैरों पर खड़े हों ,तभी आत्मनिर्भर हो सकते हैं"[3] । हमेशा वह कहती है जो शिक्षा दी,उसके खिलाफ कैसे खड़ी हों । बच्चों की खुशी के लिए खासतौर पर मधु की खुशी केलिए वह नौकरी से इस्तीफा भी दे देती है । इसप्रकार अपनी-अपनी हैसियत से बढ़कर संघर्षचेतना से भरे व्यक्तित्व हैं ये तीनों पात्र । किसी भी हालत में ये तीनों खुद को किसी पुरुष से कम नहीं मानतीं और पुरुष को सर्वोच्च भी नहीं समझतीं। ये तो सिर्फ़ आदर-सम्मान ही चाहती हैं,समानता की मांग भी नहीं करती हैं। आज शिक्षित नारी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में और देश-विदेशों में भी पुरूष के साथ ज़िम्मेदारी के सर्वोच्च पदों में रहकर अपना योगदान प्रदान करती आ रही है। साथ ही घर-गृहस्थी की ज़िम्मेदारी भी बखूबी

निभाती है। पारिवारिक जीवन के प्रति आधुनिक सोच रखते हुए भी है, यह नए युगीन मूल्यों की पक्षधर भी है।

नारी के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि निषेध तत्व ही नारी है । जहाँ कहीं अपने आप को उत्सर्ग करने की ,अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है वहीं नारी है । जहाँ कहीं दुख-सुख की लाख धाराओं में अपने को दलित दृष्टा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना है,वही नारी तत्व है । नारी को निषेध रूप मानते हैं । वह आनंद-भोग केलिए नहीं आती बल्कि आनंद लुटाने केलिए आती है । जैसे-जैसे वक़्त गुज़रता गया मनुष्य सभ्यता एवं विकास की राहों पर अग्रसर होता गया । स्त्रियों के प्रति समाज का रवैया भी बदलने लगा । स्त्री समूह में यह भावना घर बनाने लगी कि त्याग, बलिदान, सहनशीलता आदि परंपरागत गुण के अलावा प्रतिरोध, गौरव, साहस, महत्वाकांक्षा आदि को भी स्त्री हथियार या कवच की तरह इस्तेमाल कर सकती है । आजकल अधिकार, प्रतिरोध, प्रतिशोध आदि रूपों में नारी का बदलाव होने लगा । पुरुष के वर्चस्व को न मानते हुए ,अपने अधिकारों केलिए लड़ने को वह तैयार हो गयी है ।

रूढ़ी , रिवाज़,परंपरा,अंधविश्वास आदि को ठुकराकर वह आत्मसम्मान के साथ आगे बढ़ने लगी । लज्जित होना या लज्जा को अब वह आभूषण नहीं मानती । मधु भी ऐसे ही आदर्श वाली आत्मनिर्भर नारी है । अविवाहित रहकर वह पूरे लगन एवं ईमानदारी से परिश्रम कर कामयाबी की ज़िन्दगी जीना पसंद करती है । किसी पुरुष के बंधन में सुरक्षित रहने से ज़्यादा खुद की सुरक्षा खुद करना वह बेहतर समझती है । जब मधु नौकरी केलिए गाँव से शहर आती है तो ताईजी शुभ चिंतक की तरह कहती है । "करेगी तो वही जो तेरे माँ-बाप चाहेंगे, तू चाहेगी । हमारा तो समझाने का काम है । बाहर जाकर ज़रा संभलकर रहना। लड़कियों को बिगड़ते

देर नहीं लगती"[4] । ताईजी की ईंट जैसे मज़बूत तानों का जवाब मधु ताकतवर पत्थर से ही देती है । "आप मेरी चिंता मत कीजिए। पहले विट्ठल भय्या को संभालिए जो रात-दिन शराब पीकर औंधे मुँह पड़े रहते हैं"5।

आधुनिक नारी की आत्मनिर्भरता में सब से अहम है उसकी संकल्प शक्ति । दुनिया के किसी भी समाज में नारी को अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा केलिए हर कदम पर उसे विद्रोह और संघर्ष करना पड़ता है । संकल्प शक्ति के सहारे समाज के कटु यथार्थों का सामना वह करती है । आज की नारी शिक्षित होने से अपने व्यक्तित्व के प्रति भी जागरूक है,साथ ही अपने अधिकार और आत्मगौरव की चिंता भी करती है । अपनी ओर आने वाली घिनौनी बातों को भी वह पिछली पीढ़ियों की तरह सहन नहीं करती गयी । अपने हक़ केलिए लड़ना वह जानती थी उसे मालूम था अब मौन नहीं रहना है बल्कि प्रतिरोध ही करना है । "पहली बात तो ताईजी अपनी छोटी ही नहीं है । फिर हमारी दादी ने आपको नहीं निकाला तो मेरी सास मुझे कैसे निकाल देगी?"[5] । इसतरह आत्मगौरव को थामे रहकर दूसरों द्वारा आरोपित बातों का भी प्रतिरोध वह करती है । ताईजी के बातों का मधु द्वारा दी जाने वाला जवाब इसकी एक मिसाल है । मोबाइल उपन्यास की दोनों नारियाँ अपनी काबिलियत पर विश्वास रखने वाली हैं । स्वयं की रक्षा करती हुई समाज में मिसाल बनके नई दिशा प्रदान करती हुई वह अटल खड़ी है । आधुनिक बोध की विकास प्रक्रिया में चलने के साथ-साथ वह परंपरागत रूढियों और जीवन मूल्यों में सुधार भी लाना चाहती है । यही कारण है कि अपने जीवन में हुए तनाव और त्रासदी का सामना भी उसने खुद किया । नवीन के अलग-अलग लड़कियों के साथ घूमने की ख़बर सुनकर भी मधु ने कोई सवाल नहीं पूछा । क्योंकि उसका मानना था "ज़रूरी तो नहीं था कि जो भावनात्मक लगाव तुम मुझसे शेयर करते हो,वह तुम सभी से करो । फिर वे लड़कियाँ तुम्हारी मित्र,कुलीग, कुछ भी हो

सकती है । क्या इक्कीसवीं सदी में भी इस विचार को ढोया जा सकता है कि कोई लड़का किसी लड़की से जब मिलेगा ,उनके बीच सिर्फ एक स्त्री ,सिर्फ एक पुरुष जीवित होगा"[6] । मधु हमेशा आदर्शों के सपनों की दुनिया में रहती थी । चाहती थी नवीन भी उस दुनिया में आएँ । लेकिन नवीन की दुनिया में कल्पना, कोमलता केलिए कोई जगह ही नहीं थी । वह तो मधु के साथ एक स्पर्धा में जीता था । जब कि मधु,नवीन पर इतना विश्वास रखती थी कि उसकी आँखों में छलकती जिज्ञासा को वह स्नेह समझने लगी । लेकिन वहीं मधु का दूसरा रूप भी हमें दिखाई देता है जिसमें नारी की सहजता भी है, इक्कीसवीं सदी की नारी की बोल्डनेस भी है,"जिन शास्त्रों में मर्दों की मर्दानगी के गुण लिखे हैं, वे सब औरत को कुचलने ,मसलने,रौंदने, आहत करने में ही सच्ची मर्दानगी है ,ऐसा समझते हैं । तुम ऐसा समझे तो क्या! तुम्हें तो फेमिनिस्म का अल्फाबेट भी नहीं मालूम था । तुम तो 'पेटीकोट सेना' कहकर मज़ाक ही उड़ा सकते थे"[7] । भावनात्मक संबंद्ध या लगाव कभी सीधे-सीधे सच को नहीं देखने देते । सब कुछ सामने घटित होता है लेकिन लगता है यह सच नहीं है । यही बात मधु के साथ हुई थी। मधु एक साथ एक साधारण नारी भी है साथ ही उत्तरआधुनिक विचार रखने वाली स्वावलंबी नारी भी है । एक ओर नारी सहज कोमल संवेदनाएँ हैं, साथ ही महत्वाकांक्षाएँ भी हैं । ज़िन्दगी में जितने भी निर्णय उसने लिए हैं, सब कुछ अपने आत्मविश्वास के बलबूते पर । उसका मानना है "जब सच से काम चल सकता है तो हम झूठ क्यो बोलें?"[8] । इसप्रकार एक नारी के सामने घिनौनी हरकत करने वाला एक चरित्रहीन मर्द के रूप में नवीन आता है ।

भारतीय समाज में साठ के दशक आते-आते नारी मुक्ति की चेतना उत्तरोत्तर विकसित होती दिखाई देने लगी । स्वाधीनता प्राप्ति से नारी में स्वाधीन व्यक्तित्व का विकास होने लगा । आज के परिवेश में स्त्री और पुरूष अपने अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखना चाहते हैं । रूढ़िवादी

सामाजिक संस्कारों के प्रति अब वह जागृत हो रही है । आर्थिक आत्मनिर्भरता और मानसिक स्वतंत्रता चाहने वाली है आज की नारी । साथ ही अपने जीवन की गुत्थियों को स्वयं सुलझाने में वह समर्थ भी है सक्षम भी है और सफल भी है । मौन प्रतिरोध की जगह मुखर चेतना की संवाहिकाएँ बनकर स्वयं एक मिसाल बनके हाथों में आत्मसंघर्ष की मशाल थामी खड़ी है आज की नारी ।

सहायक ग्रंथ सूची

1.क्षमा शर्मा-मोबाइल, पृ.स 102,राजकमल प्रकाशन,

2.वही-पृ.स 31

3.वही-पृ.स 9

4.वही-पृ.स 19

5.वही-पृ.स 19

6.वही-पृ.स 86

7.वही पृ.स 86

8.वही पृ.स 93

डॉ.शामली.एम .एम

एसोसिएट प्रोफ़ेसर & हेड

हिंदी विभाग, सरकारी कॉलेज

नेडुमंगाड, केरल ।

****

3

लोकतांत्रिकता के मायने पर फिलॉसफर की परख

डॉ. षीला कुमारी एल

सृष्टि प्रकाशन द्वारा प्रकाशित विजय सौदाई से रचित एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है फिलॉसफर, जो लोकतांत्रिकता की दृष्टि से परखने पर खूब खरा उतरता है। पचहत्तर अध्यायोंवाला हिंदी का यह बृहद उपन्यास, उपन्यास जगत के लिए एक धरोहर ही है, जो लोकतांत्रिकता के विभिन्न पक्षों को उजागर करने में सफल हुआ है। तनिक प्राकृतिक संपदाओं एवं क्षमताओं, परंपरागत ज्ञानों को हड़प करना लोकतांत्रिकता का काम है। वाणी के वाग्विलास के अलौकिक नाच विधान के द्वारा हम इस उपन्यास में यह देख सकते हैं। हिन्दी साहित्य कोश में बताया है "उपन्यास का अर्थ ही निकट रखी हुई वस्तु होता है अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसे पढ़कर ऐसे लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है। उसमें दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है।"(1) फिलॉसफर को अपनी बाशिंदा जगह से उड़कर भारत की गली-गलियों में, दिल्ली में, अमेरिका में, मॉस्को में, पाकिस्तान में, पिट्सबर्ग में न जाने कितनी-कितनी जगहों पर रवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह लोकतांत्रिकता का और एक पक्ष है। इस विश्व को एक मुट्ठी भर में समाने की कोशिश इस उपन्यास की विशेषता है । लोकतांत्रिकता या भूमण्डलीकरण का सशक्त नमूना है यह फिलॉसफर। इक्कीसवीं सदी में समय, समाज, संस्कृति,देश और भाषा में भूमंडलीकरण के वास्ते जो —जो परिवर्तन दृष्टिगोचर हैं, वे सब इसमें दिखाई पड़ते हैं। हम पाठक भी एक जगह पर बैठकर देश-विदेश के घरों के मेहमान

बन जाते हैं। पाठक भी समर की आत्मा का एक अभिन्न अंग बन कर समर जो कुछ करता है, जो कुछ बोलता है, जो कुछ भोगता है उन्हीं के साथ हम भी बहते रहते हैं। उपन्यास पाठ शुरू करने से लेकर इति तक इसका नायक समर हमारी रूह का ही एक अभिन्न अंग बन जाता है। इस फिलॉसफर की खूबी इसमें है कि इसमें समाज के सभी मुद्दों के आर पार को छूते हुए भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के विभिन्न मायनों को आत्मसात करते हुए उपन्यास के सृजनकर्ता ने अपनी लेखनी की करामत दिखाई है। हम यह कह सकते हैं कि इसमें पारिवारिक,सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक,राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराओं को एक ही गागर में भरने का प्रयास किया है। कभी-कभी उपन्यासकार ही हमारे सामने एक फिलॉसफर की भांति हम पाठकों को विभिन्न बातों के बारे में,लोकतांत्रिकता के बारे में गहनता से सोच-विचार करने के लिए हमें बाध्य बना देते हैं। इसके हर एक अध्याय में पात्रों के हाव-भाव का वर्णन समाज की वास्तविकता को जगाने में काबिल है।

भूमंडलीकरण का एक मुद्दा यह है कि विकसित राज्य विकस्वर राज्यों की सभी क्षमताओं को असार मार्ग से हड़प करने की कोशिश करते हैं। इस उपन्यास में यह हड़प बुद्धि पक्ष के हड़प के द्वारा प्रकट होता है। रूस का बड़प्पन इस बात में है कि वहाँ के साहित्यकारों में वहाँ की राजनीति निर्भर है। इसलिए साहित्यकारों के लिए वहाँ बहुत मान सम्मान देते थे। लेकिन भारत के संबंध में देखें तो लेखक राजनीति से संबंधित कुछ बातें कहें तो उन्हें शत्रु मानने लगते हैं। अमेरिका भी भारत से कम नहीं।चीन तो उसे मायाजाल मानता है और पाकिस्तान धर्म परिवर्तन के लिए ज़ोर देता है।

साम्यवाद के विभिन्न पड़ाव विभिन्न राष्ट्रों के वर्णन के द्वारा लेखक ने किया है। जो भी हो, जैसे भी हो सभी अपनी-अपनी कार्य सिद्धि के लिए कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। किसी को

आत्मीय रूप से किसी के प्रति लेन-देन का भाव नहीं है। यदि कोई किसी की सहायता करते तो इसका मतलब है कि इसी से उन्हें कुछ-न-कुछ फल प्राप्ति मिले। समर की किताब बहुत ख्याति प्राप्त होने पर जिस प्रकाशक ने उससे पहले मुँह मोड़ दिया था, वही जिंदगी के ऐसे आराम के लिए आवश्यक सभी चीज़ें दे-दे कर उन्हें स्वस्थ रखना चाहता है। इसका मतलब यह नहीं कि समर के प्रति उनके मन में अगाध प्यार है। मगर इसमें से यह भावना उभर आती है कि समर को रखकर वह अपनी अर्थव्यवस्था को परवरिश करना चाहता है। आर्थिक लाभ की आकांक्षा से व्यक्ति संबंध को जुटा रखने का सफल प्रयास प्रकाशक कोहिली ने किया है।लोकतांत्रिकता का एक पक्ष हम यहाँ देख सकते हैं। क्योंकि राजनीति विश्व कोश में बसंत कुमार सिंह ने लिखा है "भिन्न-भिन्न अर्थ व्यवस्थाओं को जोड़ने या समन्वित करने का काम भूमण्डलीकरण की संकल्पना से किया है।"[2] यह बात पाठकों के लिए हर्ष देने वाली है कि अंतिम समय तक कोहली उसके पीछे चाहे वह जहाँ भी हो सहायता करता रहता है। समर की गुमराह नामक किताब की इतनी ख्याति हो चुकी है कि इससे संबंधित बहुत अधिक तर्क-वितर्क चारों ओर फैलता रहा।

लेकिन समर जहाँ भी हो, जैसे भी हो वह अपनी लीक से बिल्कुल हटता नहीं है। उससे संबंधित राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत हलचल पैदा होती है। देश-विदेश के अनेक पदाधिकारियों में यह सिर दर्द का मामला बन जाता है । उसे बहुत बार कत्ल करने की योजनाएँ भी निष्फल बन जाती हैं। लेकिन इन सब को समर एक मितवादी बनकर फिलॉसफर जैसा,एक तत्ववेत्ता-सा निर्विकार भाव से देखता रहता है। भूमंडलीकरण का उदात्त चित्रण यहाँ मिलता है। कुछ लोग उन्हें बचाने का प्रयास तो करते हैं। अपनी आँखों के सामने इतनी सारी बातें होने पर भी समर का वह तटस्थभाव बहुत ही सराहनीय है। असल में एक लेखक कैसा होना चाहिए, लेखक का व्यक्तित्व किस प्रकार का होना चाहिए इसका सर्वोत्तम नमूना है हमारा फिलॉसफर।

एक पहुँचे हुए लेखक के तख्त पर आने के लिए एक साधारण-सा युवक किन-किन मुसीबतों का सामना करता है, यहाँ तक कि इमारत निर्माण की जगह पर कुली का काम भी करता है।लेकिन ज़िंदगी की इतनी कठिनाइयों से भरे समय में भी वह अपने महान ग्रंथकारों को नहीं भूलता। अपनी साहित्यिक निष्ठा, लेखन के प्रति अपनी अदम्य रुचि ये सब समर को एक प्रतिष्ठित साहित्यकार के पद पर पहुँचा देता है।लेकिन साम्राज्यवाद, सामाजिक अराजकतावाद, सांप्रदायिकता के विषैले चंगुल से वह मुक्त नहीं होता। उसे अपनी जान की चिंता बिल्कुल नहीं थी। लेकिन अपने से संबंध रखने वाले अपनी-अपनी वैयक्तिक मामलों के लाभ के लिए या मानसिक तसल्ली के लिए उनकी जान को बचाने की कोशिश करते हैं जो अंत में निष्फल बन जाती है।

एक साहित्यकार के नाते समाज में किस प्रकार हलचल मचा सकता है, दुनिया के लिए आवश्यक सही तथ्य को निडरतापूर्वक कहने में, भरी सभा में, खुले मंच में,पत्रकारों के बीच, निड़र-निर्भीक होकर, जाति, धर्म, राजनीति को पार कर सही मायने में अपना मत प्रस्तुत करने में दिखाने वाला फिलॉसफर किस के मन को मोहित नहीं करेगा। एक ओर शतु पक्ष उभर आए,तो दूसरे पक्ष उनसे ज़्यादा निकटता चाहने वाले फैन भी उभर आ जाते हैं।

आजकल के विज्ञान की चमत्कारिक यानी लोकतांत्रिकता की इस दुनिया में लेखकों के समाज में जो गिरावट आयी है उसे अपने एक लेखक मित्र के द्वारा उजागर किया है कि- "किसे फुर्सत है, किताब पढ़ने की? टी वी, रेडियो, मीडिया, सोशल मीडिया,फिल्में, खेल और राजनीति हावी हो चुकी है लेखन पर। नॉवल पढ़ने में चार-पाँच घंटे जाया करने के बजाय, आज लोग 2 मिनट की इंटरनेट पर वीडियो देखना पसंद करते हैं।"[3] यहाँ भूमंडलीकरण का सशक्त नमूना हम देख सकते हैं। यहाँ आजकल की पीढ़ी के साहित्य रुचि से मुँह मोड़कर जाने की बात

की ओर लेखक इशारा करता है। यह तो सर्वविदित बात है कि आजकल की पीढ़ी साहित्य वाचन में उतनी रुचि नहीं रखती, जितनी उनकी पूर्वीपीढ़ी। क्योंकि आजकल के यांत्रिक युग में सब कुछ वह इंस्टेंट पाना चाहता है। इसी इंस्टेंट व्यवहार से किसी से भी एक आत्मीयता पनपती नहीं। इस तथ्य को भी लेखक ने इसके माध्यम से उभारा है ।

राजनीति में वामपंथी के अर्थ को आजकल मानसिक पंगु बना कर छोड़ देने के बारे में भी लेखक की कलम धूम मची है।जिन हाथों में किताब होनी चाहिए उनमें हथियार थमा दिए गए। जिस मस्तिष्क में ज्ञान और अहिंसा की सोच होनी चाहिए, वहाँ हिंसा, विरोध और अशिक्षा का ज़हर भर दिया तुम लोगों ने। खुद को कॉमरेड कहलाना भले बड़ा भला लगता है मगर मत भूलो कि यह विचारधारा तोड़ती है, जोड़ती नहीं। खुली सभा में समर का यह कथन सभी में विद्वेष पैदा कर देता है. ।यह लोकतांत्रिकता के अन्याय पक्ष के प्रति लेखक का दृष्टिकोण है। प्रकाशन क्षेत्र में होनेवाले भ्रष्टाचारों का वर्णन भी है।केवल यही नहीं, आर्थिक स्तर पर अपने लाभ उठाने के लिए, प्रकाशक कैसे एक रचनाकार को अपने कब्जे में रखते हैं उस पर भी तीखी टिप्पणी करके लेखक ने उस अन्याय का पर्दाफाश किया है।

नारी की स्थिति दुनिया में जहाँ भी हो बिलकुल एक जैसा ही लगता है। केवल नाम और शख्स में ही भिन्नता है। समर के घर का, नौशाद के घर का, डेनिश के घर का, सायरा के घर का सभी परिवारों के घटनाओं के द्वारा संयुक्त परिवार, एकल परिवार, शराबी पति से प्रताड़ना सहने वाला परिवार,ऐशो आराम से रहने वाले परिवार आदि सभी तरह के पारिवारिक दृश्यों का चित्रण करने में लेखक सफल उठा है। इन सब को देखने पर वसुधैव कुटुंबकम का नारा सार्थक मालूम पड़ता है। जो वैश्वीकरण का एक सुंदर नमूना है।

दिन-रात मेहनत कर, दिन में लेखन का कार्य करके रात में ऑटो चला कर अपनी जीविका चलाने वाला समर आजकल की अकर्मण्य युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है। दिल्ली के ढाबे का छोटा लड़का जो समर को सांत्वना देता है वह समाज के मानवीय पक्ष का मसीहा है।

समाज तो बहुत बदल चुका है। पुराने अंधविश्वासों और धर्म के नाम पर होने वाले छल-प्रपंच का समाज में स्थान नहीं है। दुनिया बहुत बदल चुकी है। इस उपन्यास के कलेवर में एक पूरी दुनिया को समेटने का प्रयास लेखक ने किया है। इसमें अच्छाई है, बुराई है, तनाव है, संघर्ष है, प्यार है, ममता है, गरीबी है, अमीरी है, बेरोजगारी है, काम धंधा है इस प्रकार ज़िंदगी के विभिन्न मुद्दों को लेखक ने उजागर किया है। जो आजकल इस लोकतांत्रिक मायने पर सर्वविदित सच्चाई का पर्दाफ़ाश करता है। आजकल के लोकतांत्रिक दुनिया में साहित्य की गति कैसे पिछड़ गई है उस पर भी जख्मी साहब के कथन के द्वारा स्पष्ट किया कि "भला साहित्य के नाम पर कोई ऐसा कूडा कचरा क पाठकों के सामने रखना.....न भाषा,न शैली और न ही कोई" [4]

भूख के सामने समर को अपनी शैक्षिक उपाधियाँ, अपने भव्य और महान लोगों का वंशज होने का दंभ किसी काम पर न आया। इस उपन्यास में ढाबे का चित्रण बहुत कम ही हुआ है। लेकिन उसी की वजह से समर की ज़िंदगी की गति बदल गई है। एक काम के लिए जाना, वहाँ धीरा से परिचय प्राप्त करना, उसके घर में आकर ऑटो चलाना सीखना, काम करना, लिखना, फिर वहाँ से रेलगाड़ी में दिल्ली जाना, रेलगाड़ी में बैठकर पुरानि लाइब्रेरियन शमां से मिलना..... ऐसी ऐसी अनेक बातें कहानी के अंत तक बहुत रोचकता के साथ चली जाती हैं।इसी बीच में किसी के सामने अपने घुटनों को न टेकनेवाला समर की ताकत पढ़ने से ही बनता है।

शिक्षा के क्षेत्र से वंचित एक पीढ़ी की दयनीय दशा का चित्रण हमें यहाँ देखने को मिलता है। शैक्षिक क्षेत्र की बातों का वर्णन ठीक-ठाक से हुआ है। लेकिन डिकोस्टा के सद्विचारों को भी लोग गलती से ले लेते हैं। उनकी धारणा है कि वे धर्म परिवर्तन करने में रत हैं। वहाँ झगड़ा होने के बाद समर अमेरिका पहुँचता है। वहाँ से फिर पाकिस्तान, फिर रूस, फिर भारत में आने का प्रयास। लेकिन अपनी जमीन में पैर रखने के पहले ही उन्हें अपने देश के लोग हैं देशद्रोही का दर्जा देकर गोली का शिकार बना दिया। दो राष्ट्रों के बीच में समर को लेकर जो वाद-विवाद, तर्क-वितर्क चल रहा है सब के पीछे समर की बुद्धि का लाभ उठाना, असल में समर का मस्तिष्क सभी चाहता है। सभी लोग अपनी-अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए समर का उपयोग करना चाहता है। यही लोकतांत्रिकता का एक पक्ष है।

अमेरिका एवं रूस के चित्रण के साथ-साथ तानाशाही एवं साम्राज्यवाद का चित्रण भी हुआ है। भारतीय मस्तिष्क को लेकर भारत के खिलाफ़ काम करने में प्रेरित अमेरिकी गूढ़ तंत्रों का पर्दाफ़ाश भी इसमें हुआ है। यहाँ भारतीय मनीषियों का क्रय-विक्रय होता है।लेकिन अनजान भारतीय युवा पीढ़ी इस सत्य से अलग होकर अमेरिकी शोषकों के हाथ की कठपुतली बन जाती है। उपन्यास के अंत में गवर्नर हाउस में समर लेखक की कुशलता क्या है इस विषय पर एक सुंदर व्याख्यान दे रहा है जो इस दुनिया की तमाम लेखकों के लिए बताया गया है। समर दिल्ली एयरपोर्ट में आने पर बहुत खुशी से बाहर की ओर आ जाता है। लेकिन वहाँ की भीड़ में से ही किसी ने उस पर गोली चलाई है। अलीना सहित दोनों धराशयी बन जाती है। उपन्यासकार ने सीधी-सादी सरल सहज भाषा में इस की कथावस्तु को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण के कारण भाषा में जितनी विविधताएँ आजकल समाज में मौजूद हैं, उनमें से अधिकांश हम इस उपन्यास में देख सकते हैं।

फिलॉसफर माने तत्व या यथार्थता को जानने परखने वाला व्यक्ति है। जो दर्शन को ठीक-ठाक से जानता है वही फिलॉसफर है। असाधारण विचारक और दार्शनिक गद्य लेखक के रूप में उनका कोई सानी नहीं है। दार्शनिकों में इन्हें पारसमणि मान सकते हैं। क्योंकि अपनी लेखनी की दक्षता के कारण उनकी कृतियाँ पढ़ने वाले सभी उनके फैन बन जाते हैं। साधारण मानव के सोच-विचार से उनका सोच-विचार बहुत ऊँचे ओहदे का है। इसलिए ऐसा एक पात्र, नायक के पद को अलंकृत करनेवाले इस उपन्यास को फिलोसफर नाम देना समीचीन ही है।

अपना कायदा हासिल करने के लिए समर ने जिन-जिन कठिनाइयों एवं कुरीतियों का सहन किया है, जिन-जिन सीढ़ियों को पार करना पड़ा है, ये सब पाठकों के मन को द्रवीभूत करा देता है, जो उपन्यास पढ़ने से ही बनता है। अपने देश को लांघकर विदेशी देश में भी उनका मान-सम्मान इसलिए मिलता है कि उनकी लेखनी की अति तीव्रशक्ति। किसी के भी मक्खनकारी के सामने गिरने वाला शख्सियत नहीं है समर का। अपने परिवार में शादी के लिए तैयार होने की बातों संबंधित तर्क-वितर्क से अपने प्यारे माँ-बाप को, अपने परिवार वालों को छोड़कर चला जाता है। सूट-बूटधारियों के सामने निरीह बकरी के समान खड़े रहने में असमर्थ होकर,शादी संबंधित बाज़ारी दुनिया में अपने को नालायक सिद्ध होने पर सबसे उखड़कर, अपने गाँव ज़मीन को छोड़ने में समर मजबूर हो जाता है। इस स्थिति में उन्हें बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

उपन्यास मालती और समर की बातचीत से शुरू होता है। पढ़ने पर पाठक को एक साधारण-सी कथा महसूस होने लगती है। जैसे प्रणय, या तो शादी होना या न होना, भागदौड़ फिर उसी से संबंधित बाकी बातें। लेकिन इस उपन्यास के अंदर जाते-जाते हमें पता चलता है

कि यह साधारण-सा उपन्यास नहीं है। लोकतांत्रिकता के विभिन्न पक्षों को इसमें उजागर करने की पृष्ठभूमि मात्र है यह।

इस प्रकार दुखांत उपन्यास होने पर भी इस दुखांत के पीछे कार्यरत राजनीतिक, धार्मिक, सांप्रदायिक, तानाशाहियों के क्रियाकलाप एवं उनके धर्मान्ध मस्तिष्कों का वर्णन लेखक ने प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम सभी मुद्दों पर परखने पर पता चलता है कि फिलॉसफर असल में फिलॉसफर ही है जो भारतीय जनता की ही नहीं, दुनिया की आंखों को खोल देने का सफ़ल प्रयास करता है। अनबूझे एवं अनसोचे परतों को पाठक के सम्मुख उजागर कर एक सच्चे राष्ट्र निर्माण, सच्चे नागरिक के कर्तव्य, पर जोर देकर साहित्यकार के कर्तव्य के बारे में बता कर, असली साहित्यकार के बारे में कह कर, अपना साहित्यिक दायित्व निभाने में सफल उठा है फिलॉसफर, साथ-ही-साथ इस उपन्यास के स्रष्टा विजय सौदाई जी भी।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृ 153
2.राजनीति विश्व कोश , बसंत कुमार सिंह पृ 107
3. फिलॉसफर पृ 31
4. फिलॉसफर पृ 68

डॉ. षीला कुमारी एल

सह आचार्या हिंदी

यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल

Mob9496253858

Email: sheelagowrabhi@gmail.com

****

4

भूमण्डलीकृत संस्कृति का समाधान ढूँढते हैं समकालीन हिन्दी उपन्यास

डॉ. के. वनजा

भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण मूलत: नवउपनिवेश की संचालित नीतियाँ हैं। यह भौगोलिक और प्रशासनिक सीमाओं से परे संसार भर की अर्थनीति को एकीकृत करने के सदुद्देश्य के साथ रूपायित है। लेकिन अमरिका की केन्द्रीयता से वह लक्ष्य से फिसल गया। अमरिका ने इसे संसार भर को अपना बाज़ार बनाने की योजना या प्रक्रिया बनायी। तब इसका लक्ष्य बहुत संकुचित हो गया। अब यह मुनाफे की तलाश में पूँजी की स्वच्छ यात्रा को सुगम बनाने की प्रक्रिया है। अपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिए उसे विकसित और अविकसित देशों को अपने कब्जे में रखने की ज़रूरत है। इसकेलिए भारत जैसे देशों के अधिकारों पर बहुराष्ट्रीय निगम, विश्व बैंक, आई. एम.एफ, विश्वव्यापार संगठन जैसी संस्थायें अपना नियंत्रण मज़बूत कर कर रही हैं। इससे तीसरी दुनिया का शासन 'पैकेज टूर' की यात्रियों की तरह एक खास नियंत्रण में रहता है। वहाँ अधिकार, धन, आग्रह सब हमारे, पर नियंत्रण उनके हाथ में हैं।

नब्बे के दशक के आरंभ में ही 1991 में तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने "आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से भारत की बाज़ार नीति में महत्वपूर्ण बदलाव किए, जिससे निजी क्षेत्र

के उद्योग और विदेशी निवेश में भारी बढोत्तरी दर को दर्ज किया गया। एल पी जी नीति के साथ भारत में उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रिया का आरंभ हुआ, जो पूर्ववर्ती आर्थिक सुधारों से बिलकुल भिन्न है। 1991 की नयी औद्योगिक नीति के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित किया गया, जिसके निमित्त 'विमुक्त अर्थनीति' और 'सूचना प्रौद्योगिकी' में भी विस्तार किया गया। इस नीति के परिणाम स्वरूप आरंभ में तो कई सकारात्मक प्रभाव लक्षित किए गये, परन्तु सदी के परवर्ती दौर में पूँजी पर असमान रूप से एक खास आभिजात्य आधिपत्य को भी चिह्नित किया जा सकता है। इस दशक के मध्य 'ब्लैक इकॉनमी' में भारी मात्रा में बढोत्तरी को दर्ज किया गया। उस दौर में विभिन्न क्षेत्रों में हुए चारा घोटाला, हवाला काण्ड, हर्षद मेहता आदि घोटाले इसके उदाहरण हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हुए इन घोटालों से भारतीय राजनीति और समाज में एक जबरदस्त पूंजी की अंतर्विरोधी स्थिति को महसूस किया गया। किशन पटनायक अपनी पुस्तक 'भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि' में बीसवीं सदी के अंत में राजनैतिक स्तर की गिरावट में 'अर्थ' की भूमिका को स्वीकार करते हैं। राजनीति के क्षेत्र में आदर्श एवं नैतिकता को स्थान देनेवाले कार्यकर्ता अर्थाभाव में भ्रष्ट होते दिखाई देते हैं। सभी क्षेत्रों में अलगाववाद की स्थिति उत्पन्न हुई, जहाँ तक भाषा, संस्कृति और जातीय भावनाओं में भी। इसी वेला में सांप्रदायिकता सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की छत्रछाया में बुरे ढंग से विकास प्राप्त कर रही थी। कई क्षेत्रीय विषमताओं एवं उग्रवाद के साथ अलगाववाद की स्थिति सामने आयी। कई क्षेत्रीय राजनैतिक दलों का उदय भी राजनैतिक परिदृष्य पर दिखाई पड़ा।

उपर्युक्त परिस्थितियों के बीच में भूमंडलीय संस्कृति सबके ऊपर सवार करने लगी। यह उपभोग को बढावा देनेवाली बाज़ारु संस्कृति है। इस संस्कृति के पीछे एक रंगीय संस्कृति बनाने की अमरिकी साजिश काम करती दिखाई पड़ी। भूमंडल की विविधता के सौन्दर्य एवं मूल्य का

नाश कर अपना रंग सर्वत्र फैलाना उनका लक्ष्य रहा था। भारत के संबंध में भारतीयों के मानसिक उपनिवेशन का आरंभ अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ शुरु हुआ था। सन् 1825 में मैकाले प्रभु ने अंग्रेज़ी शिक्षा की शुरुआत करते वक्त कहा था कि हमारा लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से एक ऐसा दलाल वर्ग पैदा करना है जिसकी रुचि, विचारसरणी और दृष्टि यूरोप की हो-और जिनमें शेष भारतीयों और भारत के अतीत से कोई लगाव नहीं बचे-उलटे ये ही लोग होंगे जो भारत की अपनी व्यवस्था अपना राज्य खड़ा करने का सबसे अधिक विरोध करेंगे और हमसे जी जान से चिपके रहेंगे। अंग्रेज़ अपने लक्ष्य में सफल निकले, ताकि हम अभी तक मानसिक गुलामी से मुक्त नहीं हो सके। यही कार्य भूमंडलीकरण से अमरिका ने भी किया। यानि कि विविधता की संस्कृति की जगह एकरंगीय अमरिकी या पाश्चात्य संस्कृति को प्रतिष्ठित कर अपने बाज़ार को बढ़ावा देना। भूमंडलीकरण के अर्थतंत्र से गरीब और भी गरीब हो गया, कृषक की स्थिति और भी खतरे में है। विकास योजनाएँ तथा मल्टी नेशनल कंपनियों के पनपने से हमारा पर्यावरण संकट ग्रस्त स्थिति से गुज़रता है। आदिवासी अपनी मिट्टी से एवं संस्कृति से विस्थापित होता जा रहा है। मनुष्य एवं समस्त जीवजन्तु वस्तु में तब्दील होते जा रहे हैं। स्त्रियाँ बिकाउ बन गईं। पाश्चात्य संस्कृति के बढने से अधिकार में जो हैं और अमीर जो हैं वे बाकी को अपने अधीन कर सबको उपयोग की चीज़ें बना रहे हैं। सांस्कृतिक स्वत्व को बनाने के स्वांग में राष्ट्रीयता के बदले में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बढावा देनेवाला धर्म और राजनीति का गठबंधन समृद्ध हो रहा है। अंग्रेज़ों ने सांप्रदायिकता का जो विष घोल दिया वह उग्र रूप में प्रकट हो रहा है। दुर्बलों के ऊपर का दबाव बढ़ रहा है। वृद्धों की उपेक्षा इसलिए बढती जा रही है कि भूमंडलीय संस्कृति उपयोग करने और फेंक देने की है। भूमंडलीकरण के इन उत्पादनों को समकालीन हिन्दी उपन्यास बडी सतर्कता एवं गंभीरता से प्रस्तुत करने में सफल निकलते हैं। यह ही नहीं, इनमें जो भयानक एवं

अनचाहे वातावरण एवं स्थितियाँ पैदा हुईं उनका प्रतिरोध करते हुए समाधान देने का दायित्व निभाते दिखाई देते हैं।

साम्राज्यवाद और बाज़ारु संस्कृति का प्रतिरोध

उपभोग जीवन का अभिन्न अंग है। परन्तु उपभोक्ता सभ्यता में जीना बिलकुल दूसरी बात है। वैश्वीकरण के मुख्य औजार विज्ञापन ने उपभोग को उपभोगवाद में बदल डाला है और मनुष्य के रुतबे का निर्णय क्रयशक्ति लेने लगी। वह सच और झूठ को मिटाकर एक मायिक संसार में पहुँचा देता है। वहाँ चेतना को कोई स्थान नहीं रहता, जीवन पूर्णतया विज्ञापन द्वारा निर्मित मापदण्ड के आधार पर चलता है। ऐसा समाज झुण्ड में परिणत हो जाता है, जहाँ मौलिक चिंतन नहीं होता है। ऐसे निर्बुद्धीकृत समाज में मानवीयता एवं मानवीय मूल्य निष्कासित हो जाते हैं, धर्म, संस्कृति, साहित्य, विज्ञान इत्यादि को मूल्यों के स्रोत की दृष्टि से नहीं देखते हैं, सब फैशन की वस्तु बन जाते हैं। वहाँ उत्तेजना और दिखावा उत्पन्न करनेवाली चीज़ों की माँग होती है तथा आदमी की पूछ चरम मूल्य बन जाती है। ऐसे सांस्कृतिक संकट की वजह साम्राज्यवाद द्वारा प्रायोजित नव उपनिवेशवाद है। कमलेश्वर द्वारा रचित 'कितने पाकिस्तान' में ऐसे अनेक प्रसंगों से साक्षात्कार करने का अवसर हमें मिलता है। अदीबे आलिया का अर्दली महमूद अली से यह कथन विचारणीय है "... सौदागरों की जिस जमात ने अपना साम्राज्य स्थापित करके हिन्दुस्तान को जकड़ लिया है... वे ही उपनिवेशवादी फिरंगी अब चीन में बाज़ार बनाने के रास्ते तलाश रहे हैं।.... बाज़ारों केलिए ही बनते हैं साम्राज्य। साम्राज्यों की नाभि बाज़ार से जुड़ी है। साम्राज्यों के रूप बदल सकते हैं.... वे प्रजातान्त्रिक आर्थिक साम्राज्य का रूप ले सकते हैं, परन्तु इन पूंजीवादी प्रजातंत्रों को जीने केलिए मुनाफ़े की बाज़ारों की ज़रूरत है। बाज़ार! बाज़ार!बाज़ार!!! यही है औद्योगिक क्रान्ति का सतत जीवित रहने की मज़बूरी भरा सिद्धान्त। यही है पूँजीवाद। इसी का

दूसरा नाम है साम्राज्यवाद, तीसरा नाम है उपनिवेशवाद और आज दस्तक देती नई सदी में इसका कोई अन्य नाम भी हो सकता है। "कमलेश्वर इस भूमंडलीकरण को पूँजीवाद, साम्राज्यवाद एवं नवउपनिवेशवाद जैसे शब्दों से अभिहित करते हुए भूमंडलीकरण में छिपे हुए साम्राज्यवादी षड्यंत्र को स्पष्ट करते हैं। यह भी जाहिर है कि यह एक दानवीय प्रवृत्ति है।

भूमंडलीकरण के नाम पर आजकल पूँजीवाद साम्राज्यवाद की जडें जमा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण और जितने भी शब्द इसके साथ प्रयुक्त होते हैं, उसकी बहिरंगी भंगिमा के अंदर छिपे अमानवीय चेहरे को देखने पर हम कभी भी उसे "संस्कृति" नाम नहीं दे पाएँगे। समकालीन समाज में करुणा जैसे मानवीय गुण गुम हो रहे हैं। इसलिए कमलेश्वर आँसू के सूख जाने को संस्कृतियों का उजड़ जाना मानते हैं। पुराने और वर्तमान बाज़ार का फर्क यह है कि माँग और आपूर्ति का अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त आज अनुपादेय हो गया है। पूँजीवाद ने ऐसी एक संस्कृति को विकसित किया है कि खरीददार अपनी ज़रूरत की चीज़ खरीदने के बजाय ऐसी गैर ज़रूरी चीज़ें खरीदने को मज़बूर हो जाता है। इतना ही नहीं खरीदने के उपरान्त वे महसूसते हैं कि उनकी शान शौकत और हैसियत बढ गई है। इनसानी सभ्यता का भविष्य सौदागरी सभ्यता में तब्दील होने पर सारे के सारे रिश्ते आर्थिक मुनाफे की तराजू पर तौले जाते हैं। इस अस्पृहणीय सभ्यता का असर 'कितने पाकिस्तान' में यों प्रकट हुआ - "जब तक इनसानी सभ्यता का भविष्य सौदागरी सभ्यता में बदला जा रहा हो, जब मनुष्य के सुकून सपनों और अरमानों को मुनाफे की तिजोरियों में कैद किया जा रहा हो... जब एक बड़ी इनसानी सभ्यता को फरेबी सौदागरों के जाल में फँसाया जा रहा हो, वह वक्त बहुत नाजुक होता है। ऐसे वक्त में सिर्फ बाज़ार की कर्दे ही नहीं बदलती, रिश्तों के मयार और मूल्य भी बदलते हैं... दिलों के एहसास भी बदलते हैं.. और तब अनकहे तरीकों से कहानियों के आदि और अंत भी बदलते हैं।

भूमंडलीय संस्कृति की अमानवीयता और इस अपसंस्कृति के द्वारा निर्मित एक अलग सौन्दर्यशास्त्र का ब्यौरा कमलेश्वर देते हैं। बाज़ार द्वारा निर्धारित चीज़ों का इस्तेमाल हमारे सहज प्रकृत चीज़ों के बदले करना है। यह भी नहीं इस साम्राज्यवादी साजिश में विभाजित करने की शक्ति भी है। यह हमारे प्रतिरोध की शक्ति को भी विखण्डित करता है और बाज़ारवाद को विभक्त समूहों के रक्त को चूसने का खूब अवसर मयस्सर हो जाता है। बडी संस्कृतियाँ खण्ड-खण्ड बन गईं। नवउपनिवेशवाद में पूरी दुनिया की लूट हो रही है। बहु संख्यक लोगों को भिखमंगे बनानेवाली इस संस्कृति पर वार करते हुए कमलेश्वर कबीर शीर्षधारी पात्र के ज़रिए मौंटबेटन से यों कहलवाते हैं - "हम भिखमंगों की नस्ल तुम लुटेरों ने पैदा की है। हम जैसे भिखारियों की नस्ल तुम्हारे इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन से पहले दुनिया के किसी देश में मौजूद नहीं थी। अमीर और गरीब पहले भी थे, लेकिन भिखारियों का जन्म उपनिवेशी बन्दोबस्त के साथ हुआ... जब आर्थिक और जीवनगत न्याय के मूल्यों का अन्त और मुनाफा केन्द्रित अन्ध शोषण और स्पर्धा का जन्म हुआ, नहीं तो इससे पहले गरीब तो ... पर भिखारी नहीं थे। विश्व का न्यायगत आर्थिक सन्तुलन तुम साम्राज्यवादियों, उपनिवेशवादियों ने खण्डित किया है.. नहीं तो मुझ जैसा लाचार आदमी भारत और पाकिस्तान में भीख माँगने केलिए मज़बूर नहीं होता, हम तो एक दूसरे के खिलाफ़ दुआ माँगते हैं। तुम उपनिवेशवादियों ने हमारी दुआएँ भी दोगली बना दीं...।" यह साम्राज्यवाद के विभाजन तंत्र का पर्दाफ़ाश करता है।

बड़ी संस्कृतियों को निस्तेज कर उसे अपनी संस्कृति से उखाड़ फेंक देना भूमण्डलीकरण का लक्ष्य है। लू-शुन के ज़रिए वर्तमान चीन में भूमण्डलीकरण के उपरान्त की सांस्कृतिक तस्वीर कमलेश्वर पेश करते हैं - "हमारी जाति को अकर्मण्य बनाकर वे परछाइयाँ इन लुटेरों ने छीन ली हैं... हमें इन्होंने संस्कृतिविहीन करना चाहा है, संस्कृति ही पूर्वजों की जीवित परछाइयों का संसार

है। उनकी उपस्थिति हमेशा परछाई की तरह मनुष्य के साथ रहती है ... बड़ी सभ्यताओं को निस्तेज करने का यही तरीका इन विदेशी लुटेरों ने निकाला है - यह पहले पूर्वजों की परछाइयाँ छीनते हैं।" लेकिन सबसे बडी त्रासदी यह नहीं, इस अपसंस्कृति को फैलानेवाले घोषणा करते हैं कि वे दुनिया को सभ्य बना रहे हैं और यह है सही संस्कृति।

2018 में प्रकाशित ज्ञान चतुर्वेदी का उपन्यास 'पागलखाला' इस दृष्टि से विचारणीय है। उपन्यास में विस्तृत और विराट 'बाज़ार' ही मुख्य पात्र होते हुए भी महा-खलनायक की तरह विद्यमान है। ज्ञान चतुर्वेदी व्यंग्यकार हैं, इसलिए व्यंग्यात्मक शैली में इस बाज़ारु आक्रमण को अभिव्यक्ति देते हैं। इस उपन्यास में सचमुच बाज़ार से बच निकलने केलिए तमाम कोशिशों में लगे कुछ समझदार पागलों की करुण-कथा ही है। बाज़ार के चंगुल में पूरी दुनिया फँसी हुई है। दुनिया की हर चीज़ पर बाज़ार की हुकूमत है। समय ऐसा आया कि विचार, सोच, धज, कपड़े-लत्ते, भाव, प्यार, मुस्कान, संस्कृति, कला, संगीत, साहित्य, लोक-जीवन हर बाज़ार के इशारे पर चलने लगा। फिर भी कुछ सिरफिरे ऐसे बचे थे इस दुनिया में कि वे जीवन को बाज़ार के ऊपर समझते थे। वे इस कटु यथार्थ को जानते थे कि बाज़ार जीवन केलिए है, जीवन बाज़ार केलिए नहीं। ऐसे लोग पागल कहलाए गए। उपन्यास ऐसे पागलों का दस्तावेज़ है। वह पागल इस दुनिया और दुनियादारी से भाग रहा है और छिप रहा है। क्योंकि वह अपने उस 'स्वत्व, सत्य और सातत्य' को बचा लेने में लगा हुआ है, जो उसके पास संचित था। हमारी संस्कृति हमारी स्मृतियों से ही कायम है। ये स्मृतियाँ ही मनुष्य को मनुष्य बनाए रखती हैं। स्मृति खोनेवाले पात्र के शब्द देखिए - "बहुत सी थी।... मेरे पूर्वजों की। समाज की। इतिहास की। लोकजीवन की। इनमें लोक संगीत था। कथायें थीं। साहित्य था। कविताएँ थीं।... न जाने क्या-क्या था। सब एक

दम मिल गया। मुझे कुछ याद नहीं आया।.. जब होश आया तो देखा कि स्मृति में कुछ शेष नहीं रहा। बस, बाज़ार बचा था। हर तरफ।" (पागलखाना - पृ. 143)

उपन्यास में धर्म के बाज़ारीकरण का व्यंग्यात्मक बयान पेश है। राजकुमार रिटायर्ड होकर खुशी से रहना चाहता था, लेकिन बाज़ार से तंग आकर बचने केलिए सुरंग खोलने में लगा है। लेकिन सुरंग से होकर वह एक मंदिर में पहुँचता है तो लोग उन्हें चमत्कारी बाबा मानकर पूजा करने लगे। चिंता की बात है कि बाज़ार से बचकर बाज़ार में ही पहुँच जाता है। उससे आध्यात्म के बाज़ार केलिए ब्रांड वेल्यू बढ गया। बाबा के आने पर प्रसाद का बाज़ार, धार्मिक वस्तुओं की दुकान सब खुलने लगी। वह भी धीरे अपनी भूमिका में जम गया। उनका यह अध्यात्म एक पराजित व्यक्ति का ढोंग मात्र है। पहले बाज़ार से बचने केलिए उसने कोशिश की तो उसे पागल कहकर पागलखाना भेजा गया। जो समझदार है इनको सब पागल मानते हैं। मज़ेदार बात यह थी कि उनके इस मंदिर में भी पागल आने लगे। वह यह देखकर खुश है कि कुछ लोग ज़िन्दा हैं जिन्होंने अभी तक हार नहीं मानी है। हमारे समाज का बचाव इन लड़नेवाले कुछ समझदार पागलों पर ही निर्भर है। क्योंकि क्रान्ति सिर्फ एक से शुरु होती है, पर धीरे धीरे वह फैलना शुरू होती है। उम्मीद के साथ उपन्यासकार ने अंत में दर्शाया है कि जबरदस्ती बाज़ारवाद को कोई लाद नहीं सकता है। समय इतना बेबस नहीं हुआ है कि विद्रोह न कर सके। स्वार्थ सुख एवं उपभोग के अतिरेक में उपयोग करना और छोड देने की संस्कृति की उपज है हमारे समाज द्वारा वृद्धों की उपेक्षा। हिन्दी में कृष्णा सोबती के 'समय सरगम', चित्रा मुद्गल के 'गिलिगडु' जैसे उपन्यासों में यह भयानक स्थिति वर्णित है। लेकिन इन उपन्यासों में इसका उपाय भी प्रस्तुत हुआ है।

भूमंडलीकरण में नारी

उत्तर-औपनिवेशिक स्थितियाँ तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रियायें स्त्री जीवन पर जो नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रभाव डाल रही हैं, उनका खुलासा चित्रामुद्गल द्वारा रचित "एक ज़मीन अपनी" में हुआ है। भूमंडलीय संस्कृति में स्त्री बिकाऊ चीज़ बन गई। बाज़ार केलिए अत्यंत अपेक्षित है विज्ञापन। कई प्रकार के विज्ञापनों से उपभोक्ताओं को आकृष्ट करनेवाली तरह तरह की कंपनियाँ हैं। विज्ञापन केलिए स्त्री का इस्तेमाल किया जाता है। यहाँ विज्ञापन में मॉडल बनकर एवं उपभोग की मानसिकता की शिकार बनकर भी स्त्री का शोषण हो रहा है। इस उपन्यास में विज्ञापन जगत् में काम करनेवाली अंकिता और नीता दोनों होशियार थीं। जब कई कंपनियों के बीच में होडाहोडी चलती तो अपनी कामयाबी के लिए स्त्री का उपयोग वस्तु के समान कंपनियाँ करती हैं। उनका नारा है कि 'नाच गोरी नाच, तुझे मिलेगा पैसा'। बेचारी स्त्री इसे अपनी स्वतंत्रता का अर्थ समझती है। इस उपन्यास में उपन्यासकार बाज़ारीकरण के दौर में विज्ञापन का स्थान और उसके साथ जुडी ज़्यादतियाँ, छलकपट आदि की बाल की खाल निकालती हैं तो दूसरी ओर स्त्री शरीर को विज्ञापनबाजी का उपकरण बनानेवाली जो संस्कृति पनप रही है, इसका संजीदगी से बयान करती हैं। उपन्यास में नीता को मॉडल बनाकर उसके नग्न सौन्दर्य के प्रदर्शन करने के साथ-साथ कंपनियों के आदान-प्रदान को साध्य एवं सुगम बनाने केलिए अपने क्लाइंट्स को परोसने का कार्य किया जाता है। नीता ने जल्दी जल्दी नाम एवं धन कमाया। लेकिन अंत में जीवन में पूर्णत: पराजित होकर आत्महत्या करती है। उपन्यास में विज्ञापन जगत् में ही नहीं पत्रकारिता में भी अपनी प्रतिभा के बलबूते पर इस बाज़ारु संस्कृति की गिरफ्त में अपने को फँसने नहीं देती है अंकिता। नीता ने जो मार्ग अपनाया, वह मांसल शरीरिक प्रदर्शन और उच्छृंखलता का है। लेकिन अंकिता प्रतिभा का इस्तेमाल करती है और उस मार्ग से अपनी ज़मीन को सुरक्षित रखती है। इस उपन्यास में भूमंडलीकृत संस्कृति की प्रतिसंस्कृति

गठित करने में उपन्यासकार सफल हुई हैं। उनके ही उपन्यास 'आवां' में नायिका नमिता विज्ञापन एवं इससे जुडी हुई पूँजीवादी संस्कृति की शिकार बनती है तो भी इसकी पहचान उसे होती है और उससे सदा केलिए बच निकलती है। वैसा ही एक उपन्यास है सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए'। उसमें हर्षा वसिष्ठ इस बाज़ारु संस्कृति के भ्रमजाल से मोहित हो जाती है और इसके सुख में जीने केलिए विविश हो जाती है।

पर्यावरण संकट एवं विस्थापन

पर्यावरण का नाश उपभोग संस्कृति की खतरनाक परिणति है। भूमंडलीकरण ने नगर केन्द्रित उच्च मध्यवर्गीय लोगों और ग्रामीण उच्चवर्गों को उपभोग संस्कृति की ओर प्रेरित किया। इसलिए भूमंडलीकरण की रफ्तार के अनुपात में पर्यावरण के नाश की मात्रा भी बढती गई। नदी सूख गयी, जल विषलिप्त हो गया, पीने का पानी दूभर हो गया, मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो गई, सूखा पड़ गया, खेती का नाश हुआ, नए-नए रोगों का उदय हुआ, वायु का प्रदूषण हुआ। ये सब विकास योजनाओं की अदूरदर्शिता का फल है, या माल डेवलेपमेंट की वजह से है। इसलिए भूमि जहरीली एवं बंजर बन रही है। सुंदर धरती आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा में है।

उत्तर प्रदेश के "टिहरी डैम प्रोजेक्ट" को आधार बनाकर लिखित उपन्यास "डूब" में वीरेन्द्र जैन ने सिंचाई और बिजली केलिए निर्मित बाँधों का बुरा असर जन को कैसे भुगतना पड़ता है इस ओर इशारा किया है। मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के शहरों के वैद्युतीकरण केलिए निर्मित इस बाँध के फलस्वरूप सैकडों गाँवों के हरे-भरे खेत और खलिहान नष्ट हुए। जिससे लोगों के पीने का पानी भी नसीब नहीं होता। यहाँ कई बार बाढ आई। मिट्टी निकाले जाने से पशुपालन क्षेत्र का नाश हुआ। पशुपालन का क्षेत्र संकुचित हो जाने के कारण पशु अल्पस्थान पर अधिक संख्या में अधिक दिनों केलिए चरने को मजबूर है। परिणामस्वरूप इन इलाकों में भी

भूमिकटाव और जलसंकट तीव्रतर होते जा रहे हैं। अतएवं समृद्ध हरा भरा अंचल ऊसर और मरुभूमि में तब्दील हो जाता है। सालों भर पानी के जमाव की वजह से लवणाक्त होकर ज़मीन नष्ट हो जाती है और सहज उर्वरत भी। प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण उपादान है जल। लेकिन यह उपादान भोगवादी विकास व्यवस्था के कारण शायद आज सबसे ज़्यादा क्षतिग्रस्त हुआ है। इन सबका बुरा असर लोगों पर पड़ता है और जनता बेघर हो जाती है। वह विस्थापित हो जाती है और बेरोज़गारी की समस्या सबसे भयानक रूप से उसको भुगतनी पड़ती है। इन सबका खुला चित्र 'डूब' उपन्यास पेश करता है।

आज हर कोई विश्व को गाँव बनाने की बात कर रहा है, एक ग्लोबल गाँव, लेकिन दुनिया को गाँव बनाने की दौड़ में जो असल में गाँव हैं वे विलुप्त होतो जा रहे हैं। इसके उदाहरण हैं रणेन्द्र द्वारा लिखित दो उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश'। इन उपन्यासों में यह साबित होता है कि वर्तमान आदिवासी जीवन अपनी पहचान के सबसे कठिन दौर से गुज़र रहा है। वह वैश्वीकरण की नयी साम्राज्यवादी ताकतों का सबसे ज़्यादा शिकार है। भौरापेट गाँव में रहनेवाले 'असुर' आदिवासियों को विस्थापित कर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ गुलाम बनाने की ज़ोरदारी तैयारी कर रही हैं। उस गाँव में बॉक्साईट मैनिंग चल रही है। मैनिंग के गड्ढे छोडे जाते हैं, उनमें पानी भर जाता है, और उनमें मच्छर पलते हैं। इससे महामारी फैलती है और लोग मरते हैं। तब स्थानीय आदिवासी लोग विस्थापित होने केलिए विवश हो जाते हैं। वैसे ही 'गायब होता देश' में झारखण्ड के मुंडा आदिवासियों के समूह को पूँजीवादी विकास की दौड में शामिल लोग घास की तरह चरमरा रहे हैं। देखिए कैसे एक प्रदेश गायब हो रहा है - "सरना-वनस्पति गायब हुए, गीत गानेवाली, धीमें बहनेवाली, सोने की चमक बिखेरनेवाली, हीरों से भरी सारी नदियाँ 'इकिर बोंगा' जलदेवता का वास था, गायब हो गई। मुंडाओं की बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरु

हो गए। 'सोना' लेकिन 'दिगुम' गायब होनेवाले देश में तब्दील हो गये। (गायब होता देश)। वैसे ही तेजीन्दर का 'काला पादरी', वीरेन्द्र जैन का 'पार' जैसे उपन्यासों में भी कई तरह से अस्मिता विहीन बननेवाले अदिवासियों का जिक्र है। उनका विस्थापन असल में बहुत भयानक स्थिति पैदा करता है।

किसानों की स्थिति

भूमंडलीकरण के साथ जो उदारीकरण हुआ उसका बुरा असर कृषकों पर पड़ा। उनको जो सुविधायें मिल रही थीं वह समाप्त हो गईं। आज हम भारत में महीनों से अपने अधिकार केलिए सड़क पर धूप, सर्दी, वर्षा आदि की कठोरता झेलते हुए कोविड महामारी की भीषणता का भी सामना कर हड़ताल करते आ रहे किसानों का दिल छूनेवाला दृश्य देख रहे हैं। अब गाँधीजी के ये शब्द विचारणीय हैं - "अगर स्वराज्य सारी जनता की कोशिशों के फलस्वरूप आता है और चूँकि हमारा हथियार अहिंसा है इसलिए ऐसा ही होगा तो किसानों को उनकी योग्य स्थिति मिलनी ही चाहिए और देश में उनकी आवाज़ ही सबसे ऊपर होनी चाहिए। अगर विधान सभायें किसानों के हितों की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं तो किसानों के पास सविनय अवज्ञा और असहयोग का अचूक इलाज तो हमेशा होगा ही।" (द बंबई क्रोनिकल, 12-01-1945)। आज इसलिए किसान सडकों में असहयोग आंदोलन कर रहे हैं। बड़ी-बड़ी कंपनियों को पोषित करने केलिए किसानों के हितों को तिलांजलि करती है सरकार। कृषिभूमि नष्ट होकर मज़दूर बनने को विवश होनेवाले किसान हैं। अपनी कृषि से उचित लाभ न प्राप्त होने से जीवन भर कर्ज़दार बनकर आत्महत्या करनेवाले कृषक। समकालीन कई उपन्यासों में इदन्नमम, (मैत्रेयी पुष्पा), सोनामाटी (विवेकी राय), हलफ़नामा (राजु शर्मा), अकाल में उत्सव (पंकज सुबीर), आखिरी छलाँग (शिवमूर्ति) फाँस (संजीव), धारा का पुल (रवीन्द्र कुमार वर्मा) जैसे उपन्यासों में कृषकों के जीवन

के यथातथ्य चित्र का पर्दाफाश हुआ है। अकाल में उत्सव का शामप्रसाद किसान से भिक्षुक बन जाता है। उपन्यास में खेती को मल्टीनेशनल कंपनी को देने की तैयारी करनेवाली नई पीढ़ी का ज़िक्र है। देखिए - "किसान और मल्टिनेशनल? इन दोनों को आप एक ही तरह से मत देखिए। किसान जब एक खेती कर रहा है, तब तक हमको खाने केलिए मिल भी रहा है अनाज, एक बार मल्टीनेशनल कंपनियों ने खेती शुरू कर दी ना, तो फिर देखिए क्या होते हैं अनाज के भाव?..... आप उस दिन की भयावहता नहीं समझ पा रहे हैं।'' (पृ. 176)। मल्टीनेशनल कंपनी के वश में खेती के पहुँचने पर यहाँ की स्थिति भयानक होगी इसका संकेत दिया गया है।

संजीव द्वारा लिखित 'फाँस' में सरकारी योजनाओं के शिथिल होने तथा किसानों की व्यथा का बयान किया गया है - "दिल्ली में ही बैठकर क्यों बना ली सरकारों ने हमारे गाँव के कायाकल्प की योजना? क्यों जगाए सपने ही बीज की तरह बाँझ सपने? मर गए लोग।" (पृ. 72)। रवीन्द्र कुमार वर्मा भी अपने उपन्यास 'धारा का पुल' में किसानों के प्रति सरकारी उपेक्षा की वजह भूमंडलीय नीति कहते हैं। "पिछले चार साल में बुंदेलखण्ड के सात जिलों में लगभग दो सौ लोग आत्महत्या कर चुके हैं। आत्महत्या की कहानी काफी कुछ एक जैसी थी। पहले साल फसली ऋण। फसल का सूख जाना। ऋण न चुका पाना। फिर साहूकार से सवाया गेहूँ.... कहानी का निश्चित अंत आत्महत्या। डेढ़ सदी बाद ऐसा अकाल फिर पड़ा था। एक फर्क ज़रूर था। अंग्रेज़ी की प्रतिरोधी नीति के चलते पचीसा (1866-69) अकाल में भी किसान ने आत्महत्या नहीं की थी। किसान की बलि लेते मौजूदा अकाल के पीछे आज़ाद देश का सठियाना विकास था जो भूमंडलीकरण के कुएँ में डूब गया था।" (पृ. 29) यहाँ किसानों की शोचनीय स्थिति का मूल कारण हमारे सामने पेश हुआ है।

समाधान

उपर्युक्त सारे के सारे उपन्यासों के द्वारा भूमंडलीकरण से उत्पन्न होनेवाली कई विपत्तियों का उद्घाटन हुआ है। इन विपत्तियों से बचने का रास्ता कुछ उपन्यासों में उपन्यासकार अपने ढंग से देने की कोशिश करते हैं। अलका सरावगी द्वारा रचित 'कलिकथा वया बाइपास' में आज की सारी समस्याओं के उपचार के रूप में गाँधी के विचार को प्रतिष्ठित किया गया है। उपन्यास में शांतनु का कथन विचारणीय है - "जब हमारी दुनिया के सारे बाइपास के रास्ते बंद हो गए, तो फिर मेरे पास यहाँ आने के सिवाय और कोई चारा था?" इसका मतलब है कि हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कोशिश नहीं की। हम समस्याओं को बाइपास करने का मार्ग ढूँढते रहे। गाँधी ने कहा था -"भारत को ग्रामीण उद्योगों के विकास के बिना और कोई चारा नहीं, इसे समझते वक्त मुझे विश्वास है एक दिन सब इस बूढे का स्मरण करेंगे। कांग्रसी, समाजवादी या साम्यवादी -सरकार किसी भी दल की हो, इस सत्य को मानने के लिए मजबूर हो जाएगी।" (संकलित रचनाएँ - एम.के. गाँधी, खंड-90) यहाँ डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा "गाँधी, अंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्यायें "शीर्षक ग्रंथ में लिखित यह बात बिलकुल प्रासंगिक नज़र आती है - "भारतीय इतिहास में यह दिन अवश्य आएगा जब वामपंथ अवरवाद से मुक्त होगा, मार्क्सवाद के अनुसार भारत की जातीय समस्या और वर्ग संघर्षों की समस्या हल करेगा, स्वयं एकताबद्ध होगा, मज़दूरों को एकताबद्ध करेगा। मज़दूरों और किसानों की एकता के बल पर इस अर्ध-औपनिवेशिक व्यवस्था को बदलने केलिए आगे बढेगा, तब वही गाँधीवाद से गाँधीजी की क्रांतिकारी विरासत पहचानेगा और उसे राष्ट्र जीवन में चरितार्थ करेगा।" यहाँ निर्मल वर्मा का यह विचार भी जोड़ना चाहूँगी - "सबसे बडा विकल्प तो गाँधीजी का था, जिन्होंने केन्द्रीकरण के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाई थी, जिन्होंने पंचायती राज पर बल दिया था, जिसमें

भारत एक राष्ट्र होने के बावजूद छोटे-छोटे समुदायों और गांवों पर आधारित हो, जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को पहचान सके।" (दूसरे शब्दों में)

अखिलेश द्वारा रचित "निर्वासन" उपन्यास ऐसा अनूठा उपन्यास है जिसमें जिन जड़ों की खोज है वह देशज संस्कार की खोज एवं पहचान की अनिवार्यता की याद दिलाती है। उपन्यास में इक्कीसवीं सदी के भूमंडलीकृत विकास ने 'निर्वासन' को कई चेहरे दिए। काशीनाथ सिंह के अनुसार एक तो यह कि सूर्यकांत- गौरी के प्रेम के कारण अपने माँ-बाप के घर से निर्वासित है, उसके चाचा-चाची की अति-अधुनिकता समृद्धि की होड और प्रदर्शन के कारण अपनी बीवी-बच्चा के परिवार से, बूढी-दादी की इच्छा से ही निर्वासित है। निर्वासन का दूसरा चेहरा मानवीय रिश्तों से बाहर के जगत में जहाँ पानी नदियों से, पानी की मिठास कुओं से, हरियाली पेड-पौधों से, जंगलों-पहाडों से, गंध फूलों से, स्वाद अन्न, फलों और सब्जियों से बाहर हो चुके हैं। तीसरा चेहरा उन्नीसवीं सदी की ओर अपनी जडों की खोज में चले जानेवाले राम अजोर पांडे है जो सूरीनाम से लखनऊ पधारे एक अरबपति है। वह गोसाईगंज के उसी भगेलू का पोता है जो करीब सवा सौ साल पहले 'गिरमिटिया' मज़दूर होकर सूरीनाम गया था। भगेलू को मज़बूरी में, लाचारी में जाना पडा। अकाल, सूखा, भुखंमरी, महामारी की वजह से। काम की खोज में कलकत्ता गए, दलाल के चक्कर में फंसकर सूरीनाम पहुँच गए। फिर सारी ज़िन्दगी बिसूरते रह गए अपनी धरती, आकाश और गोसाईंगंज के लिए। लेकिन नहीं लौट सके। यहाँ गोसाईंगंज एक चोटी सी बस्ती नहीं, पूरा देश हो। जब हम कई कारणों से निर्वासित होना मतलब हमारी धरती एवं देशज संस्कारों से बिछुटन है। इसलिए इस इक्कीसवीं सदी में हमारी धरती की ओर वापसी आज की माँग है। हम धरती या मिट्टी से बहुत दूर चले गए। वहाँ निर्मित सुख मात्र

है, सहज सुख हमारी मज़बूत जड़ों के साथ है। वह है भारतीय संस्कृति की तलाश या भूमंडलीय संस्कृति का प्रतिरोध।

डॉ. के. वनजा

सेवानिवृत्त प्रोफेसर

कोच्चिन विश्वविद्यालय

केरल

****

5

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी उपन्यास

डॉ. शबाना हबीब

वैश्वीकरण एक सतत प्रक्रिया है जिसमें दुनिया के सभी देश एक दूसरे से आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से अंतर संबंध रखते हैं। वैश्वीकरण का अर्थ स्थानीय क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर परिवर्तित होने की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते है तथा एक साथ काम करते हैं। यह एक बहु आयामी अवधारणा है। वैश्वीकरण एक बहुत व्यापक एवं चर्चा के केंद्र में रहे हैं। यह दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत कर रही है। इसके द्वारा अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति को संचार और व्यापार द्वारा विश्वव्यापी नेटवर्क के माध्यम एकीकृत किया गया है। उदाहरण के लिए, जिसके पास मोबाइल और इंटरनेट हैं, वे लोगों के अधिक करीब होते हैं। वैश्विकरण का प्रभाव हमारे दिल- दिमाग पर पड़ना स्वाभाविक है। समाज और साहित्य पर भी इसका असर पड़ गया है। साहित्यकार का दायित्व तो यह है कि वह हमें इसकी अच्छाइयां एवं बुराइयों पर नजर दौड़ाते हैं। कहा करता है कि साहित्य समाज सापेक्ष है। समाज में हो रहे सभी परिवर्तनों को साहित्यकार सृजन का विषय बना लेते हैं।

ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' 2000 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भूमंडलीकरण, व्यावसायिकता, आजीविकावाद, विज्ञापनबाजी, उपभोक्तावाद आदि के मिश्रण से बने मनुष्यों की कहानी बताता है। उपन्यास का मुख्य उद्देश्य बाजारवाद की विभीषिका को

उद्घाटित करना है। बाजार में मनुष्य नहीं उपभोक्ता केंद्र में रहते हैं। आज उपभोक्ताओं को अपनी प्रोडक्ट्स की ओर खींचने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक से बढ़कर एक तरीका ढूँढ़ते रहते हैं। बाज़ार में आज हर चीज़ के लिए विकल्प मिल रहे हैं। हर चीज़ विज्ञापन की चकाचौंध भरी दुनिया से चमक दमक कर बाजार में आती हैं। विज्ञापनों पर भी भरपूर पैसा खर्च कर रहे हैं। उपन्यास के एक पात्र अभिषेक शुक्ला विज्ञापन कंपनी में काम करता है। वह मॉडल नीना को लेकर स्पार्कल कंपनी के टूथपेस्ट का विज्ञापन बनाने में व्यस्त है। विज्ञापनों के पीछे छिपी सच्चाई के बारे में वह अपनी पत्नी से कहता है —"सच्चाई तो यह है कि मॉडल नीना भी स्पार्कल इस्तेमाल नहीं करती। वह प्रतिद्वंद्वी कंपनी का टिक्को इस्तेमाल करती है पर हमें सच्चाई नहीं प्रोडक्ट्स बेचना है" यानी की बाजारवाद का आधार है विज्ञापन और विज्ञापन का आधार झूठ। लेखिका हमसे कहती है कि -झूठ बेचा जा रहा है, झूठ खरीदा जा रहा है। नैतिकता कहाँ ? इसके और एक पात्र पवन का कथन है-"मैने अब तक 500 किताबें तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैपटर नहीं है"2।

बाज़ारवाद में सबसे अधिक पिसता जा रहा है युवा वर्ग। ऊंची पढ़ाई हासिल करने के बाद युवा वर्ग नौकरी की तलाश में शहर जाते हैं। वे शहर में आकर मेस से खाना खाते हैं, फ़्लैट शेयर करते हैं, जहाँ उन्हें पैसा मिलता है, वहाँ नौकरी करते हैं। घर परिवार से दूर रहते हैं। घर वालों से बात करने का समय उन्हें नहीं मिलता। इस उपन्यास का एक पात्र पवन शहर में आकर नैतिकता भूल बैठता है। आज की युवा पीढ़ी तरक्की के पीछे दौड़ -दौड़कर मन की शांति खो बैठती है। शान्ति की खोज में भटकती रहती है। नई पीढ़ी के लोगों का मूल मंत्र है —"चीजों को नई नजर से देखना सीखिए, नहीं तो आप पुराने अखबार की तरह रद्दी की टोकरी में फेंक दिए जाएंगे"3।

बाज़ारवाद ,उपभोक्तावाद आजीविकावाद ने रिश्तों पर गहरा असर डाला है। आज के बच्चे अपनी मर्जी से जी रहे हैं। पवन स्टेला से शादी करने का निर्णय लेने के बाद सिर्फ माँ बाप को उसकी सूचना देता है। शादी से पहले दोनों साथ साथ रहते हैं। बाद में करियर के पीछे पीछे दौड़कर दोनों कोसों मील दूर रहते हैं। करियर पहले, फिर परिवार। आज के बच्चे करियर के पीछे पड़कर माँ बाप को अकेला छोड़कर विदेश चले जाते हैं। माँ बाप की मृत्यु हो गई तो दाह संस्कार के लिए वे नहीं आते । इतनी संवेदनशून्य हो गए हैं आज की पीढ़ी। मिस्टर सोनी की दिल का दौरा पड़ने पर मृत्यु हो जाती है। दाह संस्कार के लिए अमेरिकावासी बेटे का आना जरूरी था। लेकिन बेटे ने माँ से क्या कहा ये देखिए- "किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाए। मेरे लिए तेरह दिन रुकना संभव नहीं होगा"4। यहाँ पर लेखिका यह दिखाना चाहती है कि पैसे के सामने रिश्तों की कोई अहमियत नहीं है।

इस कड़ी में आने वाला और एक उपन्यास है 'रेहन पर रग्घु' । यह काशीनाथ सिंह द्वारा रचित बहुचर्चित उपन्यास है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद का प्रभाव गांवों पर कैसे पड़ता है? यही इस उपन्यास का परतिपाद्य है। गांव के भौगोलिक, पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण में इसके कारण जो परिवर्तन हुआ है, इसका सही प्रतिपादन काशीनाथ जी ने किया है। रघुनाथ इस उपन्यास का नायक है। वो एक साथ किसान भी हैं और पड़ोस के कस्बे के कॉलेज में अध्यापक भी है। गांव में एक और ऐसे किसान हैं जो स्वयं खेतों में काम नहीं करते मज़दूरों से काम कराते हैं। उनके बच्चे भी शहरों में पढ़ रहे हैं या नौकरी कर रहे हैं। रघुनाथ और अन्य ठाकुर ऐसे किसान हैं। दूसरी ओर ऐसे किसान हैं जो बड़े किसानों की खेती पर अधिया के आधार पर काम करते हैं। खेती श्रम आधारित कार्य है। उन्हें अच्छा वेतन मिलना ज़रूरी है। इस उपन्यास में यह भी दिखाया है कि ग्रामीण मजदूर अधिक वेतन मांगकर हड़ताल करते समय वहां के एक ज़मींदार

ने एक ट्रेक्टर खरीद लिया। यहाँ पर खेती करने के संसाथनों में आए बदलाव को दर्शाया है। इससे किसानों की सोच में आए परिवर्तन भी देख सकते हैं। खेती में नयी तकनीक के साथ साथ रासायनिक खादों का प्रयोग भी बढ़ा है। इसी सोच का चित्रण देखिये : "सबके खेत जोते भाड़े पर एक दिन भी उसका ट्रैक्टर बैठा नहीं रहा। सबके जुआठ धरे रह गए। उसने सब को एहसास करा दिया कि बैल सिरदर्द और बोझ है , फालतू हैं , दुआर गंध करते हैं , उन्हें हटाओ ! उनके गोबर भी किस काम के ? उनसे उपजाऊ तो यूरिया है"5।

वर्तमान समय में गाँवों में भौगोलिक स्तर पर बहुत अधिक परिवर्तन हो रहे हैं। बिजली, टी.वी, मोबाइल, पंखे सब उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बनते जा रहे हैं। गाँवों में हो रहे परिवर्तन का चित्रण देखिये : "अंबेडकर गाँव हो जाने के बाद पहाड़पुर तेज़ी से बदल रहा था ! गाँव में बिजली आ गई थी , केबुल की लाइनें बिछ गई थीं, अखबार लेकर हॉकर आने लगे थे ! छौरे पर खंडजा बिछा दिया गया था। खपरैल के कुछ ही मकान रह गए थे, बाकी सब पक्के थे। जो पक्के नहीं थे, उनके आगे ईंटें गिरी नजर आती थीं"6। (वही – 61) बदलते नैतिक मूल्यों की चर्चा भी लेखक ने किया है। आज-कल धन-दौलत केलिए भाई भाई को मारने पर तुले हैं। इस उपन्यास में रघुनाथ के भतीजे न केवल उनका जमीन हड़पने का प्रयास करता है, बल्कि मारपीट भी करते हैं। ज़मीन से संबंधित कागज़ातों पर जबर्दस्ती हस्ताक्षर करवाते भी है। इस उपन्यास के बारे में चौथीराम यादव का कथन बिलकुल संगत है- "सामंतवादी और पूँजीवादी संस्कृतियों की टकराहट में किसान संस्कृति पिस रही है। प्रेमचंद के किसान आज लाखों की संख्या में आत्महत्याएँ कर रहे हैं। आधुनिकीकरण के चलते गावों में होनेवाले बदलाव को लेखक ने पहाड़पुर के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है"7।

अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास का विषय समसामयिक कोरपोरेट जगत को कथावस्तु का आधार लेकर बुना है। यह उपन्यास कॉरपोरेट जगत की वैचारिकता और धोखाधड़ी को प्रस्तुत करता है। कोरपरेट जगत की चकाचौंध में पिसकर देश की एक तिहाई लोग जी रहे हैं। इस उपन्यास में कोरपरेट कल्चर के साथ वर्तमान में बदलते जा रहे रिश्ते, भाग-दौड़ की ज़िंदगी, जीवन-दर्शन को भी बखूबी से पिरोया है। वैश्वीकरण रूपी डाइन हमें किस प्रकार अर्धसत्य छिपाकर अपनी परिधि में समाहित कर रहे हैं उसके माध्यम से पूरे उपन्यास में लेखिका के अर्थशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय अध्ययन की सूक्ष्मता देखी जा सकती है। विकास के नाम पर हमारे पीछे विस्थापन की जो गहरी खाई बनाई जा रही है, उसका भी चित्रण बार बार देखने को मिलता है। इतना ही नहीं इस ग्लोबल बनती जा रही दुनिया को देखकर लेखिका संवेदनात्मक धरातल पर प्रश्नचिन्ह लगाती है —"सोचो कि एक औरत आदमी अपनी जमीन इसलिए सरकार को या कंपनी को देने से इंकार करें कि उनके दो साल के मरे हुए बच्चे की देह पिछवाड़े के खेत में गड़ी है और वहाँ पर लगाया हुआ आम का पेड़ अब दो साल बड़ा हो गया है तो इसमें गलत क्या है"8।

आज विकास के नाम पर बड़ी-बड़ी कंपनियां और सरकारों ने मिलकर किसानों और आदिवासियों को विस्थापित कर दिया है । लेखिका उनसे बार - बार टकराती हैं। विस्थापित हुए लोगों के प्रति सरकार क्या करती है? उपन्यास में इसका चित्रण भी दिखाया गया है- "जहाँ वह (गुरचरण) रह रहा था, किसी बड़ी कंपनी ने कुछ दूर के एक गांव में पुलिस की मदद से रातों रात सोते हुए गांव वालों को स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे सबको भेड़-बकरियों की तरह उठा कर जेल भेज दिया था। उनके चूल्हे-चक्की, खेत-बाग, पशु-प्राणी सब को रौंदकर मिट्टी में मिला दिया। छह सौ से ज्यादा घर उजाड़ दिए गए और उनमें से सौ एक की जमीन पैसा देकर छुट्टी पाली बाकी

सब दिहाड़ी मजदूर बनकर या भिखारी बनकर हमारे शहरों की क्रोसिंग पर भीख मांगते रहे या मर खप गए" 9।

प्रस्तुत उपन्यास में अलका सरावगी ने वैश्वीकरण के दौर में अपनी अहम भूमिका निभा रहे विज्ञापन संस्कृति का भी अर्थशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय, व व्यावसायिक अध्ययन का चित्रण किया है। आज विज्ञापन की संस्कृति ने हमें किस तरह से अपने शिकंजे में कस लिया है, इसका चित्रण भी देखा जा सकता है- "अब आए वे दिन जब इंडिया में सरकारी अफसर तय करते थे कि औरतें बाजार से कौन सी क्रीम और लिपस्टिक खरीदेगी और लोग किसी टीवी पर कौन से प्रोग्राम देखेंगे? अब तो देश के 10 करोड़ मोबाइल फ़ोन वाले परेशान हैं कि 50 मॉडल से कौनसा मोबाइल खरीदे?"10।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में याद रखने वाला और एक उपन्यास है रणेंद्र का 'ग्लोबल गांव के देवता'। विकास के नाम पर आदिवासियों का जीवन किस प्रकार तितर बितर हो जाता है यही इस उपन्यास में दिखाया गया है। उपन्यास का अंचल झारखंड के भौरापाट पहाड़ी प्रदेश है। वहाँ पर आसुर जनजाति सैकड़ों वर्षों से रह रहे हैं। उन पहाड़ी प्रदेशों में स्थान स्थान पर बॉक्साइट की खुली खदानें हैं। बॉक्साइट निकालते वक्त गड्ढे भरने का वादा तो देता है। लेकिन इसका पालन कभी नहीं करता। सरकार भी इसके खिलाफ़ एक उँगली तक नहीं हिलाता। जहाँ पर ये आदिवासी लोग रहते हैं वहाँ से दूर बॉक्साइट को प्रोसेस करके उसे अल्युमिनियम में ढालने का जगह है, जो सिल्वर सिटी नाम से जाने जाती हैं। उन दोनों प्रदेशों में जीने वाले लोगों के बीच आकाश पाताल का अंतर है। सिल्वर सिटी के लोग ऐशो आराम के साथ जीते हैं तो इन पहाड़ी इलाकों में रहने वालों को पीने के लिए पानी तक नहीं मिलता । इन पहाड़ी प्रदेशों में बहुराष्ट्रीय कंपनी वालों और पहाड़ों में रहने वालों के बीच का संघर्ष चलता रहता है। भौरापाट में असुरों

के सौ से ज्यादा घरों को उजाड़कर एक स्कूल बनाया गया था, लेकिन उस स्कूल में अ़सुर जन जाति के कोई भी बच्चे पढ़ते नहीं हैं क्योंकि उन्हें भर्ती नहीं मिलता। इस कुल के बच्चे स्कूल के गेट देखकर खुश होकर चले जाते हैं। शिनडाल्को कंपनी वाले दलाल को रखकर बॉक्साइट प्रोसस करने के लिए लोगों की भूमि गिरवी में लेती हैं। ये लोग सारी की सारी भूमि ऐसे हड़पेगें तो आसुर जनजाति के लोगों को रहने के लिए भूमि नहीं बचेगी, इसलिए असुर लोगों का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा। इसी यथार्थ की ओर लेखक हमें ले जाता है। वहाँ के ज़मींदार वर्ग भी इन लोगों की भूमि पर दृष्टि रखकर उसे हड़पने का प्रयत्न करते हैं। यदि कोई भूमि देने से इंकार करता तो उनकी हत्या करने को भी नहीं हिचकते । गोनु सिंह को भूमि न देने के कारण लालचन दा के चाचा की हत्या करके उनका सिर अंबाटोली देवी थाने में रख लिया था। आसुर जनजाति पर हुए ऐसे हमलों पर उन लोगों का विचार है-" यह केवल एक लालचन दा के चाचा की हत्या का सवाल नहीं था और न किसी असुर पर पहली बार था आखिरी बार आक्रमण हुआ था। न यह पहली बार जमीन के टुकड़े के लिए हत्या हुई थी। यह हजारों हज़ार साल से चले आ रहे घोषित अघोषित युद्ध की नवीनतम कड़ी मात्र था"11।

शिनडाल्को कंपनी की नाइंसाफी देखकर नवयुवक संघ आदिवासियों को और मज़दूरों को इकट्ठा कर बड़ी रैली निकाली। उस शहर ने अभी तक ऐसी रैली देखा तक नहीं। कलेक्टर के हाथों मांग पत्र सौंपकर कहा कि अगर किसी निर्णय नहीं हुआ तो हम चुप नहीं रहेंगे। चार पांच दिनों तक कोई निर्णय नहीं हुआ , इसलिए पूरे अंचल के कामों को रोक दिया गया और महिलाओं ने अफसरों की गाड़ी को जाने नहीं दिया। ऐसा करके इन लोगों ने बहुराष्ट्रीय कंपनी को चुनौती दी। खदानों की सात दिनों की बंदी से ये नए कंपनी मालिक या ग्लोबल गांव के देवता का जीना हराम हो गया है। इन कम्पनी वालों की चाकरी करने वालों की धमकी के कारण नव

युवक संघ आंदोलन से पीछे हट गया। इसके बाद ग्लोबल गाँव के देवताओं के जूता चाटने वाले कलेक्टर और पुलिस ने मिलकर आंदोलनकारियों को छापा मारना शुरू किया। रुमझुम, लालचन सब पकड़े गए। उन्हें छुड़वाने के लिए आए शिव दास बाबा के प्रस्ताव को मानकर कंपनी वाले लोगों की आँखों में धूल डालने के लिए दो चार गड्ढे भर दिया। इसके पीछे इन जनजाति को नीचा दिखाने की साजिश है। अपनी भूमि के प्रति जो लगाव है वह रुमझुम के इन शब्दों में व्यक्त है — "हम प्रकृति के पूजक हैं, हमारे महादेव पहाड़ है, यह पाट है जो हमें पालता है"12। वेदांग नामक बहुराष्ट्रीय कंपनी को अपने कारखाना खोलने के लिए सौ एकड़ जमीन चाहिए। इसके लिए उस निरीह जनों को वहाँ से भगा दिया गया। यहाँ पर क्या होना है इसका निर्णय लेने वाले किसी पांच स्टार होटल में रहने वाले ग्लोबल गांव के देवता होंगे। आज के कॉर्पोरेट कंपनी वाले भी ऐसा ही करते है। लड़ाई को कुचल डालने का तंत्र भी वे जानते हैं। इस प्रकार आगे बढ़ी इस लड़ाई के नेतागण को कंपनी वाले पैसे देकर खरीदा गया। फिर जनता को पुलिस द्वारा पिटाई करने का आदेश दिया है। इन लोगों के संघर्ष का चित्रण करते करते लेखक को लगा कि देश के कोने कोने में ऐसे हाशिए पर पड़े समुदाय संघर्ष रत है। उदाहरण के माध्यम से इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न भी करता है। रायगढ़ जिले के एक नदी को बहुराष्ट्रीय कंपनी वालों को सौंपा तो वहाँ के लोग बिना पानी के मर गए। उस समय राजनीतिज्ञों को लगा कि इस प्रकार की मृत्यु गरीबी नियंत्रण के लिए एक तरीका है। इससे अन्य नदियों को भी किसी के हाथों सौंपने को तैयार हो गये। देश विदेश में रहने वाले कंपनियों के देवता सैटलाइट के माध्यम से पता लगाते है कि कहाँ कहाँ खनिज है, उसे हड़पने का उपाय ढूँढते हैं? वहाँ पर रहने वालों के बारे में सोचते तक नहीं है। वहाँ पर कारखाना आए तो सैतीस गाँवों की जनता का घर उजड़ जाएगा। उन लोगों के विस्थापन की व्यवस्था के बारे में कंपनी मालिक से बातचीत करने के लिए गए सभी

व्यक्तियों को मार डाले गया। अपनी धरती के लिए अपने अस्तित्व के लिए लड़ने वालों को हाशिये में धकेलकर कंपनी वालों ने इस लड़ाई में विजय हासिल की। असुर जनता पर हुए इस विशेष हत्याकांड से कंपनी वालों की अवस्था कैसी है, इसका चित्रण देखें- "ग्लोबल गाँव के देवता खुश थे। जो लड़ाई वैदिक युग से शुरू हुई थी, हज़ार-हज़ार इंद्र जिसे अंजाम नहीं दे सकते थे। ग्लोबल गांव के देवताओं ने वो मुकाम पा लिया था"13 । वैसे भी ये उपन्यास बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विस्थापन की समस्या को उजागर कर रहे हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' कॉर्पोरेट दुनिया का प्रतीक है।

इस प्रकार देखे तो समकालीन उपन्यासकारों ने वैश्वीकरण के विकराल हस्तक्षेप मानव जीवन पर कैसे असर छोड़ते हैं इस पर विचार किया है। उनके उपन्यासों के माध्यम से भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, विज्ञापन की संस्कृति, विस्थापन आदि समस्याओं का प्रभाव किस प्रकार हो रहे हैं , इसका खुला चित्र व्यक्त होता है। वैश्वीकरण के प्रभाव ने हमारी जीवन शैली को बदल डाला है। इसका सही दृष्टांत है ये उपन्यास।

संदर्भ सूची

1. दौड़ – ममता कालिया -2002- वाणी प्रकाशन - पृष्ठ सं. 7
2. वही – पृष्ठ सं. 39
3. वही- पृष्ठ सं. -66
4. वही- पृष्ठ सं. 81
5. रेहन पर रग्घु- काशीनाथ – राजकमल प्रकाशन – 2008 -पृष्ठ सं. 79)
6. वही – पृष्ठ सं. 61
7. चौथीराम यादव- रहन पर रग्घू या इकीसवीं सदी का गाँव-घर ? - चौपाल – पृष्ठ सं. 31)
8. अलका सरावगी - एक ब्रेक के बाद- राजकमल प्रकाशन- दिल्ली 2010। पृष्ठ संख्या 169

9. वही - पृष्ठ संख्या 170।
10. वही - पृष्ठ संख्या। 112
11. ग्लोबल गाँव के देवता – रणेंद्र – 2009 - पृष्ठ संख्या। 32।
12. वही - पृष्ठ संख्या 80
13. वही -पृष्ठ संख्या 100

डॉ. शबाना हबीब

सहायक आचार्या

राजकीय महिला महाविद्यालय

तिरुवनंतपुरम , केरल

****

6

वैश्वीकृत भारतीय समाज और ' दौड ' उपन्यास

डॉ. लता डी

वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिससे प्रादेशिक आर्थिक व सामाजिक स्थितियों और संस्कृतियों को संचार व परिवहन साधनों और वाणिज्य के ग्लोबल नेटवर्क द्वारा एकत्रित किया जाता है । बीसवीं शती के अंतिम दशक में अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति भारत में भी विश्वबैंक , विश्व व्यापार संगठन , बहुराष्ट्रीय कंपनियों व निगमों के द्वारा अपनायी गयी आर्थिक नीतियों का प्रचार - प्रसार हुआ । इसके फलस्वरूप हमारे यहाँ उपभोक्तावाद , उन्मुक्त बाज़ार , निजीकरण , सांस्कृतिक और जीवन मूल्यों का पतन , सूचना प्रौद्योगिकी व विज्ञापन का माया स्वरूप सब ने मिलकर आर्षभारत की निजी विशेषताओं को अमेरिकीकरण या पश्चिमीकरण की ओर धकेल दिया । संयुक्त राष्ट्र संघ के ESCWA [Economic and social commission for Western Asia] के अनुसार " It refers to the reduction and removal of barriers between national borders In order to facilitate the flow of goods , capital , services and labour....."

भारत के आर्थिक , सामाजिक , राजनीतिक ,वैज्ञानिक ,औद्योगिक ,प्रौद्यौगिक , व्यापार प्रबन्धन ,खान - पान , आचार - विचार , पर्यटन , वेश - भूषा ,भाषा जैसे कोई भी क्षेत्र वैश्वीकरण के प्रभाव से मुक्त नहीं । कुछ विद्वानों के अनुसार यह औपनिवेशीकरण या पूँजीवाद का नया संस्करण है । वस्तुतः प्रभुत्वसंपन्न साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा विकासशील राष्ट्रों के प्राकृतिक

एवं मानव संसाधनों के शोषण का नया दौर शुरू हुआ । ऐसे शोषण से पिछड़े राष्ट्रों में गरीबी और बेरोज़गारी बढ़ जाती हैं । फलतः असुरक्षा की भावना से ग्रस्त युवावर्ग नशीले पदार्थों के सेवन , धार्मिक पागलपन ,लूटमार ,आतंकवाद जैसे नकारात्मक कार्यों के शिकार हो जाते हैं । वैश्वीकरण के नाम पर जब से यहाँ आर्थिक उदारीकरण ,बाज़ारीकरण और निजीकरण का नव साम्राज्यवाद घुस आया तबसे यहाँ बेकारी , आर्थिक उच्च नीचत्व , भुखमरी , कृषकों की आत्महत्या ,मूल्यच्युतियाँ , अशांति,पर्यावरण का असंतुलन जैसी विभीषिकाओं को बढ़ावा मिला ।

वैश्वीकरण से सभी राष्ट्र अपनी - अपनी संस्कृति व सभ्यता की खूबियों , मूल्यों एवं उपलब्धियों को एक दूसरे को ले दे सकते हैं । लेकिन इसके आर्थिक पक्ष नये - नये उत्पादों के आविष्कार ,बाज़ार ,विज्ञापन द्वारा वाणिज्य तंत्रों की तलाश आदि में रत रहे । विकसित देशों को अविकसित या अल्पविकसित देशों में पूँजी का निवेश करके अधिक से अधिक लाभ उठाने का मौका मिल गया । फलतः संपन्न और विपन्न राष्टों के बीच का अंतर बढ़ गया । व्यापार एवं वाणिज्यप्रधान वैश्वीकरण ने मानवीय संस्कृति, संबन्ध एवं संवेदनशीलता में दरारें पैदा कर दी हैं । राष्टों के बीच की दूरियाँ व सीमाएँ मिट गयीं । लेकिन व्यक्तियों की मानसिक दूरियाँ बढ़ गयीं । ऐसे उपभोगप्रधान वैश्वीकृत समाज में खुले बाज़ार और उन्मुक्त व्यापार का वर्चस्व इतना बढ़ा है कि आदमी संवेदनशून्य ,निर्मम ,स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित हो गया साथ ही साथ प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन बिकाऊ चीज़ हो गये ।

भारत में आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के अपनाये जाने के बाद उत्पन्न बाज़ारवादी संस्कृति ने परंपरागत भारतीय पारिवारिक ढाँचे को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया । संयुक्त परिवार अणुपरिवारों में तब्दील हो गये । बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्रस्तुत उपभोग के साधनों से

वंचित युवावर्ग विषाद और अवसाद के चंगुल में हैं । संबन्धों में आये विघटन से घर के सदस्य निराशा, अकेलापन, तनाव ,पार्थक्य आदि के शिकार हैं । दादा - दादी के लाड़ - प्यार से वंचित अणुपरिवारों के बच्चों में कम उम्र में ही नकारात्मक भावनाएँ बल पाती हैं । घर के प्रौढ़ लोगों की हालत भी दयनीय है । नौकरी और धनोपार्जन को जीवन का एकमात्र लक्ष्य माननेवाले आज की दंपतियों में आत्मीयता का अभाव है और बढ़नेवाले प्रतियोगिता के भाव ने घरेलू वातावरण को संघर्षात्मक बना दिया है । इसके बारे में श्रीमती गीतांजलि प्रसाद कहती है —" परिवार ज़बर्दस्त दबाव के शिकार हो रहे हैं । कामकाजी माँ , अति व्यावसायिक पिता , कॉल सेंटर में काम करनेवाले बच्चे.....परिवार में साहचर्य केलिए कोई समय शेष नहीं रह गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अकेला अपनी दुनिया में जी रहा है । ...परिवार का अर्थ पुनर्परिभाषित हो रहा है ।"1 1

उक्त परिस्थितियों वृद्ध जनों की घोर उपेक्षा हो रही है । फलस्वरूप उनमें भय , शंका , पीड़ा , उदासीनता , हीन भावना आदि का उत्पन्न होना स्वाभाविक है । बाज़ार के पीछे दौड़नेवाली युवा पीढ़ी केलिए ये बुज़ुर्ग बोझ और उपेक्षा के पात्र हैं । बुढ़ापे की अवहेलना मात्र नहीं ,मनुष्य की उदात्त रागात्मक वृत्तियाँ अपना आदर्श छोड़ते हुए दिखाई देती हैं । इस वैश्वीकृत समाज में प्रेम ,करुणा ,शोक , सहानुभूति सब दिखावे केलिए हैं । विवाह व्यापार बन गया और सारे संबन्ध समझौते मात्र हैं । बाज़ार के अनुकूल सदा अप — टु - डेट बनने में प्रयासरत आज का मानव केवल एक ग्राहक है और सब कुछ खरीदकर घर को भरापूरा बनाने के बाद भी असंतुष्ट । इस नव उपनिवेशवादी अपसंस्कृति के माहौल में सारे मानवीय संबन्धों की पवित्रता और आत्मीयता के स्थान पर केवल यांत्रिकता है । मीडिया और विज्ञापन जगत का इसमें विशेष हाथ है ।

संवेदनशील साहित्यकार समाज की नई धडकनों को अपनी रचनओं में वाणी देते रहते हैं । आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर श्रीमति ममता कालिया ने सन् 2000 में 'दौड़' नामक उपन्यास की रचना की , जिसमें नव उपनिवेशवादी भारतीय समाज की प्रमुख प्रवृत्तियों जैसे व्यावसायिकता ,आजीविकावाद , विज्ञापनबाज़ी , उपभोक्तावाद आदि के शिकार बने मनुष्यों की जीवन यथार्थता के साथ - साथ बुढ़ापे में अपनी संतानों के प्यार एवं सामीप्य से वंचित अकेलेपन में जीवित रहने को विवश माँ - बाप की दयनीय व्यथा कथा भी है ।

'दौड़' उपन्यास के संबन्ध में स्वयं लेखिका का कथन है - "आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाज़ार को शक्तिशाली बनाया , इससे व्यापार प्रबन्धन की शिक्षा के द्वार खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबन्धन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिए । बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने रोज़गार के नये अवसर प्रदान किये । युवा वर्ग ने पूरी लगन के साथ इस द्वार को खोला और इसमें प्रविष्ट हो गया । वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया वाद प्रारंभ हो गया ,बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद । इसके अंतर्गत बीसवीं सदा का सीधा -सादा खरीददार एक चतुर उपभोक्ता बन गया । जिन युवा प्रतिभाओं ने यह कमान संभाली उन्होंने कार्यक्षेत्र में तो खूब कामयाबी पाई पर मानवीय संबन्धों के समीकरण उनसे कहीं ज्यादा खिंच गए ,तो कहीं ढीले पड़ गये । दौड़ इन प्रभावों और तनावों की पहचान कराता है ।" 2

उक्त उपन्यास में आजीविकावाद और आर्थिक उन्नति के लक्ष्य के पीछे भागनेवाली नई पीढ़ी के आत्मसंघर्ष और पारिवारिक संबन्धों का बिखराव अभिव्यक्त है । इसमें कठिन प्रयत्न करके अपने बच्चों को बेहतरीन शिक्षा देकर उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करनेवाले साधारण माँ - बाप हैं राकेश पाण्डे और रेखा । लेकिन बच्चे पवन और सघन अपनी संस्कृति ,अपने माँ - बाप , परिवार और अपने परिवेश सबसे हटकर अपने ढंग का जीवन जीते हैं ।

भारत के बुद्धिजीवियों का शहर इलाहाबाद ही इस कहानी की पृष्टभूमि है । बड़ा बेटा पवन एम . बी . ए . की उपाधि प्राप्त करने के बाद एक कंपनी में सहायक मैनेजर है । वह अपनी नौकरी में अधिक से अधिक उन्नति चाहता है । पिता से वह स्पष्ट कहता है —" पापा मेरेलिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है , कैरियर है । ....मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए , तभी मैं कामयाब रहूँगा ।" 3

आधुनिक युवा पीढ़ी का अशांत मन पवन में हम देख सकते हैं । खाली समय में भी अपनी करियर और कंपनी के मारकेटिंग आदि पर ही सोच है । इसी बीच कंप्यूटर विजर्ड स्टैला नामक धनिक युवति से वह मिलता है । अपनी प्रेमिका से बढ़कर उसे वह अपनी उन्नति का साधन मानता है । स्टैला का परिचय अपनी माँ को पवन यों देता है —" माँ, स्टैला मेरी बिज़िनस पार्टनर , लाइफ पार्टनर , रूम पार्टनर तीनों है ।" 4

कैरियर के पीछे भागदौड़ मचानेवाले बेटे पर चिंतित पिता का कथन है —" आज पवन की बातें सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा । इसने तो घर के संस्कारों को एकदम ही त्याग दिया है ।.....पवन के बहाने एक पूरी की पूरी युवा पीढ़ी को पहचानो । ये अपनी जडों से कटकर जीनेवाले लड़के समाज की कैसी तस्वीर तैयार करेंगे। अपने बच्चों की अनुपस्थिति में व्याकुल होकर माँ कहती है — हम दोनों बिलकुल अकेले हो जाएँगे । वैसे ही यह सीनियर सिटिजन कालेनी बनती जा रही है , सबके बच्चे पढ़ लिखकर बाहर चले जा रहे हैं ।" 5

यहाँ सांस्कृतिक टकराहट एवं पीढ़ीगत दृष्टिकोण में अंतर दर्शनीय है । ग्लोबल मानव का दावा करनेवाले आधुनिक बाज़ार के पुजारी पुनीत रिश्तों को भी उपयोगितावादी एवं व्यावसायिक दृष्टिकोण से देखते हैं । इससे सबसे ज़्यादा चकित , निराश एवं असुरक्षाबोध से पीड़ित है पुरानी पीढ़ी । बाज़ार एवं प्रौद्यौगिकी ने सचमुच मनुष्य को संवेदनशून्य और मतलबी

बना दिया है । जीवन के सच्चे आनन्द से वंचित पवन - स्टैला जैसै दंपति आज अलग - अलग शहरों में उत्कृष्ट भविष्य के पीछे हैं ।

अपने भाई के समान सघन भी अपने माँ - बाप की इच्छा के विरुद्ध अच्छी नौकरी केलिए ताइवान चला जाता है । इसी बीच उस कॉलनी के सोनी साहब की अचानक मृत्यु होती है तो उनके बेटे को पिता के अंतिम संस्कार केलिए भी समय नहीं । पड़ोसी ही यह कार्य करते हैं। इस घटना से सब आहत हो जाते हैं । अंत में रेखा और राकेश इस कठोर सत्य से समझौता कर लेते हैं कि बुढापे में अपने बच्चों के संरक्षण में जीने का सपना बिलकुल व्यर्थ है ।

भूमण्डलीकरण की समस्त पहलुओं पर उक्त उपन्यास में चर्चा हुई है । बेकारी की समस्या ,प्रदूषण की समस्या और उससे लाभान्वित होनेवाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भी चर्चा है । इसमें राजुल नामक युवक को विवाह करने के अपराध से विज्ञापन एजेन्सी की नौकरी से हाथ धो लेना पडता है । मानवाधिकारों के हनन में भी धनोपार्जन केलिए भागदौड मचानेवाले ये आधुनिक मानव विज्ञापन के मायाजाल में पड़े हुए हैं जो कि नैतिकता और सच्चाई से कोसों दूर हैं । उपन्यास में मार्कटिंग में निपुण एक युवक का दावा है — आई कैन सेल ए डेड रैट । ऐसे युवा वर्ग अपने माँ - बाप के प्यार और वात्सल्य के बदले में उनको पैसे ही देते हैं ।

इस तरह देख सकते हैं कि वैश्वीकरण से उत्पन्न विभिन्न स्थितिगतियों ने बीसवीं शती के अंतिम दशकों से लेकर भारतीय समाज को मानसिक तौर पर पश्चिम की संस्कृति का विशेषकर अमेरिकी संस्कृति का अनुयायी बना दिया । आर्ष भारतीय संस्कृति के पुजारी अब बाज़ार के पुजारी होते जा रहे हैं । मानवीय एवं पारिवारिक संबन्धों , मूल्यों आदि में दरार पैदा करते हुए आदमी को धनलिप्सा और उपभोग संस्कृति के गुलाम बनाकर , यांत्रिकता कपटता एवं दिखावे का मुखौटा पहनाकर यह नव उपनिवेशवादी वातावरण अग्रसर है । धनोपार्जन

और भौतिक सुख - सुविधाओं के पीछे अनंत प्रयाण करनेवाली नई पीढ़ी को सतर्क करते हुए पुरानी पीढ़ी का यह कथन सामयिक संदर्भ में ध्यातव्य है कि " केवल अर्थशास्त्र से जीवन नहीं कटता पवन , उसमें थोडा दर्शन और अध्यात्म और ढेर- सी संवेदना भी पनपनी चाहिए "6

संदर्भ :

1. श्रीमति गीतांजली प्रसाद ,द ग्रेट इंडिया फामिली
2. श्रीमति ममता कालिया , दौड़ , पृ . सं . 5
3. वही,पृ . सं . 40
4. वही , पृ . सं .51
5. वही , पृ सं . 40
6. वही , पृ . सं . 45

डॉ. लता डी

सहायक आचार्या

हिन्दी विभाग

सरकारी महिला महाविद्यालय

तिरुवनंतपुरम

मेल .lathadh lnd l1975@gma ll.com

मो . 9497428960

****

7

' नौकर की कमीज़ ' में चित्रित वैश्वीकृत स्वरूप

कृष्णप्रीति ए.आर

वैश्वीकरण देशों के बीच सामाजिक ,सांस्कृतिक राजनीतिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक अर्तसंबंध है। जो देशों के बीच की सीमाओं को खत्म करते हैं। भारत के संदर्भ में वैश्वीकरण का आगमन राजनीतिक स्वतंत्रता के 44 वर्षों बाद अपनाई उद्योग नीति के साथ हुआ। जिसके तहत में गरीबी उन्मूलन ,कमजोर वर्गों का कल्याण, बेरोज़गारी की मुक्ति जैसे अनेक समस्याओं का निर्माजन निहित थे । किंतु लाभ एवं विकास पर टिके वैश्वीकरण इन समस्याओं का उन्मूलन नहीं कर सका । उल्टे समाज में मौजूद हर समस्या को उलझा दिया । यानी यह विकास और लाभ को ही महत्व देकर अन्य पक्षों को नकारते हैं । वैश्वीकरण , उदारीकरण, निजीकरण और बाजारीकरण जैसे आर्थिक नीतियों से साम्राज्यवादी शक्तियां कमजोर देशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करते जा रहे हैं । जिससे अविकसित देशों के निम्न से निम्नतम तथा मध्य वर्ग के लोगों का जीवन और भी मुश्किल एवं असमानता के साथ गुजारने के लिए विवश हो रहे हैं लाभ-नष्ट पर केन्द्रित समाज मुनाफ़े को लक्ष्य करने से सारे मूल्य , संवेदना , मानवीयता अस्त-व्यस्त हो गया ।" तीसरी दुनिया के देशों जिसमें हमारा देश भी है अस्थिरता से बचने के लिए भूमंडलीकरण के लक्ष्य को स्वीकार कर अपने विकास का निर्धारण बाज़ार के तर्क पर छोड़ रहे हैं । अर्थिक वृद्धि पर ध्यान केंद्रित होने से विकास के मानव और सामाजिक लक्ष्य पृष्ठभूमि में जा रहे हैं । आज का परिदृश्य कुछ चित्र - विचित्र सा हो गया है । बाज़ार से आशाएँ तो हैं लेकिन आशंकाएँ

जुड़ी हैं । विभाजित मानसिकता के कारण तात्कलिक लाभ की संभावनाओं को प्राथमिकता दी जा रही है । आज की सामाजिक विसंगतियाँ नाटकीय भी हैं और चिंताजनक भी । मनुष्य के ज्ञान - विज्ञान में वृद्धि हुई है । ज्ञान दुनिया की शक्ति बन गया है लेकिन इसका वितरण असमान है । तीसरी दुनिया के लोगों ने उदार अर्थव्यवस्था और बाज़ार के तर्क का प्रारंभिक स्वागत इसलिए किया था क्योंकि ये तर्क से बड़े साहसिक विश्वास और आश्वासनों पर आधारित थे । लेकिन बाज़ार के तर्क सबसे पहले गरीब वर्ग और सामाजिक सेवाओं पर भारी पड़े । बढ़ते मूल्यों ने असुरक्षा की भावना पैदा की । नई तकनीकी ने बेरोज़गारी घटाने के बजाय बढ़ाई । मुक्त बाज़ार ने गरीबी ,बेरोज़गारी और सामाजिक विखंडन का हल नहीं खोज पाया । अर्थव्यस्था के भूमंडलीकरण से और भी नुकसान हुए हैं । भोगवादी संस्कृति का फैलाव हुआ जिससे जीवन-दृष्टि और जीवन शैलियाँ विकृत हुए हैं । व्यक्तिकेन्द्रीकता बढ़ी और सामाजिक सरोकार कम हुए । परम्परा और छद्म आधुनिकता के बीच एक अराजक-सा संघर्ष बना हुआ है । सामाजिक ढाँचे की जर्जरता और सांस्कृतिक अस्मिता संवाद के केन्द्रीय बिन्दु हैं । जनता का विकास प्रक्रिया से विश्वास उठा है , कुंठा और तनाव बढ़े हैं , क्यों ? क्योंकि बाज़ार और आधुनिकीकरण की एक विडम्बना यह है कि इसके लाभ का वितरण असमान होता है । इससे सम्पन्न और अधिक सम्पन्न हो जाते हैं जबकि गरीब और भी गरीब । विकास का बहुत बड़ा भाग शक्ति सम्पन्न और प्रभावशाली लोगों के हिस्से हैं जबकि निम्न स्तरीय तबके को नाममात्र का सन्तोष करना पड़ता है ।"[1] इस नकारात्मक और सकारात्मक पक्षों का अंकन साहित्य में हुआ । दो हज़ार में प्रकाशित विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास ' नौकर की कमीज़ ' में वैश्वीकरण के दस्तावेज़ से समाज में आए परिवर्तन और असमानता का वास्तविक चित्रण किया गया है ।

आर्थिक ढ़ांचा एक वर्गीय चेतना को जन्मदेता है । जिसका स्वामित्व किसी व्यक्ति , समूह या वर्गविशेष को प्राप्त होता है। अर्थात उत्पादन संसाधनों एवं उत्पादन शक्तियों (मजदूर ,किसान ,मानव श्रम शक्ति श्रम के उपकरणों, कच्चा माल, प्राकृतिक संसाधनों) आदि का अधिपति कुछ लोगों के हाथों में आ जाते हैं। अन्य लोगों को इन साधनों पर स्वामित्व भी नहीं होता तथा हाशिएकृत किए जाते हैं। जो समाज में असमानता का कारण बन जाते हैं। जिसको उत्पादन एवं उत्पादन शक्तियों एवं साधनों पर अधिकार नहीं है उन्हें दासदा पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करते हैं। जिसको ज़ाहिर करता है यह उपन्यास ' सारी सुविधाएँ उनको मिलते जिनके पास पैसा है ' वास्तव में यह आज की सामाजिक सच्चाई है । पूरे उपन्यास में समाज में मौजूद इस आर्थिक असमानता को संवेदनात्मक एवं मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया है । जिनके पास पूंजी का संचय है समाज में उन्हें उच्च स्थान और सुविधाएँ प्राप्त होते हैं । जिनमें इसका अभाव है आजीवन गुलाम का जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर है। उनको न भर पेट खाना मिलता है , न कपड़ा , न ढंग से रहने के लिए घर । जो मिलता था उससे खुश होना पड़ता था । उपन्यास के कथा-नायक संतु के इर्द-गिर्द घूमती कहानी पूरे समाज को वैश्विक पट पर खड़ा कर सवाल उठाती है । अमीर और गरीबों के बीच इतनी बड़ी खाई है कि एक वर्ग दूसरे के मेहनत का फल लेकर उन पर शोषण और दमन का शासन करता है । समाज में बढ़ती महँगाई के कारण निचले पायदान के लोग समझौता पूर्ण जीवन जी रहे हैं । पूरे उपन्यास में इसका पर्दाफाश होता है । संतु सब्जी खाने के लिए इच्छुक है किन्तु महँगाई की वजह से उसका परिवार उसके प्रति जो मोह है, उसे छोड़ देता है । " लानी तो है । मैं सब्जी नहीं खाती । बहु तेरा जूठा खाती है । तुझसे बच जाएगा तो खाएगी । कितनी महँगी सब्जी है । तुमको सब्जी अच्छी लगती है इसलिए बनाने का मन होता है । नहीं तो कभी न बने "2 यानी अच्छे और शुद्ध रूप

में चीज़ें अमीरों को ही प्राप्त हैं । आज चीज़े क्वालिटी के साथ बिकते हैं जैसे फस्ट, सेकेंड तथा थेर्ड क्वालिटि के आधार पर । फस्ट क्वालिटी चीज़ें मात्र पूँजीपतियों को प्राप्त हैं । निचले पायदान पर आते - आते उसकी शुद्धता और क्वालिटी खत्म हो जाती हैं । " जातीय नियम हो या न हो , पर अच्छी चीज़ें महँगी होती थीं और शुद्ध होकर बहुत महँगी । इसलिए उनका उपभोग उच्च वर्ग तक सीमित होता था । गौराहा बाबू का आधा किलो घी तीन-चार महीने ज़रूर चलता होगा । " [3] बडे बाबू घुन लग काजू यह कहकर खाने केलिए तैयार हैं कि —" घुन लगा डेढ़ रुपए किलो का गेहूँ जब हम लोग खा सकते हैं तो तीस रुपए किलो का काजू भी ज़रूर खा सकते हैं । खाने की कौन-सी चीज़ खराब हो गई है , यह जबानी में नहीं आता । बेफिक्र होकर खाओ "[4] यह खाई समाज के हर क्षेत्र में द्रष्टव्य था । संतु जब साहब के घर पहुँचता है तो उसके और महंगू और अन्य नौकरों के बीच के स्थान निर्णय से वह खुश हो जाते ही दूसरे पल उसके और अन्य धनिकों के बीच का फर्क का अवबोध भी उसे हो जाता है । " जब बरसात शुरू हुआ तो मालूम पड़ा कि पूरा घर टपकता है । संतु और पत्नी ने मिलकर घर में ढूँढकर न टपकने वाली सूखी जगह का पता लगाकर सामान समेट लिया था । इस कारण से पूरी रात उन्हें जागना पड़ता था । जब परेशानी संतु अपने मकान - मालिक डॉक्टर से कहा उन्हें मामूली बातें लगा - " मुझे तो नहीं लगता है बंबई में कल मानसून आया है । यहाँ आने में आठ रोज़ लग जाएँगे । आपने पहले बतलाया होता । कल की बारिस से भीगकर खपरे गीले हो गए होंगे । गीले खपरों में काम नहीं होता । कारीगर चढेंगे तो खपरे चूर-चूर हो जाएँगे । खपरों को धूप खाकर सूख जाने दीजिए । सूख जाएँगे तो बनवा देंगे । और कोई तकलीफ तो नहीं है ? संतु और उसकी पत्नी धूप के इंतज़ार में दिन-रात काटने लगे "[5] डॉक्टर जैसे पूँजीपतियों की स्वार्थता में तपने केलिए संतू जैसे अनेकों अभिशप्त थे । " तीन दिन से झड़ी लगी थी इसलिए घर का पिछवाड़ा एसा हो गया था कि उसमें

घुटने तक पानी भर गया था । डॉक्टर के कम्पाउंड से सारा कूड़ा – कर्कट पानी के साथ टूटी दीवार के रास्ते आकर जमा हो रहा था । मुझे समझ में आ गया कि कम्पाउंड की दीवार जान-बूझकर तोड़ी गई होगी ताकि पानी डॉक्टर के कम्पाउंड में जमा न हो । सड़क की नाली भर गई थी इसलिए पिछवाड़े के पानी की निकासी नहीं हो पा रही थी । मैंने सोचा यदि दीवार को बाँध दिया जाए तो पानी यहाँ नहीं आ पाएगा । मुझे गुस्सा आ गया । *** मैं पानी और कीचड़ से बह गया था । कमरों में मेंढकों के बच्चे कूदते फूदते थे । रात में बहुत से मेंढक आ जाते इससे खाना खाते समय कूड़े गिरने का उतना र नहीं रहता था जितना उचककर मेंढक का थाली में आ जाने का रहता था । साँप अभी तक नहीं निकला था । तब भी कोने में मैंने एक रख लिया । चौका बेकार हो चुका था । चौका फूटे हुए बर्तन की तरह टपकने लगा था । वहाँ खाना बनाने की जगह नहीं थी । पूरे घर में सोने के लिए एक चारपाई जितनी जगह बच गई थी । दूसरे कमरे में खाने के लिए एक जगह ढूँढ ली गई थी ।"[6] उपन्यास में चित्रित यह समस्यायें साधारण मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ है । संतु का स्वाभिमान डॉक्टर के सामने हाथ फैलाने से रोकता है किंतु उसकी मजबूरी उनके सामने झुकने के लिए विवश करती है ।

वैश्वीकरण के तहत में विकास है किंतु बहुत सारे तबकों में विकास का उजाला अब तक पहुँचा नहीं । आज भी उन्हें अपना हक मालूम नहीं सरकार की योजनाएँ पता नहीं मेहनत करते ज़रूर हैं किंतु उसका फल उन्हें प्राप्त नहीं फिर भी बिना किसी शिकायत से वे अंधकार में रहते हैं । गंदी बस्तियों में ठोकरें खाकर रहने केलिए अभिशप्त हैं ।जबकि अमीर बस्तियाँ उजाले से भरा हुआ है हैं "जहाँ न ढंग से पानी का इंतज़ाम होता है , न शौचालय का और न ही बिजली का । कुल मिलाकर कूड़ा -कबाड़ा में जूने की परिस्थितियाँ होती हैं । " [7] ये भी नहीं महानगर का सारी गंदगी गलियों में थोप देते हैं । मिट्टी का तेल खरीदने के लिए जाने

वाला संतु बस्ती में आकर रुक जाता है। उनकी स्थिति देखकर उसके मन में आक्रोश जाग उठता है । बस्ती में रहनेवालों को अपने हक का बोध कराने की कोशिश करता है उन्हें हक की लड़ाई लड़ने के लिए ललकारता है । दूसरे पल उसके मन में भय भी जागृत हो जाता है । " नीचे नाले के किनारे के पास - पास सटी हुई टट्टे की झोंपड़ियों का ढेर था। अगर किसी की आँख थोडी से कमज़ोर होती तो इतनी ऊँचाई से ये झोंपडियाँ मैदान में म्युनिसिपैल्टी के कचरे की अलग-अलग ढेरीयाँ लगतीं। झोंपड़ियों के ऊपर फटे - सड़े बोरे और पॉलिथीन के चीथड़े फैले थे । इनको पत्थर के टुकड़ों से दबा दिया गया था। ये किनारे - किनारे लटके हुए झालर की तरह हवा में हिल रहे थे । प्रत्येक झोंपड़ी के अंदर से एक गंदे पानी की नाली निकली थी बाहर एक छोटा गड्ढा बना था जिसमें यह नाली जाकर मिलती थी । गड्ढे में गंदा बदबूदार पानी भरा हुआ था और आसपास उसी का कीचड़ था आने - जाने के लिए जगह-जगह पत्थर रख गए थे । एक तरफ झोपड़ियों के बीच का रास्ता नाले की तरह भी हो गया था । उसी रास्ते से जाते हुए दो औरतें और इनके पीछे चार पांच बच्चे थे "[8] "बहुतों के घर में कंदील और चीनी के लिए मिट्टी का तेल नहीं होगा तब आप अंधेरे में रहेंगे अच्छी जिंदगी आप समझते हैं ? जो रोज़ी आपको मिलती है , जिस तरह आपका रहना है वह अच्छी जिंदगी नहीं है । आप इस पर सोचिए । मैं छोटापारा से आया हूँ वहाँ गुप्ता जी के एक किनारे की दुकान है किसी से भी पूछ लूंगा उस दुकान का पता आपको मिल जाएगा वहां मिट्टी का तेल दो रूपए लीटर बिक रहा है जबकि सरकारी भाव एक रूपया तीस पैसा है । आप इतने थके हुए होते हैं कि रात में आपको उजाले की जरूरत नहीं पड़ती पेट भर सोने के लिए खाना बनाने लायक उजाला आपको चाहिए । पढ़े - लिखे होते तो अखबार या कहानियां आप पढ़ते । इतना महंगा मिट्टी का तेल खरीद कर जितना चावल आप रोज खरीदते हैं , उतना चावल आप उस दिन खरीद नहीं पाएंगे "[9]

कहीं-कहीं संतु का यह विद्रोही भाव जाग उठता है तो दूसरे पल वह बुझ जाता है । बडे बाबू और महंगू के षडयत्रं के कारण साहब के द्वारा सिलाई गई नौकर की कमीज़ संतु को मज़बूरन स्वीकार करना पड़ता हैं । उसका बुश्शर्ट उधारना उसका आत्मसम्मान को ठेस पँहुचाना था और कमीज़ पहनवाना उसके ऊपर थोपे गये व्यवस्था का बोझ था , उसे दिल और दिमाग से स्वीकारने केलिए वह तैयार नहीं था इसलिए उसकी पत्नी से उसे चूने केलिए भी मना कर देता है । किन्तु साहब के सामने अपना घृणा और शर्म को छिपाता है " उनके सामने मेरी गर्दन झुकी थी । सिर उठाकर मैं उनसे आँख नहीं मिला पा रहा था । शायद घृणा या शर्म या अपमान या झिझक या अदब की बजह से । या इन सभी कारणों से ।**** साहब का जाते ही पूरी घृणा से मैंने कहा , बडे बाबू ! मैं तुमको देखलूँगा । तुमको छोडूगा नहीं ! मुझे नौकरी की परवाह नहीं न तुम्हारे साहब। का परवाह है और मैंने खँखारकर बडे बाबू के पास थूक दिया । उस थूक में मैंने दखा कि लाल-ल रेशे थे । मेरी सर्दी पक गई थी । मैंने यह सब साहब के सामने क्यों नहीं किया ? शायद कायदे और भलमनसाहत के कारण मैंने अनजाने में ध्यान रखा हो कि थूक बडे बाबू पर न पड़े, जबकि मुझे उनके चेहरे पर थूकना चाहिए था ।"[10] संतु के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को गौराहा बाबू और देवांगन बाबू चुपचाप सहनने केलिए तैयार नहीं । समाज में प्रचलित इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए एक पल के लिए वे इकट्ठे हो जाते हैं । उस कमीज़ को फाड़कर वह फैंक , समाज में मौजूद आदर्श नौकर के ढांचे को तोड़ना चाहता है । 'यह आदर्श नौकर का सांचा है । आदर्श उनके बनाए हुए हैं । इस झंझट को खत्म कर दें ' संतु को साहब के घर न जाने केलिए कहते हैं । किन्तु जब संतु उन्हें वास्तविकता का याद दिलाता है तो वे पीछे हट जाते हैं। विद्रोह और संघर्ष करने का भाव उन में है किन्तु सामंती मानसिकता से मुक्त न होने के कारण , व्यवस्था के प्रति आप लड़ाई नहीं कर पाता ।

भविष्य को खतरे में डालना नहीं चाहता इसलिए समय के साथ समझौता कर आगे बढ़ने के लिए विवश हैं। । लेकिन उपन्यास के अंत तक आते —आते कहानी प्रतिरोध का स्वर अपना लेती है । संतु और अपनी गर्भवति पत्नी दवारा साहब और डाक्टर के घर काम केलिए न जाने का फ़ैसला इसी ओर इशारा करता है । यह भी नहीं बड़ेबाबू द्वारा कमीज़ के टुकडों को संभालकर रखना तथा अंत में उसको जलाकर राख करना आदि से स्पष्ट है कि कोई भी आजीवन गुलाम बनकर रहना नहीं चाहता । स्वतंत्रता हर एक का नैसर्गिक गुण है जिसे व्यवस्था द्वारा वितरण और नियंत्रण करने के खिलाफ़ प्रतिसंस्कृति समय की माँग बन जाती है । बड़ेबाबू वास्तव में औपनिवेशिक के बाद में पनपे बुज़ुर्आ वर्ग की खुशामद में अपना ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । तो कथाकार इस तरह के दलालवर्ग से ही बदलाव की माँग करता है । ।“ बडे बाबू जोर से हो — हो हँस पड़े । देवांगन बाबू और गौराहा बाबू भी हँसने लगे । बोतल से कमीज के टुकड़ों पर मैं शराब उँडेलने लगा तो बड़े बाबू ने कहा बस — बस , इतनी बहुत है । बोतल लेकर उन्होंने जेब में रख ली । चरोटा के एक सूखे पौधे पर एक कार्बन कागज़ उड़ाता हुआ आकर अटक गया था । हवा के जोर से वह विलकुल चिपका हुआ था । हवा साँय-साँय की आवाज़ करती हुई चल रही थी । गौराहा बाबू से माचिस बार- बार बुझ जाती थी । बडे बाबू ने गौराहा बाबू से माचिस ली और उन्होंने एक बार में ही कमीज के टुकट्रों की ठेरी मे आग लगा दी । भके से लपट उठी । गौराहा बाबहू चौंककर पीछे सरक गए । हवा तेज चल रही थी इसलिए ढेरी से अलग होकर एक — दो टुकड़े बाहर निकल आए थे । मैं ने उन्हें फिर आग में डाल दिया । ”[11] महंगू इसमें एक आदर्श नौकर है । जो ‘राम-राम साहब के अलावा गूँगा और बहरा था ’ जो अपने मालिक को अनुसरण करते — करते पागल होकर मर जाता है । उसकी जगह उनका बेटा ले लेता है । एक ओर महंगू का जन्म होता है ।

“ ‘महंगू अमर है ’

'महंगू की जगह महंगू का लडका आएगा । '

" नाम तो मुझे नहीं मालूम । महंगू ही कहेंगे , आदत पड़ गई । "

"यदि कमीज़ आदर्श नौकर का सांचा था तो नाम , महंगू भी एक अच्छे नौकर का सांचा है । कुछ तो असर होता होगा । " [12]

ज़ाहीर है नौकर की कमीज़ एक ऐसे समाज के युवा विश्वास का वाहक है जो अभी तक अपनी सामंती मानसिकता से मुक्त नहीं पाया है तथा उसके सामने कला की अभिव्यक्ति के माध्यमों के नष्ट होने के ख़तरे बहुत पास खड़े हैं । पूंजीवाद का भूत उन्हें लील जाने को आतुर है । इसका यथार्थ बहुत धीमी गति से आदमी के द्वंद्व को सतह पर लाने के प्रयत्नों को सफलता तक पहुंचाता है । लेकिन कहीं भी इसमें माया या फेंटेसी नहीं, दुनियादारी के रोज़ाना के साधारण से साधारण चित्र हैं । किंतु यह एक ऐसी भाषा में प्रस्तुत हैं , जो स्वयं कविता न होकर कविता के आसपास विचरती है । यह उपन्यास निरूपित करता है कि मनुष्य अपने सम्पूर्ण सारत्व एक पूर्ण मनुष्य रूप में ही अर्जित करता है । नौकर की कमीज में संतु बाबू ऐसा ही पूर्ण मनुष्य बन पाने की दिशा में बहुत सी साधारण घटनाओं के बीच दुनियाही यथार्थ से जूझने केलिए विवश हैं ।

संदर्भ

1. नई सदी : बाज़ार , समाज ; दिनेश भट्ट . नवचेतन प्रकाशन , नई दिल्ली 2005
2. नौकर की कमीज़ , विनोद कुमार शुक्ल , आधार प्रकाशन (पचंकूला (हरियाणा) पृ.10
3. वही ,पृ.31
4. वही , पृ. 70
5. वही , पृ . 46
6. भारत का भूमंडलीकरण , सम्पादक अभय कुमार दुबे ,वाणी प्रकाशन

7. नौकर की कमीज़ , विनोद कुमार शुक्ल , आधार प्रकाशन (पचंकूला (हरियाण पृ.48

8. वही , पृ. 77 , 79 .

9. वही , पृ.80

10. वही , पृ.114

11. वही, पृ. 205 , 206

कृष्णप्रीति ए. आर

शोधार्थी

हिंदी विभाग

कार्यवट्टम कैंपस

केरल विश्वविद्यालय

****

8

'ग्लोबल गाँव के देवता' : वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी जीवन का आख्यान

डॉ.जयकृष्णन जे

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से लेकर हमारी भाषा, साहित्य, संस्कृति तथा जीवन के हर पहलू पर वैश्वीकरण का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसी समय हिन्दी साहित्य में अस्मितावादी उपन्यासों की एक सशक्त धारा उभर आई है। रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' सन् 2009 में प्रकाशित, झारखण्ड की असुर जनजाति के जीवन-संघर्षों को लेकर लिखा गया उपन्यास है।हमारे ग्रामीण समाज भी वैश्वीकरण के चंगुल से छूटे नहीं हैं।इसके रंग में रंगकर गाँव की संरचना ही बदल गई है।'गाँव' में जो मानवता, भाईचारा, प्रेम और पारस्परिकता थीं ,वे सब आज गायब हो चुकी हैं। विश्वग्राम ऐसी परिकल्पना है, जिसके पीछे बाज़ारवाद और वर्चस्ववाद मौजूद हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' वनवासियों के जीवन-चरित का संतप्त सारांश है। इस उपन्यास में असुर समुदाय की जीवन-गाथा पूरी प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ अंकित की गई है।रणेन्द्र ने असुर जनजाति की संघर्ष-गाथा के ज़रिए अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान की रक्षा हेतु लड़ाई लड़ने वाले आदिवासियों के जीवन-संघर्ष को मुखरित किया है।यह संघर्ष-गाथा किसी काल, देश या किसी जनजाति तक सामित नहीं है।रणेन्द्र ने इसको वैश्विक आयाम दिया

है। वैश्वीकरण ग्रामीण जन-जीवन को किसप्रकार प्रभावित और प्रदूषित करता है, यह उपन्यास इसका जीवन्त प्रमाण है।आज विश्व ग्लोबल गाँव बना है।पूँजीवादी ताकतों के आगमन के फलस्वरूप गाँव की प्रकृति और संपत्ति अबाध गति से लूटी जाती हैं।'ग्लोबल गाँव के देवता' उत्तर आधुनिक परिवेश में आदिवासी समुदाय पर स्थापित नव औपनिवेशिक आधिपत्य और उसके प्रबल प्रतिरोध की कहानी है। इसमें झारखंड के आदिवासी समुदाय की व्यथा-कथा तथा अपनी पहचान के विनष्ट होने की तीव्र वेदना वर्णित है। ये लोग ज़मीन खोदकर कच्चा लोहा यानी लौह अयस्क निकालकर उसे गलाकर पक्का लोहा बनाते हैं और उससे खेती के विविध औजार बनाते हैं।यह समुदाय असुर कहलाता है और आदिम जनजातियों में एक महत्वपूर्ण समुदाय है।असल में इन लोगों में कोई असुरापन नहीं है, लेकिन सच्चाई तो यही है कि कितने ही खूबसूरत नामों के भीतर कितने ही असुर निवास करते हैं।असुर उन्हें कहा गया है जो देवता और उनके अधिकार को मानते नहीं थे और यज्ञ का विरोध करते थे। भौंरापाट में आए कथावाचक का अनुभव देखिए-"सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किन्तु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे-चौड़े, काले-कलूटे , भयानक, दाँत-वाँत निकले हुए, माथे पर सींग-वींग लगे हुए लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सब उलट-पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलटी घूम रही थीं।"1 उपन्यास में असुर जनजाति से जुड़े मिथकों और दंतकथाओं पर प्रश्नचिह्न लगाया गया है।यह उपन्यास पढ़कर असुरों के संबन्ध में हमारी धारणाएँ गलत साबित होती हैं।समूचे आदिवासी समाज के प्रति नए ढंग से सोचने-समझने को हम बाध्य हो जाते हैं।

उपन्यास का कथानायक असुरों के क्षेत्र में बाहर से आया एक अध्यापक है, उसे उपन्यासकार का प्रतिनिधि माना जा सकता है। भौंरापाट बाक्साइट खान का इलाका है, वहाँ

असुर जनजातीय परिवार की बच्चियों को सिखाने केलिए गर्ल्स रेसिडेन्शियल स्कूल में विज्ञान शिक्षक के रूप में उसकी नियुक्ति होती है।वह नई सामाजिक चेतना से अनुप्रेरित होकर असुर समुदाय की ज़िंदगी में क्रमशः धँस जाता है, उसका प्रबल हितैषी बनता है और उसके जीवन-संघर्ष में भी शामिल होता है। वह उस समुदाय की असली हालत तथा सरकार और कॉर्पोरेटों की जनविरोधी कूटनीतियों से अवगत होता है। डॉ. रामकुमार असुरों की लड़ाई में आसपास के गाँवों को भी शामिल कर संघर्ष को व्यापकता प्रदान करता है। फलतः यह संघर्ष सिर्फ लालचन का अस्तित्व-संघर्ष न रहकर उस क्षेत्र के सभी शोषित-पीड़ितों के संघर्ष के रूप में परिणत हो जाता है। इतना ही नहीं; कनारी के नवयुवकों को भी इसमें शामिल कर लिया जाता है। 'जान देंगे, ज़मीन नहीं देंगे' वाले नारे सड़कों पर गूँज उठते हैं। जुलूस निकाला जाता है। बाक्साइट की खदानों को बंद करवा दिया जाता है। इस घटना से बड़े-बड़े पूँजीपतियों को धक्का लगता है। वे जन-प्रतिरोध को दबाने लगते हैं। लेकिन ज़मीन माफ़ियाओं से अपनी ज़मीन को बचाए रखने का संघर्ष और भी तीव्र हो जाता है।

उपन्यास में कॉर्पोरेट पूँजीवाद और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चालों तथा आदिवासी समाज के त्रासद जीवन के प्रत्येक पहलू को दिखाया गया है। कंपनियाँ बड़ी बारीकी से अपना शोषण तंत्र चलाती हैं। जंगल के गाँवों को खाली कराया जाता है और समझौते के रूप में आलू की खेती का सुझाव भी दिया जाता है।यह तो असुरों की क्रांति-चेतना को दबाने की नव उपनिवेशवादियों की साजिश है। पूँजीपति अपने व्यापार के रास्ते में आने वाले अवरोधों को तोड़ने केलिए कोई भी हथकण्डा अपनाने में माहिर है। अभयारण्य केलिए कंटीले तारों का घेरा डालने का काम 'वेदांग' जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनी ले लेती है। इसके पीछे कंपनी का असली उद्देश्य वहाँ बॉक्साइट का कारखाना खोलना है।उसे अपनी फाक्टरी केलिए कोयलबीघा अंचल में कई

सौ एकड़ ज़मीन चाहिए।वेदांग ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है।यह विदेशी कंपनी है, लेकिन नाम देशी रखा गया है।ग्लोबल गाँव के पूँजीवादी-साम्राज्यवादी देवता और सरकार दोनों एक दूसरे से घुलमिल गए हैं।ये देवता छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज संपदा, जंगल या अन्य संसाधन देखते हैं तो उनपर अपना हक समझते हैं।असुर आदिवासी समुदाय साम्राज्यवादी-पूँजीवादी सामाजिक ढाँचे में अपने अस्तित्व की रक्षा केलिए संघर्षरत है।असुरों के इस संघर्ष को सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तोड़ दिया जाता है। वेदांग कंपनी के साथ असुर जब समझौता करने जाते हैं, तभी विस्फोट में बुधनी, ललिता, गन्दूर,एतवारी, लालचन और बाबा के साथ कुल पंद्रह लोग मारे जाते हैं। इस तरह ग्लोबल गाँव के देवता का मुखौटा खुल जाता है। गाँव का धन विदेश चला जाता है, ग्रामीण जनता छली जाती है और ग्लोबल गाँव एक छलावा बनकर रह जाता है।भारत में राजनीतिक गुलामी और उपनिवेश तो सालों पहले खतम हुआ, लेकिन नवउपनिवेशवाद और कॉर्पोरेट पूँजीवाद अनेक रूपों में यहाँ की अर्थव्यवस्था में सेंध मारकर यहाँ की संपत्ति को विदेश ले जा रहे हैं।

झारखण्ड के असुर आदिवासी समुदाय के अनवरत अस्मिता संघर्ष को उजागर करने वाला यह उपन्यास असुर जनजाति के माध्यम से हाशियेकृत आदिवासियों का जीवन-यथार्थ अनावृत कर देता है।उपन्यास के केन्द्र में भौंरापाट और उससे जुड़े हुए कन्दापाट और अंबाटोली के असुर गाँव हैं।आदिवासी इलाकों में प्राकृतिक खनिज पदार्थ अधिक मात्रा में मिलते हैं।खनिज कंपनियाँ असुरों की ज़मीन हथियाकर खुलेआम बॉक्साइट का अवैध खनन करती हैं।आज भारत में पूँजीवादी ताकतों ने मिलकर खनिज पदार्थों पर कब्जा कर लिया है और जनजातियों के जंगल और ज़मीन पर सम्मिलित रूप से हमला कर लिया है।हर उपाय से उनकी ज़मीन छीन ली जाती है।वहाँ से बाक्साइट निकालकर मौत की खाइयाँ छोड़ दी जाती हैं।खुली खदानों में जमे

पानी में मच्छर पलते हैं और सेरेब्रल मलेरिया जैसी बीमारियों से आदिवासियों की अकाल मौत भी हो जाती है।पूँजीपतियों को केवल अपने मुनाफ़े की चिन्ता है। जनजातियों की ज़मीन पूँजीपति हड़प लेते हैं और वहाँ बड़ी - बड़ी मलटीनाशनल कंपनियाँ या शॉपिंग मॉल वगैरह बना देते हैं।इससे हमारे गाँवों की छवि नितांत खो गई है, उनका स्वरूप बिलकुल बदला है। वैश्वीकरण के दौर में वैश्विक ताकतों के सामने हमारे गाँव बिलकुल लाचार हैं।वैश्विक गाँव असली गाँवों को तेज़ी से निगल रहे हैं। बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने समाज के ढाँचे को बिलकुल बदल दिया है।गाँव और गाँव की आम जनता इस शोषण के सर्वाधिक शिकार हैं।पूँजीवाद और बाज़ारवाद ने आदिवासी गाँवों की तस्वीर बदली है। इससे उत्पन्न पारिस्थितिक संकट भी उपन्यास की प्रमुख समस्या है।

भूमंडलीकरण के आगमन से आदिवासी लोगों की ज़मीन, प्रकृति, खेती, संस्कृति सबकुछ खतरे में हैं।पूँजीवाद के बढ़ते कदम के फलस्वरूप पूरे भारत में मूल निवासियों की सामाजिक व सांस्कृतिक परंपराओं की तबाही हुई है।अपनी ज़मीन और अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने और संरक्षित करने केलिए आदिवासी भयानक प्रताड़नाएँ सह रहा है।असुर जनजाति को अपने अधिकारों की रक्षा हेतु शासक वर्ग की नृशंसता का शिकार बनना पड़ा है।भौगोलीकरण आदिवासियों के सम्मुख अपने जीवन के सत्यानाश का विकराल रूप लिए आया है।पूँजीवादियों ने उसी के नाम पर शोषण का एक नया तरीका ढूँढ़ निकाला है।देवताओं द्वारा असुरों को जो यातनाएँ सहनी पड़ी हैं, उनको निरंतर अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ा है, यह नैरंतर्य आज भी चल रहा है।'ग्लोबल गाँव के देवता' में कनारी गाँव में कंपनियों की स्वार्थ सिद्धि केलिए बेचारे आदिवासियों को अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ता है। "वन विभाग ने खतियान में दर्ज सैंतीस वन-गाँवों को खाली करने की नोटिस दिया है। क्या तो भेड़िया सबको

बचाने केलिए कोई योजना है। क्या तो अभयारण्य बोल रहे थे। इतना टेढ़ा नाम है, तब ही तो काम भी टेढ़ा हो रहा है। ई सैंतीस वन ग्राम में बाइस गाँव असुरों का है, बाकी उराँव, खेरवार और सदान लोगों का।"2 वन विभाग असुरों और आदिवासियों को अपने क्षेत्र में घुसपैठिया मानता है।वह यह मानने को तैयार नहीं है कि वनस्पतियों और जीवों की तरह आदिवासी-आदिम जाति भी जंगल के स्वाभाविक बाशिन्दे हैं। भेड़िया अभियारण आदिवासियों को जंगल से बाहर निकालने तथा वहाँ बड़ी बड़ी कंपनियों का निर्माण करने की साजिश है।आज ग्लोबल गाँव के देवता उनको अपनी ज़मीन से उखाड़ने की पूरी तैयारी में हैं।प्रधानमंत्री को लिखे एक पत्र में रुमझुम असुर लिखता है- "हमारे पूर्वजों ने जंगलों की रक्षा करने की ठानी तो उन्हें राक्षस कहा गया।खेती के फैलाव केलिए जंगलों के काटने-जलाने का विरोध किया तो दुष्ट दैत्य कहलाये।उनपर आक्रमण हुआ और लगातार खदेड़ा गया।लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार टाटा जैसी कंपनियों ने हमारा नाश किया।इनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खन्ती सुदूर हाटों तक पहुँच गये।हमारे गलाये लोहे के औजारों की पूछ खत्म हो गयी।.....भेड़िया अभयारण्य से कीमती भेड़िये ज़रूर बच जाएँगे।किन्तु हमारी जाति नष्ट हो जाएगी।"3 वास्तव में यह तो असुरों या आदिवासियों को अपनी भूमि से खदेड़ने की देवताओं की वैश्विक तैयारी है। अपनी ज़मीन और पहचान को बचाए रखने केलिए कठिन संघर्ष झेलने वाले आदिवासियों को नक्सली साबित करने की कोशिश भी की जाती है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में पूँजीपतियों की पूँजी की बेतहाशा वृद्धि हो रही है।वे दिन व दिन मोटे बनते जा रहे हैं।लेकिन गरीब जनजाति समुदाय भयानक शोषण के शिकार हैं।आदिवासी औरतें और बेटियाँ माल की भाँति खरीदी या बेची जाती हैं।राजनीतिक शक्तियाँ आदिवासियों के

प्राकृतिक संसाधनों को लूट रही हैं। वैश्वीकरण के ज़माने में आदिवासी समाज के त्रासद जीवन के हर पहलू को यह उपन्यास लिपिबद्ध करता है।यह आदिवासी जीवन की अनकही यातनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। आज आदिवासियों का नया शत्रु भूमण्डलीकरण युगीन पूँजीवाद है, जो दुनिया को नए सिरे से उपनिवेश बना रहा है। यह नव-उपनिवेशवाद कहलाता है। इसका सीधा संबन्ध भौगोलीकरण से है। नव-उपनिवेशवादी परिदृश्य को प्रस्तुत करने वाला रणेन्द्र का यह उपन्यास नव-उपनिवेशवाद के प्रति प्रतिरोधी आवाज़ को बुलन्द करता है।उपन्यास में रेड इंडियंस के सर्वमान्य मुखिया चीफ़ सियेटल के एक गीत का उल्लेख है :

" हम बाकी दिन कैसे गुज़ारेंगे
इस का कोई अर्थ नहीं
हमारी रात
भरपूर काली रात होने का आश्वासन दे रही
क्षितिज पर एक भी तारा नहीं
उदास हवाएँ
दूर कहीं विलाप कर रहीं
हमारे कदमों के ठीक पीछे
हमारा दुर्भाग्य चल रहा है
एक जख्मी हिरण
अपने पीछे भागते शिकारी की आवाज़ सुनकर
अपने आप को
अपनी पूर्ण मृत्यु केलिए तैयार कर रहा है।"4

उपन्यासकार भारतीय असुर आदिवासियों और रेड इंडियनों की संघर्ष गाथा को एक साथ पिरो लेता है और बताता है कि आज भूमण्डलीकरण की परिघटना के रूप में जो कुछ घटित हो रहा है, वह वास्तव में इतिहास का बहुत पुराना अध्याय है। 1686 ईस्वी का यह गीत आज का और आनेवाले कल का लग रहा है। नवउपनिवेशवादी ताकतों के द्वारा आदिवासियों के निरंतर छले जाने की कथा को रूपायित करते हुए भी लेखक आशावादिता को छोड़ता नहीं है।उपन्यास की समाप्ति इसप्रकार होती है- "राजधानी के यूनिवर्सिटी हॉस्टल से सुनील असुर अपने साथियों के साथ कोयलबीघा, पाट के लिए निकल रहा था।लड़ाई की बागडोर अब उसे संभालनी थी।"5 अपनी ज़मीन एवं संस्कृति को बनाए और बचाए रखने का यह संघर्ष निश्चय ही ज़ारी रहेगा।

संदर्भ

1) रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भातीय ज्ञानपीठ,पाँचवाँ संस्करण 2016, पृ : 11
2) वही पृ : 78
3) वही पृ : 83
4) वही पृ : 74-75
5) वही पृ : 100

डॉ.जयकृष्णन जे

असोसियट प्रोफसर,हिन्दी विभाग,

यूनिवर्सिटी कॉलेज,तिरुवनन्तपुरम।

****

9

'सपनों की होम डिलिवरी': भूमंडलीकृत भारतीय पारिवारिक संरचना का सही दस्तावेज़

डॉ. पी. गीता

पिछली सदी के नवें दशक तक आते-आते भूमंडलीकरण ने अपनी व्यक्तिवाचक संज्ञा के सीमित दायरे से मुक्त होकर एक सार्थक भाववाचक संज्ञा की संकल्पना को अपना लिया है । कहने का मतलब यह है कि भूमंडलीकरण अब हमारे लिए अर्थविज्ञान या वाणिज्य-विज्ञान का एक मामूली पारिभाषिक शब्द नहीं रह गया है । अब इसकी बहुआयामी संकल्पना समाज की प्रायः सभी गतिविधियों में प्रविष्ट कर चुकी है या प्रविष्ट कर रही है । साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह गया है । पिछले बीस-पच्चीस सालों के भारतीय साहित्य पर सरसरी निगाह डाली जाए तो मालूम हो जाएगा कि हमारे रचनाकारों ने इस विषय पर किस हद तक और किस विविधता से चिंतन-मनन किया है ।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण के भारतीय परिप्रेक्ष्य के बारे में गहराई से सोचते वक्त इसके धनात्मक तथा ऋणात्मक, दोनों पहलुओं पर विचार करना लाज़िमी है । आर्थिक,वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति की दृष्टि से, या यों कहें कि आम तौर पर, भौतिक प्रगति की दृष्टि से, भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज के बहुमुखी विकास को ज़रूर प्रश्रय तो दिया है, इसके बावजूद भौतिकेतर पहलुओं पर, विशेषकर, भारतीय सांस्कृतिक संरचना को वैश्वीकरण के अनुरणनों

ने बडी हद तक बुरी तरह झकझोर कर दिया है । ममता कालिया के उपन्यास 'सपनों की होम डिलिवरी' में इन दोनों पहलुओं पर गहरे विचार पेश किये गये हैं ।

आकार में लघु होते हुए भी 'सपनों की होम डिलिवरी' में वैश्वीकरण के अच्छे और बुरे प्रभावों के भारतीय संदर्भों की ओर सार्थक संकेत मिलते हैं । भूमंडलीकृत अपसंस्कृति का सबसे गहरा आघात भारतीय मध्यवर्ग या उच्च मध्यवर्ग के संबंधों और पारिवारिक संदर्भों पर पड़ा है । उपन्यास में सर्वेश नारंग और रुचि शर्मा जैसे केंद्र पात्रों के जीवन में जो अयाचित और अप्रत्याशित घटनाएँ घटती हैं, उनको इस पृष्ठभूमि में परखा जा सकता है ।

मोटे तौर पर 'सपनों की होम डिलिवरी' एक स्त्री-केंद्रित उपन्यास का आभास अवश्य देता है । लेकिन अंदरूनी निगाह डाली जाए तो मालूम हो जाएगा कि वैश्वीकृत भारतीय समाज में व्यक्ति और परिवार के संबंधों में आए हुए परिवर्तनों को इस उपन्यास में बारीकी से पकडा गया है । रुचि और सर्वेश का दांपत्य, उनकी पहली शादी की असफ़लताएँ, पारिवारिक संरचना की टूटन आदि इसी श्रेणी के दूसरे उपन्यासों से उतने भिन्न नहीं हैं, लेकिन जैसे कि लेखिका ने उपन्यास के प्राक्कथन में कहा है, उनके द्वारा पात्रों को खुला छोडने के कारण सांकेतिक ढंग से ही सही, उपरोक्त परिवर्तनों के कई बारीक वर्तमान संदर्भ आसानी से मिलते हैं, जो इस उपन्यास की कालिकता का गवाह है ।

लेखिका ममता कालिया उपन्यास के प्राक्कथन में इस रचना की प्रेरणा के रूप में विदेश में घटी एक वास्तविक घटना का जिक्र करती हैं, जो सचमुच प्रस्तुत उपन्यास के भूमंडलीकृत परिदृश्य का पहला संकेत है । भूमंडलीकृत अपसंस्कृति के भारत में फैलने के पहले भारतीय पारिवारिक संरचना में संबंधों की शिथिलता एवं क्षरण आम घटना नहीं थी । परंतु वैश्वीकरण ने देश-विदेश की आपसी दूरी को कम करके पूरी दुनिया को एक गाँव बना दिया है, जिसके

फलस्वरूप किसी भी अपसंस्कृति का संबंध किसी स्थान विशेष से नहीं रह गया, वह स्थानातीत आम बात बन गयी । अतः लेखिका को विदेश में घटी एक वास्तविक घटना का बीज भारतीय परिवेश में मिलता है तो उसमें अतिरंजकता कम और ठोस यथार्थ का संस्पर्श ज़्यादा ही मानना पड़ेगा ।

भूमंडलीकरण के दर्जनों बुरे पहलुओं के होते हुए भी स्त्री-शाक्तीकरण के भारतीय संदर्भ को बुलंद करने में उसने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है, वह यह है कि अक्सर हाशियेकृत भारतीय स्त्री ने भूमंडलीकृत संसाधनों के सहारे अपने को स्वावलंबन के पथ पर बहुत आगे खडा कर दिया । वैश्वीकरण ने स्त्री के सामने शिक्षा और नौकरी के कई वातायन खोल दिये, जिसने उसकी अस्मिता में स्वावलंबन की अजीबोगरीब स्फूर्ति भर दी । यही नहीं, स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं को - चाहे वह बेटी की हो, पत्नी की या माँ की क्यों हो,- इस नयी स्फूर्ति ने घर, परिवार और समाज में पुरुष के समान बुलंद आधार प्रदान किया । यह बिल्कुल एक नया उपक्रम था, जिसने सदियों से भारतीय समाज में संक्रमित कई रूढ और मृतप्राय परंपराओं को तहस-नहस कर दिया, जिनको भारतीय स्त्री ढोती आ रही थी । इस दृष्टि से 'सपनों की होम डिलिवरी' की केंद्र पात्र रुचि शर्मा नवजागृत भारतीय स्त्री-समाज केलिए 'रोल मॉडल' बन जाती है । वह अपनी पहली शादी से स्वयं मुक्त हो जाती है और अपनी मानसिकता के अनुकूल एक नये तलाकशुदा आदमी के साथ संबंध स्थापित कर देती है । उस व्यक्ति को तलाशने की प्रक्रिया में वह दूसरा नाम देकर 'जीवन-साथी डॉट कॉम' में विज्ञापन भी देती है । यही नहीं, वह एक नौकरी केलिए कई साल भडकने के बावजूद आजीविका केलिए टी.वी. में कुक्करी शो करके पैसा कमाने का ठोस इरादा लेती है । उसके सामने भारतीय संस्कृति के कुछ घिसे-पिटे स्त्री-संबंधी मूल्य बाधा उपस्थित करते हैं, पर वह उन सबको ठुकरा देती है । रुचि के माँ-बाप के

द्वारा उसको पीछे हटाने की कोशिश और उस प्रयास में उन दोनों का बुरी तरह हार जाना इसका उदाहरण है । उल्लेखनीय बात यह है कि सर्वेश नारंग नामक जिस व्यक्ति में रुचि अपने दूसरे जीवन-साथी को ढूँढ पाती है, अपनी पहली पत्नी से उसके तलाक़ का कारण भी इसी प्रकार की घिसी-पिटी स्त्री-संबंधी अवधारणाओं की उपज है । अपनी पहली पत्नी मनजीत से उनकी शिकायत यह थी कि वह घर संभालती नहीं है, घर से ज़्यादा नौकरी को महत्व देती है, आदि आदि । इसे वे उसकी आत्म-केंद्रित मानसिकता कहते हैं ।

उपन्यास में रुचि वर्तमान मध्यवर्गीय स्त्री की एक खास मानसिकता की शिकार के रूप में प्रस्तुत की गयी है, वह है स्त्री का असुरक्षा-बोध । वैश्वीकरण ने ज़रूर स्त्री की 'स्पेस' की तलाश को नये क्षितिज दिये हैं, साथ — ही - साथ उसके स्त्री-सहज असुरक्षा-बोध को ज़्यादा बढ़ा दिया है । गौर की बात है कि रुचि विक्टोरिया चैम्बेर्स नामक सुसज्जित फ़्लैट में रहती है, जहाँ भौतिक सुरक्षा के प्रायः सारे संसाधन मौजूद हैं । इसके बावजूद उसके मन में जो गहरा असुरक्षा-बोध पनपता है, उसकी पृष्ठभूमि भूमंडलीकृत भारतीय समाज ही है । विशेषकर महानगरों और बड़े शहरों पर रहनेवाली नौकरीपेशा अधेड उम्र की स्त्रियों का असुरक्षा-बोध और अकेलापन आजकल तेज़ी से बढ़ रहे हैं । इसके पीछे वर्तमान स्त्री की उन संवेदनाओं का हाथ उतना गौण नहीं है, जिनको शिक्षा और स्वावलंबन से युक्त स्त्री-जागृति ने संजोया है । जब स्त्री की ऐसी पुरोगामी संवेदनाओं की टकराहट धीमी गति से बदलनेवाली और कभी-कभी स्थितिशील रहनेवाली पुरुष-मेधा मानसिकता से होती है, तब उपरोक्त असुरक्षा-बोध अपना ठोस प्रभाव स्त्री पर छोड़ता है । उपन्यास में रुचि एक ऐसी वर्तमान स्त्री है, जो स्त्री केलिए पुरुष के समान सामाजिक संपर्क को ज़रूरी माननेवाली है । पहली शादी से तलाक़ के बाद भी वह दूसरा प्रेम चाहती है, दूसरी शादी चाहती है । लेकिन उपर्युक्त प्रतिलोम सामाजिक अवधारणाएँ उसके सपनों

को जडों से उखाड फेंकती हैं । अधेड उम्र की स्त्रियों की शारीरिक व मानसिक मजबूरियाँ उसकी इस हालत को और भी पेचीदा बना देती हैं । इस संकट में ही उसकी मुलाकात सर्वेश नारंग जैसे तलाक़-शुदा आदमी से होती है और वह उसमें अपने अनुरूप जीवन-साथी को पा लेती है ।

वैश्वीकरण ने मीडिया-जगत के प्रायः सभी समीकरणों को बदल दिया है, विशेषकर भारतीय मीडिया-जगत में यह बदलाव कुछ ज़्यादा वज़नदार है । भूमंडलीकरण की अर्थ-केंद्रित अपसंस्कृति ने मीडिया-जगत की सत्यम्,शिवम्,सुंदरम् की भावना को बडी हद तक स्थानांतरित किया है । उसने अपने बुनियादी मूल्यों को खो तो नहीं दिया है, परंतु ज़रूर उसमें समयानुकूल परिवर्तन खड़ा कर दिये हैं । देश के प्रायः सभी टी.वी. चैनल और पत्र-पत्रिकाएँ अपने सरकुलेशन को बढ़ाने की होड में हैं , जिस प्रक्रिया में मूल्य-मर्यादाएँ धीरे-धीरे गायब हो रही हैं । प्रस्तुत उपन्यास के अंत में सी.सी.डी. नामक मशहूर कॉफी हाउस में रुचि की पहली शादी के बेटे गगन की बात को अपने से छिपाने के कारण सर्वेश क्रुद्ध होकर कई शरीफ़ लोगों के ठीक सामने रुचि का गर्दन दबोच लेता है । यह घटना मीडिया-जगत केलिए तोफ़ा जैसी मिली । प्रायः सभी चैनलों और समाचार-पत्रों ने इस घटना को प्रतियोगिता की दृष्टि से उत्सवधर्मी गहराई और विस्तार दिये । सरकुलेशन और रैटिंग की अंधाधुंध होड़ में पत्रकारिता-संबंधी परंपरागत मूल्य-मर्यादाएँ बेरहमी से तोडी जाती हैं और उसके परिणामस्वरूप सर्वेश और रुचि के जीवन में काफी नुकसान पहुँचते हैं ।- " दृश्य मीडिया पर सी.सी.डी. में खींची गयी तस्वीर कोण बदल-बदल कर दी जाने लगी । इस पर विस्तृत बहस छिड गयी कि रुचि के चेहरे का भाव क्या है, क्रोध अथवा हर्ष का, विषाद अथवा सुख का । प्रेम-विवाह की सफलता और विफलता पर विचार-विमर्श आयोजित हुआ । नारीवादियों ने इस मुद्दे पर रुचि शर्मा को लानतें दीं कि वह अपने साथ हुई क्रूरता का प्रतिकार प्रचंड शब्दों में क्यों नहीं करती । सभी चैनलों ने रुचि के पाक-कला कार्यक्रम दिखाने

बंद कर दिये । इतना विवादग्रस्त चेहरा दिखाना उन्हें उचित नहीं लगा ।"1 अगले दिन के सभी अखबारों ने भी इस घटना में अपनी ओर से तरह-तरह के मिर्च-मसाले लगा दिये । कुछ प्रमुख समाचार-पत्रों में उस अप्रत्याशित घटना के नीचे इस प्रकार के शीर्षक भी दिये गये थे- 'रुचि की रसोई का स्वाद बेस्वाद', 'यह खुशियों की होम डिलिवरी नहीं है ।', 'क्या यही प्रेम है ? 'आदि-आदि । यहाँ तक हुआ कि "सर्वेश्वर के बारे में खोजी पत्रकार ऐसी-ऐसी खबरें खोज कर ला रहे थे जिनसे रुचि भी अनभिज्ञ थी ।"2 पत्रकारों के टेढ़े-मेढ़े सवालों का रुचि और सर्वेश व्यक्तिगत मामला कहकर प्रतिरोध करने की भरसक कोशिश तो करते हैं, लेकिन मीडिया की इस मूल्य-निरपेक्ष रणनीति के सामने वे टिक नहीं पाते हैं । मीडिया-जगत की इस उत्सवधर्मी पत्रकारिता का भूमंडलीकृत विकृत सामाजिक व्यवस्था पर इतना गहरा असर पडता है कि रुचि और सर्वेश के दोस्त और सगे-संबंधी भी खोजी पत्रकार के जैसे सवालों से उनका गला घोंट लेते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास की सबसे बडी खासियत यह है कि वर्तमान भूमंडलीकृत अपसंस्कृतीकरण से बुरी तरह प्रभावित पारिवारिक माहौल में भी लेखिका अपनी उस आशावादी दृष्टि को छोडने केलिए तैयार नहीं हैं, जो निश्चय ही आदर्श के तंतुओं से नहीं बुना हुआ है, बल्कि इसकी तह में वर्तमान यथार्थ का ठोस संस्पर्श है । लेखिका यह महत्वपूर्ण संदेश देना चाहती हैं कि भूमंडलीकरण के इस दुस्समय में दांपत्य की दृढ़ता को बनाये रखना कितनी ज़रूरी है । क्योंकि सांस्कृतिक क्षरण के वर्तमान सामाजिक माहौल में नकारात्मक पहलुओं की मदद से उसका सार्थक प्रतिरोध संभव नहीं है । उसके लिए सकारात्मक और रचनात्मक कदम ही उठाने पडेंगे, संभवतः इस प्रक्रिया में कुछ जडीभूत परंपरागत सांस्कृतिक प्रतिमानों की कुर्बानी से हम बच नहीं पायेंगे । उपन्यास के अंत का अप्रत्याशित मोड़ इसका ज्वलंत उदाहरण है । जो पाठक इस उपन्यास को चाव से पढ़ता है, वह इसकी प्रतीक्षा में रहेगा कि अंत में गहरे दांपत्य-विघटन के फलस्वरूप सर्वेश और रुचि अपने दांपत्य से सदा केलिए अलग हो जाएँगे । लेकिन उपन्यास का अंत इस प्रकार होता है कि सर्वेश और रुचि फिर दांपत्य की ओर वापस आते हैं । उपन्यास

के अंत में सर्वेश का यह कथन इस दृष्टि से रेखांकित करने योग्य है कि "कहाँ जाओगी, उस मनहूस मकान में जहाँ परिवार का एक भी प्राणी नहीं रहता। यह तुम्हारा घर है, मैं तुम्हारा हूँ, बीजी और गगन भी तुम्हारे हैं । मुकेश का गाया एक गाना याद आ रहा है 'मेरा घर खुला है, खुला ही रहेगा तुम्हारे लिए ।' हम सब साथ रहेंगे । ज़्यादा नहीं, बस कभी-कभी लडेंगे ।" 3 इस सकारात्मक और रचनात्मक प्रस्ताव का जवाब रुचि भी उसी मायने में देती है, जो उपन्यास का अंतिम वाक्य भी है - "तभी तो तुम मेरे पंद्रह अगस्त हो सर्वेश ।"4 पति-पत्नी दोनों इस महत्वपूर्ण फैसले पर इसलिए पहुँच पाये क्योंकि दांपत्य में पहली बार दोनों अपनी-अपनी स्पेस के बारे में जान गये और उसकी अहमियत के बारे में भी । इस स्पेस को बरकरार करने केलिए अपनी अस्मिता की ओर से किन-किन पहलुओं को गँवाना पडता है, इसकी जानकारी भी उन्होंने अपने-अपने अनुभवों से प्राप्त की है । सड़ी-गली परंपरा से जुड़े बिना अपनी जगह ढूँढ निकालने में सक्षम वर्तमान स्त्री के रूप में रुचि शर्मा स्त्री-चिंतन के नये व्यावहारिक स्वरूप को पेश करती है ।

संदर्भ

1. 'सपनों की होम डिलिवरी', ममता कालिया, पृ. 88
2. वही. पृ. 90
3. वही. पृ. 96
4. वही. पृ. 96

डॉ. पी. गीता

एसोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा,

हिन्दी विभाग, श्री व्यासा एन.एस.एस. कॉलेज, वटक्कांचेरी, तृशूर ।

मो. 8281847835

ईमेल – geethavk15@gma ll.com

****

10

"मोबाइल" उपन्यास - वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. आशा एस नायर

सार-संग्रह

वैश्वीकरण ऐसी व्यवस्था है जिसमें अपने छोटे स्वार्थों से ऊपर उठे लोग सारे संसार के मंगल के लिए जुड़ जाते हैं । संसार को एक करने की दृष्टी पूरी तरह से एक-आयामी है । एक ओर व्यापार के लिए दुनिया को एक करना चाहती है, और इसकी आड़ में विकासोन्मुख एवं अविकसित राष्ट्रों को शोषण का शिकार बनाती है । वैश्वीकरण देश की अर्थ व्यवस्था के साथ विश्व की अर्थ व्यवस्था को जोड़ने का काम करता है । किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था के साथ विश्व की अर्थ व्यवस्था जुड़ जाती है । विकसित, अविकसित और विकासशील देशों पर इसका प्रभाव अलग -अलग प्रकार से पड़ता है, जिसके फलस्वरूप देश के ढाँचे में परिवर्तन की संभावना बढ़ती है । आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था और उसके इर्द-गिर्द सभ्यता के जो आदर्श विकसित हुए, वे मूल्यों की परम्परा से अलग और असम्पृक्त रहे हैं ।

औद्योगिक विकास एक ओर समृद्धि के आधार को संकुचित करने और व्यापक रूप से असमानता और विषमताएँ पैदा करने के कारण जातियों, समुदायों और अंचलों के बीच वैमनस्य और प्रतिरोध को बढ़ाता है । विकास के लाभ कुछ क्षेत्रों के लोग हथिया लेते हैं । इस कारण अन्य लोगों को असंतोष होता है, द्वेष होता है । यह देश के भीतर कई समस्याओं को जन्म देता है । व्यापारिक असंतुलन और तद्जन्य द्वेष और तनाव की स्थिति कुछ लोगों के लिए

फायदेमंद और कुछ-एक को नुक्सान ज़रूर पहुँचाते हैं । मौका-परस्त लोग प्रगति की और बढ़ते हैं और अन्य जनों को ईर्ष्यालू छोड़ते हैं । वे भी इनके समान बनने की होड़ में बहुत कुछ खोते हैं । जीवन में आये बदलाव उन्हें सुविधाओं की ओर खासीटता है और उससे बाहर आने नहीं देता है । जो लोग इनसे वंचित हैं, वे भी सामान जीवन बिताने के लिए परम्परा, मूल्य और आदर्शों से कोसों मील दूर भटकते हैं । इन बे-मेल जीवन प्रणालियों से जीवन-संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं — जैसे अकेलापन, विस्थापन, हाशियेकृतों का उत्पीडन, पारिवारिक विघटन, अल्प-संख्यकों का शोषण, बालिकाओं के प्रति अन्याय, प्राकृतिक शोषण आदि । कोई भी राष्ट्र या देश ऐसा नहीं है जिन्होंने इस तरह के संघर्षों से गुजरा नहीं हो । भारत जैसे बहु-भाषी, बहु-आयामी लोगों से भरे देश में परिवेशजन्य समस्याएँ , चाहे वैश्वीकरण से जन्य हो या अन्य कारणों से , कभी गौण नहीं होगी ।

मूल शब्द : वैश्वीकरण , औद्योगिक, आर्थिक, बाजारवाद, जीवन, संतुलन, संवेदना , बदलाव, संस्कृति ।

वैश्वीकरण विश्व के सभी देशों के बीच आर्थिक सम्बन्ध, सहयोग और विनिमय को व्यापकता तथा गहराई देने की प्रक्रिया बनी है । वैश्वीकरण की अवधारणा का उद्देश्य विश्वबाज़ारवाद के द्वारा वैश्विक अर्थतंत्र को प्रतिष्ठित करना तथा मुक्त अर्थ व्यवस्था को प्रभावी बनाना है । "भूमंडलीकरण से तात्पर्य है कि माल-पूंजी का राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार जाना । "१ यह बाज़ार के हितों के संरक्षण को प्राथमिकता देता है । आर्थिक उदारीकरण ने बाज़ार और बाजारवादी व्यवस्था को ताकत दी है और अपने पारंपरिक रिश्ते-नातों को मतलबी, आत्म-केन्द्रित और सख्त बना दिया है । सूचना प्रौद्योगिकी तथा मीडिया औद्योगिक और व्यावसायिक जगत को आबाद करता है, साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में वैचारिक क्रान्ति लाने में

भी समर्थ है । भौगोलिक सीमाओं की दूरियां कम होती जा रही है, मगर मानव एक दूसरे से दूर होता जा रहा है । संवेदनात्मक ह्रास, पारिवारिक व सामजिक संबंधों का बदलता रूप, स्त्री-पुरुष संबंधों की बदलती संवेदनशीलता, तनाव, घुटन, विस्थापन, आर्थिक विषमताएँ आदि मिलकर मूल्यों के स्वरूप में बदलाव लाते हैं ।

एक ओर वैश्वीकरण दुनिया को जगमगाता है, दूसरी ओर सामाजिक जीवन को संकीर्ण बनाता है । यह धार्मिक कट्टरता को पनपने का मौका प्रदान करता है । मुक्त बाज़ार की आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था मूल्य-हीनता को विकराल बनाने में सहायक होती है । आर्थिक वर्चस्व के कारण संवेदना संकुचित होती है, और मनुष्य एक तरह का गुलाम बन जाता है । वैश्वीकरण के प्रभाव में भारत के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक ढाँचे में परिवर्तन आया है । बाजारीकरण से मनुष्य केवल उपभोक्ता बन जाता है । पारिवारिक जीवन में भी इसका असर स्पष्ट है ।

जीवन के हर क्षेत्र में देश के भीतर पनपते असंतुलन, चाहे सामजिक हो या राजनीतिक, आर्थिक हो या पारिवारिक, औद्योगिक हो या वैयक्तिक, प्रतिफलित होता ज़रूर है, और प्रभावी भी । जीवन के विविध आयामों का अंकन कलात्मक ढंग से शब्दों में होता है, जिसे हम साहित्य कहते हैं । साहित्य देश, काल और परिस्थितियों से मुक्त नहीं है । जीवन की बारीकियों को भी अपनी तूलिका के दायरे में बाँधकर सौन्दर्य और कल्पना से लीपकर उसकी प्रस्तुति देना बखूबी जानते हैं साहित्यकार । लेकिन साहित्यकारों के समक्ष एक प्रश्न चिह्न उभरता है कि बढ़ती रही इन समस्याओं की खाई में गिरती रही मानवता को कैसे बचाएं । उनका दायित्व है कि मानव सहज संवेदनाओं को जागृत करें, उनके रस-हीन होते हृदय-पटल पर मधु-कण बरसें । वे पूर्ण रूप से इस चुनौती को अपनाकर चेतावनी के स्वर को रचनाओं द्वारा बुलंद करते रहते हैं ।

हिन्दी के साहित्य जगत में भी वैश्वीकरण का असर छाया हुआ है । कई साहित्यकारों ने वैश्वीकरण के सह -उत्पादों जैसे विचारहीनता, तनाव-ग्रस्त मनःस्थिति, परंपरा से हटकर चलने की रीति, धर्म के प्रति संकुचित मनोवृत्ति, स्वार्थ मनोभाव आदि के कारणवश जीवन और समाज में आए परिवर्तन को ज़ाहिर करने की कोशिशें की हैं । उनकी प्रवृत्ति सराहनीय भी है । ऐसे लेखकों में ममता कालिया, मृदुला गर्ग, नाजिरा शर्मा, अलका सरावगी, प्रदीप सौरभ, स्वयं प्रकाश, शैलेश मटियानी, सुनीता जैन, सुरेन्द्र वर्मा, रणेंद्र, मृत्युंजय, राजेश जोशी, मन्नू भंडारी, क्षमा शर्मा, उदय प्रकाश जैसे अनेक शामिल हैं । ये यथार्थ और कोमलता से दूर भागते मानव को सही राह दिखाने की कोशिश में जुटे रहते हैं ।

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में चर्चित नाम है क्षमा शर्मा का । उनका साहित्य नगरीय-महानगरीय अहसासों का ज्वलंत चित्रण पेश करता है । समाज के यथार्थ को सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने के कारण उनकी रचनाएँ विशिष्ट संवेद्य धरातल का निर्माण करती हैं । उनकी रचनाओं में स्त्री-पुरुष संबंधों और स्त्री की विडंबनाओं को व्यक्त किया है । स्त्री-जीवन के तथा स्त्री के भीतर की कई परतों को खोलने का प्रयास भी हुआ है ।

क्षमा शर्मा का उपन्यास "मोबाइल" नारी चेतना पर आधारित होने के साथ वैश्वीकरण के पहलुओं का भी स्पर्श करता है । शीर्षक से ही पता चलता है कि यह सूचना प्रौद्यगिकी की आधुनिक एवं उपयोगी देन है । मोबाइल के ज़रिये ही उपन्यास की नायिका नायक से मिलती है । मधु यानी मधूलिका शुक्ला आगरा के ब्राह्मण परिवार की है और नौकरी की वजह से महानगर दिल्ली में रहती है । उसकी सहेली है फरहत जो अलीगढ़ की है । मधु आत्मनिर्भर है, स्वावलंबी है और आधुनिक विचारोंवाली है । आधुनिक परिवेश में जीना उसे भाता है । अपनी मुस्लिम सहेली फरहत के साथ वह किराए के घर में रहती है । दोनों की रिवाज़ें अलग होने पर भी दोंनों

की अच्छी बनती है । दोनों उच्च विचार के हैं और एक दूसरे के करीब हैं । दफ़्तर में साथ काम करनेवाले आदित और विनय से उनकी दोस्ती है । अलग-अलग विचारोंवाले होने पर भी इन चारों के बीच मैत्री अवश्य है ।

मधु और फरहत की जीवन शैलियाँ अलग हैं और वे भिन्न माहौल में पली-बढ़ी हैं । नारी का सशक्त रूप इन दोनों में मौजूद है । फरहत शादी नहीं करने के इरादे में पक्की है । इसके पिता इसकी मां को छोडकर अमेरिका चले गए थे । फरहत को पालने के लिए उन्हें बहुत कष्ट उठानी पड़ी । वह अपनी मां की तरह दूसरी औरत बनना नहीं चाहती है । फरहत सोचती है - " पिता ने माँ को का दिया? सिवा फरहत को पालने की ज़िम्मेदारी के । "२ तरक्की और सुख-चैन की खोज में निकले पिता और परिवार चलाने के लिए मजबूर अकेली और विवश माँ वैश्वीकरण के शिकार हैं । मनुष्य के भीतर से रिक्त होनेवाली संवेदना और आराम की ज़िंदगी की चकाचौंध दोनों जीवन की विडम्बनाएं हैं । संवेदन-हीनता और स्वार्थ-मोह एक दूसरे के विरोधी भाव हैं । इन दोनों से छुटकारा पाना आसान कार्य नहीं है । इस तरह के भवंडर में पड़कर अभिशप्त जीवन बिताने के लिए विवश हते हैं अधिकतर लोग । केवल कुछ ही इससे उभरकर नई ज़िन्दगी तलाश कर सकते हैं । फरहत को दूसरों की हमदर्दी पसंद नहीं, और वह अपनी मां के साथ अपने बल-बूते पर जीना चाहती है । वैसा करती भी है ।

मधु के खोये हुए चेक वापस करने के लिए नवीन खन्ना आता है । पहली मुलाक़ात के बाद उन दोनों की दोस्ती मोबाइल फ़ोन द्वारा बढ़ती है । उसके दोस्तों को नवीन ज़्यादा पसंद नहीं है । उनका कहना है कि मधु ने भविष्य के निर्णय लेने में जल्द-बाजी की है । मधु के दोस्तों ने नवीन को कई लड़कियों के साथ देखे हैं । लेकिन आधुनिक विचारवाली मधु की सोच अलग है । वह शक नहीं करती है, और अपने विचारों पर अड़िग रहती भी है । यह सच है कि नवीन

से ज़्यादा मधु उसे चाहती है । उसके संग जीवन बिताने का सपना देखती है । जब अपनी मां की खबर लेने के लिए फरहत अलीगढ़ चली जाती है, तब नवीन मधु से मिलने उसके घर आता है । दोनों के बीच की दूरियाँ खतम होती है, और वे एक हो जाते हैं । मधु बहक गयी है । " और उसे क्या हुआ ? विरोध करने की जगह ऐसा लगा जैसे कि न जाने कब से वह ऐसा चाहती थी " ३ मधु के दिलो-दिमाग में उन क्षणों की सुखद अनुभूति बरकरार रहती है । " आज बिस्तर कुछ और नरम लगा । रात कुछ अधिक शान्ति से भरी हुई । ऐसा लग रहा था, नवीन उसके रोम-रोम में समाया हुआ है । "४ लेकिन नवीन के लिए कई रिश्तों में एक थी मधु ।

नयी पीढ़ी अपने लिए नए आदर्श स्थापित कर रही हैं । उनमें मानवीयता, संबंधों की गरमाहट, नैतिकता आदि लुप्त होती हैं । वे सिर्फ आत्म-केन्द्रित बनता जा रहा है । वैश्विकता के दौर में आधुनिकता के नाम पर समाज में हो रहे ज़बरदस्त बदलाव का, मानवीय संबंधों पर पडा असर यहाँ दर्शाया है । प्रेम-सम्बन्ध में पहले भी मन से ज़्यादा शारीरिक नज़दीकियाँ हुआ करती थीं । लेकिन आज के नव-युवकों के दिल में यह उनके हिस्से के अधिकार के रूप में परिणित हुआ है । मधु जैसी पढी-लिखी और ऊँची कमाई पानेवाली लड़कियाँ भी इसी तरह सोचकर आर्थिक स्वतंत्रता और उदार विचारों की आड़ में गलतियां ही करती हैं । तब नवीन जैसे खल-नायकों का दखल-अंदाजी भी आसान बन जाता है । ऐसे चलते हम अपनी अस्मिता और पहचान खो रहे हैं ।

मधु से माँ मिलने आती हैं तो वह माँ को नवीन से मिलवाना चाहती है । इतवार के दिन नवीन नहीं आता है । मधु उसके लिए उसकी पसंदीता खाना बनाकर, बिना खाए शाम तक इंतज़ार करती है । नवीन फ़ोन पर भी नहीं उपलब्ध था । दूसरे दिन मधु को पता चलता है कि नवीन का तबादला हो गया है और वह शहर छोडकर जा चुका है । मधु अंदर से टूट तो जाती

है, मगर जल्द ही अपने आप को संभल पाती है । जीवन को अपने तरीके से जीने का निर्णय लेती है । "कल तक वह सोचती थी हर हालत में नवीन चाहिए । अब उसे लगता है, नवीन क्या कोई भी नहीं चाहिए ।"५

वक़्त के गुज़रते मधु के जीवन में कई परिवर्तन आ जाते हैं । फरहत अलीगढ़ के किसी स्कूल में नौकरी करने चली जाती है । बरसों बाद मधु को नवीन के नाम पत्र लिखने के अंदाज़ में देख पाते हैं । वह जुडुवाँ बच्चिओं की माँ बन चुकी है और उनके साथ खुशी से जी रही है । नवीन उससे मिलने आता है और उसे पता चलता है कि मधु की बेटियों का पिता वह खुद है । उसे इसका कोई अंदाजा नहीं था । वह शादी करके पत्नी और बेटे के साथ जी रहा था । उसका होश उठानेवाली बात तब घटित होती है, जब मधु के पति के रूप में आदित्य को पाता है । बिना कुछ कहे, मुरझाये चेहरे के साथ वहाँ से चला जाता है । मधु एक प्रकार का आनंद अनुभव करती है । उसके दिल में शायद बदले की भावना जाग उठी होगी जो अब शांत हो गयी है ।

मधु और आदित्य ने मिलकर नाटक रचा था । वास्तव में आदित्य उसका पति नहीं है । मधु ने शादी नहीं की है और बिना शादी किये बेटियों को जन्म दी है । वह अपना जीवन किसी के सहारे के बिना बेटियों के साथ जीना चाहती है । वह नवीन से कहती है - "अगर मैंने उस वक़्त तुमसे नाराज़ होकर उन्हें खत्म कर दिया होता, तो हो सकता है ज़िंदगी भर में इन बच्चियों को देखने के लिए तरस रही होती " ६

उपन्यास की नायिका मधु के लिए उसके द्वारा अपनाया गया जीवन ठीक है, और ऐसे सोचनेवाली लड़कियों की कमी भी नहीं है । लेकिन यह बात हमारे सांस्कृतिक परिवेश में , हमारी परम्पराओं के दायरे में यह उतनी आसानी से उतरती नहीं । वैश्वीकरण ने हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य को पूरी तरह से बदल दिया है, जिसके कारण हमारे जीवन मूल्यों में बड़े

पैमाने पर परिवर्तन आ गया है । उपभोक्तावादी संसार के माया-जाल में धंसते जा रहे हैं , जिससे मुक्ति पाना कठिन है । नई पीढी अपने लिए नए-नए आदर्श और जीवन प्रणालियाँ स्थापित कर रही है । मानवीयता, संबंधों की गर्माहट, नैतिकता आदि लुप्त हो रही हैं, और मनुष्य दिन-व-दिन आत्मकेंद्रित बनता जा रहा है । आधुनिकता के कारण उपजे यह बदलाव आपसी रिश्तों में दरार अवश्य पैदा करता है और हम अपनी अस्मिता और पहचान खो बैठे हैं । कुंवारी माताओं की समस्या भी उपभोगी वासना की अंन्धी मानसिकता की सृष्टि है । प्रेम-इश्क के नाम पर शारीरिक सुख को प्रमुखता देकर उसे सर्वस्व मानती है युवा पीढ़ी । अर्थ पर आधारित व्यवस्था ने मनुष्य की सोच और चरित्र को निम्न स्तर का बनाकर छोड़ा है । उपन्यास की नायिका मधु की सोच भी इससे भिन्न नहीं है , जो अनुकरणीय नहीं है । रिश्ते जब मतलबी बन जाती हैं, तो मानव सहज मूल्य भी बदलने के लिए मजबूर हो जाता है । आधुनिक परिवेश से प्रभावित समाजिक प्राणी मनुष्य और उसकी मानसिकता उपन्यास के ताना-बाना बन जाते हैं । यहां पारस्परिक संबंधों की परम्परा और वर्तमान की जटिलताओं के बीच विकराल होती मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण हुआ है ।

सन्दर्भ:

१. पृ:२३६, पर्यावरण संरक्षण , सं.एस अखिलेश,डॉ संध्या शुक्ल, गायत्री पब्लिकेशन,म.प्र. २०११

२. पृ: ३१, मोबाइल, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, २०२१ ।

३. पृ: ४२, वही ।

५. पृ: ८३, वही ।

६. पृ:१०२, वही ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

१. मोबाइल, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२१ ।

२. संचार, बाज़ार और भूमंडलीकरण - अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, २०१८ ।

३. भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास-सं नीरू अग्रवाल, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, २०१५ ।

४. भारत का भूमंडलीकरण, अजयकुमार दुबे, वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली, २००८ ।

५.कंटेम्पररी इश्यु इन ग्लोबलाइजेशन - सौमेन सिकंदर, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २००६ ।

६. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, तपन बिस्वाल, ओरिएंट ब्लैक स्वान , २०१६ ।

७. भूमंडलीकरण और भारत, अमित कुमार सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०।

८ . पर्यावरण संरक्षण , सं.एस अखिलेश,डॉ संध्या शुक्ल, गायत्री पब्लिकेशन,म.प्र. २०११ ।

९. समय और संस्कृति, श्यामचरण दुबे, वाणी प्रकाशन, २०१८ ।

डॉ. आशा एस नायर

अध्यक्षा एवं शोध निर्देशिका,

हिंदी विभाग,

एन.एस.एस कॉलेज फॉर वीमेन,

त्रिवेंद्रम , केरल राज्य ।

****

11

हिंदी उपन्यास : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. महेश्वरी एस

सार-संग्रह : भूमंडलीकरण पूरे विश्व को एक परिवार में तब्दील करने की प्रक्रिया में लगी है । पूरी दुनिया को एक ग्लोबल विल्लेज या गाँव में परिवर्तित करके 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सपने साकार करने के लिए निरंतर प्रयत्नरत है । लेकिन वैश्वीकरण एक ऐसी धारणा है जिसका मूलाधार बाज़ार, बाजारवाद और उपभोक्तावाद है । भूमंडलीकरण के कारण ही बाज़ारवाद पनपा और बाजारवाद के ज़रिए उपभोक्तावाद । भूमंडलीकरण के कारण दुनिया बदलती रहती है और यह बदलाव हमें बाहर से ही नहीं, अंतर से भी प्रभावित कर रही है । मानव मूल्यों में भी शीघ्रता से बदलाव हो रहे हैं । मानव के अंदर की इंसानियत खत्म होती जा रही है और वह सिर्फ भौतिक सुख सुविधाओं के पीछे पागल होकर दौड़ रहा है । इसके फलस्वरूप अकेलेपन, बेचैनी, दु:ख तथा नैराश्य आदि त्रासदियों में घिरते जा रहा है ।

समकालीन युग में वैश्वीकरण ने सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र को पूर्णत: प्रभावित किया और सामाजिक व्यवस्था को भी बदल डाला । कम्प्युटर इंटेरनेट के बढ़ते प्रयोग सारे विश्व को हमारे नजदीक ला खड़ा दिया । लोगों को दुनिया के सब कहीं रोज़गार का अवसर मिल रहा है । कम्प्युटर,इंटेनेट, मोबाइल, सोशल मीडिया जैसे नवीनतम साधनों के द्वारा हमारी सारी गतिविधियाँ विश्वव्यापी बनती गई हैं । इन साधनों के उपयोग के कारण विभिन्न देशों,

संस्कृतियों और व्यक्तियों के बीच की दूरी अब समाप्त हो गयी है । ई-मेल जैसी सुविधाओं से हम सदैव विश्व के संपर्क में आ चुके हैं ।

हिन्दी साहित्य पर भूमंडलीकरण का गहरा प्रभाव है । साहित्य की विभिन्न विधाओं में इसका असर प्रकट है । समकालीन उपन्यासों की अपनी समृद्ध परंपरा में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्होंने भूमंडलीकरण से प्रभावित भारतीय जनमानस को अपनी रचना का विषय बनाया है ।भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है । इनमे से कई उपन्यासकारों ने भूमंडलीकरण के प्रभावों को गहराई से परखकर उनका चित्रण करते हुए उनके प्रतिरोध में कलम चलाई है ।

मूल शब्द : वैश्वीकरण, सम्बन्ध, संवेदना, बाजारवाद, प्रौद्योगिकी, मल्टी नेशनल कंपनी

कई उपन्यासकर अपनी रचनाओं में अत्यंत गहराई से भूमंडलीकरण और उसके प्रभावों को चित्रित कर सर्जनात्मक प्रतिरोध को अभिव्यक्ति दी है ।लगातार चमकती भौतिक चकाचौंध की दुनिया, संघर्ष, मानवीय रिश्ते तथा सम्बन्धों में होता बदलाव,मानवीय संवेदनाओं का नष्ट हो जाना आदि से संबन्धित यथार्थ को उपन्यास बेहद गंभीरता के साथ सामने रखता है । हिन्दी साहित्य जगत में पिछले दो दशकों से वैश्वीकरण का प्रभाव दिखाई देता है । हिन्दी उपन्यासकारों ने वैश्वीकरण एवं उसके प्रभाव को अलग अलग भाव तथा धारणाओं की दृष्टि से सामने रखा है । यह एक सच्चाई है कि वैश्वीकरण का यथार्थ बड़ा ही जटिल एवं उलझा हुआ है । इसमें बाजारवादी संस्कृति और मनोवृत्ति का ही वर्चस्व है । समकालीन उपन्यासकारों ने भूमंडलीकरण के इस यथार्थ को बड़ी बारीकी से देखा-परखा है । इनमें प्रमुख है- उषा प्रियम्वदा, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, मधु कांकरिया, अल्का सरावगी, काशीनाथ सिंह, रणेन्द्र, ममता कालिया, पंकज बिष्ट आदि ।

अल्का सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में भारत के कॉर्पोरेट दुनिया की तमाम मान्यताओं और विडंबनाओं को उजागर किया है । कॉर्पोरेट जगत और मल्टीनेशनल कंपनियों का विज्ञापन और उत्पाद –विपणन की प्रणाली, माँल एवं डिपार्टमेंटल स्टोर्स का प्रचलन आदि को इस उपन्यास में अल्का सरावगी ने सशक्तता से प्रस्तुत किया है । उपभोक्तावादी दौर में मनुष्य जिस मोड़ पर खड़ा है, वहाँ बाज़ार ही बाज़ार है, जो उसकी जरूरतों को ही नहीं बल्कि इच्छाओं को भी पूरा कर रहा है । उपन्यास के पात्र के.वी.के कथन से यह और भी सरलता से स्पष्ट होता है _ "दुनिया के सबसे बड़े मार्केट बनने से इंडिया के मार्केटिंग की बहार के दिन तो आने ही थे ।....अब गए वे दिन जब इंडिया में सरकारी अफसर तय करते थे औरतें बाज़ार में कौन सी क्रीम खरीदेंगी और लोग टी .वी.पर कौन सा प्रोग्राम देखेंगे ।'1 एक ब्रेक के बाद' आर्थिक चेतना से युक्त उपन्यास है । कॉर्पोरेट जगत की इस कथा में कॉर्पोरेट कल्चर के साथ वर्तमान में बदलते जा रहे संबंधों, दौड़-भाग और जीवन दर्शन को बड़ी सुंदरता से चित्रित किया है । यहाँ कॉर्पोरेट जगत की वैचारिकता को भी प्रस्तुत किया है । अल्का सरावगी ने उपन्यास की विषयवस्तु को उत्तर आधुनिक उपभोक्तावादी व्यक्ति से जोड़ दिया है । मार्केटिंग में उच्च पद पर आसीन एक्सिक्यूटीव को प्रमुख चरित्र के रूप में लिया है । उपन्यास का मुख्य पात्र के.बी.एक सफल मैनेजर है । के.बी.शहर में सबसे ज़्यादा पैसा पानेवाले "मार्केटिंग कंसल्टेंट" है । मल्टी-नेशनल कंपनियाँ भारत में सपने बेच रही हैं और सामान्य जनता इन सपनों को हासिल करने केलिए पागल होकर दौड़ रही है ।

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास पाठकों के सामने एक ऐसी दुनिया को उजागर करता है जिसका वह एक हिस्सा है, फिर भी उस दुनिया के बारे में वह बहुत कम जानता है । पीढ़ी-दर-पीढ़ी की समस्याओं को लेखिका ने प्रभावी ढंग से इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है । इस

प्रकार हम कह सकते हैं कि एक ब्रेक के बाद उपन्यास आर्थिक उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारत का आख्यान है ।

काशीनाथ सिंह ने भूमंडलीकरण की त्रासदी तथा समकालीन मनुष्य जो निरंतर अकेलेपन की ओर अग्रसर होता है, उसका चित्रण सफल रूप से करने का प्रयास किया है ।

संयुक्त परिवार प्रथा यहाँ पहले ही टूट चुकी है और वैश्वीकरण से समाज का एक बड़ा हिस्सा बूढ़ों को विस्थापित एवं उपेक्षित जीवन बिताने केलिए मजबूर कर देता है । संबंधों में जो परायापन आया है वह भी वैश्वीकरण की देन है । उपन्यास का नायक रघुनाथ का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है — "शीला हमारे तीन बच्चे हैं, लेकिन पता नहीं क्यों कभी मेरे भीतर एक ऐसी हुक उठती है, जैसे लगता है मेरी औरत बांझ और मैं नि:संतान पिता हूँ" ।2 उपन्यासकर ने यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह बाज़ार हमारे गाँव-घर में घुस चुका है और पूंजी के प्रलोभन, नव धनाढ्य मध्यवर्गीय जीवन को किस प्रकार बदल दिया है । "जिस कंपनी में और जिस कांट्रैक्ट पर अमरीका जाना है, उससे तीन साल में कोई भी इतना कमा लेगा कि अगर उसका बाप चाहे तो गाँव का गाँव खरीद ले" ।3लेखक अपने उपन्यास में इस बात की ओर भी ध्यान देते हैं कि किस प्रकार गांवों में शहरों का प्रवेश हो चुका है और नई बसी कॉलोनियों में उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद किस प्रकार प्रवेश करता जा रहा है ।

बाज़ारवादी संस्कृति के बढ़ते हुए प्रकोप को केंद्र में रखते हुए प्रदीप सौरभ ने 'मुन्नी मोबाइल' की रचना की है । बाज़ारवाद के प्रसंग को उठाते हुए लेखक ने एक एसी औरत को चित्रित किया है जो पूरी तरह से इस प्रणाली से ग्रसित है । नारी जीवन का अनदेखा यथार्थ यहाँ दृष्टिगत होता है । आज उदारीकरण की प्रणाली में नारी भी जागरूक सक्रिय उपभोक्ता के रूप में भागीदार है । मुन्नी आनंद भारती से कहती है —"आपने पढ़कर क्या कर लिया ? आप तो

वहाँ पढ़े जहाँ नेहरुजी पढ़े थे । न अपना घर चलाया, न बच्चे पाले,न अपनी लुगाई रख पाई, न अपने माँ-बाप की इज़्ज़त कर पाये.... मैं निपढ़ हूँ, पढ़ी - लिखी नहीं हूँ । आपकी सेवा में रहती हूँ, पूरा कुनबा पाल रही हूँ ।"4 मुन्नी का चरित्र पूंजीवाद के साथ व्यक्तिवादिता का भी प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

लेखक ने भूमंडलीकरण के फल-स्वरूप पूंजीवादी समाज में विकसित उपयोगितावाद, व्यक्तिवाद व बाज़ारवाद के विभिन्न पहलुओं को तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है ।

रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासी समाज को केंद्र बिन्दु माना है जो आज के दौर का सर्वाधिक शोषित समाज है । लेखक ने 'असुर जनजाति' की संघर्षगाथा के माध्यम से दुनिया के अनेक भागों में फैले हुए आदिवासियों के संघर्ष की जांच की है । इस उपन्यास में आदिवासी समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं, आपसी सम्बन्धों, वैश्वीकरण-विकास के प्रभावों का गंभीरतापूर्वक चित्रण किया है । विकास के नाम पर असुर गावों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपने कार्यालय स्थापित कर उनके खनिज व अन्य प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर दोहन करके गाँववासियों को मुसीबतों में धकेल दिया है ।

वैश्वीकरण की आंधी में वैश्विक ताकतों के आगे असुर गाँव कितना बेबस और लाचार है, उस दर्द का चित्रण मर्मस्पर्शी रूप में इस उपन्यास के द्वारा प्रस्तुत होता है ।

ममता कालिया ने अपने उपन्यास 'दौड़' में महानगरीय मानसिकता का सूक्ष्म चित्रण किया है । यह उपन्यास बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद और व्यावसायिकता की दौड़ में विनष्ट मानवीय संबंधों का मूर्त रूप है । व्यावसायिकता से आजीविकवाद पैदा होता है, जो कि पारिवारिक संबंधों को और संबंधों की भावात्मकता को खो देता है । उदारीकरण ने भारतीय बाज़ार को

ताकत प्रदान कर युवा वर्ग के लिए अपने पसंदीता मार्ग खोल दिया है । बाज़ार से वशीभूत होकर युवा आत्मिक रिश्तों को अनदेखा करता है ।

पवन का जीवनविषयक दृष्टिकोण यह है कि मंज़िलों के लिए संघर्ष करना । पवन का विचार युवा पीढ़ी केलिए सिर्फ कामयाबी संबंधी विचार है जो बाज़ारवाद की देन है । माँ-बेटे के रिश्ते में भी बाज़ारीकरण घुस आया है । बच्चे माँ-बाप के ममत्व का मोल लगाने लगे हैं, जो बाज़ारवाद का ही प्रतिफलन है ।"पवन अपने माँ के नाम बीस हज़ार का चेक काटा और कहा — माँ, हमारे आने से आपका बहुत खर्च हुआ है, यह मैं आपको पहली किश्त दे रहा हूँ । वेतन मिलने पर और दूँगा ।"5आधुनिक युग की युवा पीढ़ी उच्च वेतन पाने की लालसा में यांत्रिक बन गई है । वे करियर और नौकरी को जीवन का अंतिम उद्देश्य मानते हैं और पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर भाग रहे हैं ।

'दौड़' आज के मनुष्य की जीवंत कहानी है, जो बाज़ार के दबाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य के आसन्न खतरे में पड़े मनुष्यत्व को उजागर करती है ।

आज भूमंडलीकरण के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं और उससे हमारी संस्कृति विनष्ट होती जा रही है और खतरे में पड़ने लगी है । सांस्कृतिक धरोहर बचाए रखने केलिए हमरे साहित्य में मानवीय मूल्यों का संवहन होना ज़रूरी है । नई सदी का उपन्यास मानव विरोधी षड्यंत्रों का खुला चित्रण करता है, साथ ही साथ इन पर करारा चोट भी करता है । वर्तमान सदी के उपन्यास भूमंडलीकरण के प्रतिरोध में खड़े नज़र आते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.अल्का सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई प्रकाशन वर्ष.2019, पृ.112

2.काशीनाथ सिंह, रेहन पर रगघू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2008, पृ.38

3. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रगघू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2008, पृ.23

4.प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2, पृ.155

5.ममता कालिया, दौड़,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ .65

6.अमित कुमार सिंह भूमंडलीकरण और भारत –परिदृश्य और विकास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली ।

डॉ. महेश्वरी एस

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

एन. एस. एस कॉलेज फॉर वुमेन

नीरमणकरा, त्रिवेन्द्रम ।

****

12

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में वैश्वीकरण

डॉ. के.जयकुमारी

सार संग्रह : संपूर्ण संसार एक ही छत के नीचे परस्पर सहयोग से रहे , यही वैश्वीकरण का स्वरूप है। इससे एक ही संस्कृति भी विकसित हो जाएगा। ऐसी संस्कृति पूरे भूमण्डल को एक विश्वग्राम में परिवर्तित कर समस्त मानवजाति का कल्याण करने केलिए तत्पर हो। ऐसी स्थिति में मानव और देश के बीच जो असमानता है, शतुता है, अनेकता है सब मिट जाएगा। सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण इसका लक्ष्य रहेगा। आज का टेकनोलजी संपूर्ण देश के बीच की दूरी मिटाकर पूरी दुनिया को एक मुट्ठी में भर दिया है। इस छोटी - सी दुनिया को हम अपना वश में रखना चाहते हैं। लेकिन भौतिक साधनों व सुख सुविधाओं के पीछे भागने की मानसिकता के कारण भौगोलिक दूरी समाप्त होने पर भी मनुष्य - मनुष्य के बीच में अन्तर आ गया है।

मूल शव्द : वैश्वीकण, भूमण्डलीकरण, अस्मिता, साम्प्रदायिकता, अपसंस्कृति

वैश्वीकरण ने संपूर्ण संसार के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, पारिवारिक परिस्थिति पर प्रभाव डाला, साथ ही साथ आतंकवाद, साम्प्रदायिकता आदि को भी बढ़ावा दिया। यह अपसंस्कृति का भी कारण बन गया है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में इस अपसंस्कृति ने विशेषतः हमें किस प्रकार प्रभावित किया है, इसका संक्षिप्त आंकलन निम्न लिखित शीर्षकों में किया जा सकता है।

1 उपभोक्तावाद तथा ब्राण्ड संस्कृति

2 मीडिया जगत टी.वी तथा समाचार पत्र

3 विज्ञापन की मायावी जगत

4 नई नारी चेतना

5 अश्लीलता और नई - नई नैतिकताएँ

6 सांस्कृतिक विस्थापन

7 भ्रष्टाचार

8 अपराध जगत

9 आतंकवाद

10 भाषा और संस्कृति

इन सब बातों को बिलकुल अलग - अलग करके नहीं देखा जा सकता। ये सब अंत:संबंधित हैं ।

संपूर्ण मानव जीवन पर वैश्वीकरण का प्रभाव है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थनीति आदि के दुष्परिणामों से प्रभावित है आज का मानव । स्वाभाविक रूप से इन सभी का प्रभाव विश्व भर के साहित्य में पडा। फलतः भारतीय संस्कृति और साहित्य में भी इसका प्रतिफलन होने लगा। इस वैश्वीकरण ने हमारे जीवन मूल्यों में भारी बदलाव लाया है। "भूमणडलीय दुष्टप्रभावों को लेकर समस्त देशों का साहित्य चिंतित है। विशेषतः तीसरी दुनिया के विकास शील राष्ट्रों के साहित्य में अमीरी - गरीबी के बीच की बदलती खाई और मनुष्यता को छीजने की पीडा गहराई से अभिव्यक्त हुई है।"2 खोई हुई मानव मूल्यों को बचाने का प्रयास साहित्य ही कर सकता है। इसका दायित्व साहित्यकारों ने लिया विशेष रूप से उपन्यासकारों

ने। हिन्दी उपन्यासों में वैश्वीकरण का प्रभाव कई रूपों में देखने को मिलता है। समकालीन उपन्यास हमारी संस्कृति में आए हुए इन प्रभावों का अध्ययन कथात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।

वैश्वीकृत प्रभावों का कोई ऐसा पक्ष नहीं जो उपन्यास में चित्रित नहीं हुआ हो। प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' में विदेशी पूँजी का विरोध भूमण्डलीकरण के उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। उपन्यासकारों ने वैश्विक प्रभावों का वर्णन प्रभावी ढंग से किया है। भाव, संवेदना, प्रेम का स्वर आम लोगों के जीवन में आए बदलाव और उसके साथ धन, परिस्थिति, मानव मूल्य आदि पर आये बदलाव का समकालीन उपन्यासकारों ने वाणी दी है। उनमें प्रमुख है नासिरा शर्मा जिन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा वैश्वीकरण के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला।

भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री की स्थिति में काफ़ी परिवर्तन हुआ है। हिन्दी की लेखिकाएँ अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री जागरण की परंपरा को नए संदर्भों के साथ जोड़ती हुई आगे बढ रही हैं। पूरे विश्व की स्त्रियों की मुक्ति पुरुष सत्तात्मक सोच से, परंपराओं से मुक्ति है। नासिरा शर्मा अपने उपन्यास 'ठीकरे का मंगनी' के द्वारा यह स्थापित करती है कि शिक्षित नारी का जीवन जिस प्रकार अपना अस्तित्व खोजने में सफल हुई है। 'महरूख' जो मुस्लीम परिवेश का है अपने अस्तित्व को कायम रखने केलिए संघर्षरत होने का ज्वलन्त उदाहरण है। महरूख के जन्म के साथ ही साथ ठीकरे की मंगनी हुई थी तेज़ रफ्तार की ज़िन्दगी बितानेवाले एक पुरुष को उन्हें स्वीकार करनी पड़ी। उस पुरुष के हाथों कठपुतली बनकर कुछ समय तक चलती रही। लेकिन समय आने पर अपने अस्तित्व की पहचान कर अलग रास्ता चुन लिया। मुस्लिम समाज की शिक्षित स्त्री होने के कारण महरूखा को अधिक संघर्ष करना पड़ा। वह पुरुष प्रधान समाज को जवाब देती है "मैं जगह, चीज़ या मकान नहीं थी, रफ्त भाई, जो वैसी की वैसी ही रहती। मैं इनसान थी।"3 आधुनिक शिक्षित नारी सभी बन्धनों को तोडने की चेष्टा कर

रही है। वह शोषण से मुक्ति की चाहत रखती है। अपने अधिकार, सम्मान, स्वतंत्रता की चाहत रखी है। ऐसी स्थिति में उसे अनेक समस्याओं से टकराना पड़ता है। शाल्मली उपन्यास की नायिका 'शाल्मली' उच्च अफ़सर होते हुए भी समाज में समानता का अधिकार उसे मिलता नहीं। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों में संवेदात्मक ह्रास, पारिवारिक या सामाजिक सम्बन्धों का बदलता स्वरूप, स्त्री - पुरुष सम्बन्धों की बदलती संवेदन शीलता, तनाव, घुटन, विस्थापन, आर्थिक विषमताएँ अवश्य ही मूल्यों के स्वरूप में परिवर्तन जताते हैं।

वैश्वीकरण के इस दौर में विश्वग्राम की भावना जडें पकड़ने लगी हैं। देश के बीच की दूरियाँ मिटती नज़र आती हैं । आधुनिक तंत्र ज्ञान से मीलों की दूरियाँ कम होकर व्यक्ति एक देश का न रहकर विश्व नागरिक बनता जा रहा है। इसी वैश्वीकरण के दौर में उपनिवेश बढता जा रहा है। इस उपनिवेश का अच्छा उदाहरण है दुबई। इस बढते हुए उपनिवेश को 'ज़ीरो रोड' उपन्यास में चित्रित किया है। यह उपन्यास इलाहाबाद से लेकर दुबई तक व्याप्त है। उपन्यास का नायक पैसा कमाने और बिगड़ी हालत को सुधारने दुबई पहूँचता है परंतु वहाँ आकर उसे एहसास होता है कि यहाँ रिश्तों की दूरियाँ सूखकर मरुस्थल में तबदील हो गयी हैं। दुबई में पैसा कमाने केलिए आया हर व्यक्ति अपनी मिट्टी से उखडा हुआ है। जिस प्रकार हमारे पुरखों को बंधुआ मज़दूर के रूप में दूसरे देशों में ले गया था उसी तरह आज लगभग सभी देशों में युवा को एक गिरमिटिया की तरह ले जाते हैं । उपनिवेश की संस्कृति में हम खुद ही पैसे की ललक में अपने आप को किसी दूसरे के हाथों में बाँधे रहे हैं। उपनिवेश का आधुनिक रूप व्यक्ति को विश्व की मंडी में एक व्यक्ति नहीं बल्कि वस्तु के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। उसकी जडें संस्कृति, एहसास, अपनापन, भाईचारा, सुकून के तहस - नहस कर उसे विश्व के बाज़ार के एक उत्पाद के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं।

नासिरा शर्मा जाति, वर्ग, सम्प्रदाय भाषा या प्रांत विशेष से उभरकर वैश्विक धरातल पर विचरनेवाली लेखिका है। उनका उपन्यास साहित्य मानवीय दर्द की कहानी है। उन्होंने अपने साहित्य को वैश्विक धरातल पर स्थापित करके समाज के प्रति प्रतिवद्धता को निभाया है। अपने उपन्यासों में स्त्री से जुड़ी समस्याओं को उठाने का प्रयत्न भी किया । आधुनिक शिक्षा ने नारी को उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए आज़ादी का नारा दिया। उनकी विचारधारा युगीन परिवेश के वाहक के रूपक में उभरकर सामने आती है।

नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास में वैश्वीकरण का यह परिणाम खूबी से चित्रित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण का प्रभाव केवल आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक स्तर पर ही नहीं, मनुष्य के जीवन मूल्यों पर भी पड़ा है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ.पुष्प पाल सिंह- भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास
2. विनोद दास- कविता का वैभव – P-111
3. नाजिरा शर्मा – ठीकरे की मंगन- पृ. कथन से

डॉ. के. जयकुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग, एम.जी कॉलेज

तिरुवनंतपुरम।

****

13

समकालीन उपन्यासों में बदलते मानवीय संबंध

डॉ. ज्योति. एन

आज ज़माना ऐसा बदल गया है कि रिश्ते- नाते सब कागज़ातों पर सिमट गया है। प्यार, ममता, सहानुभूति को कोई जगह नहीं है। सब कहीं छल, कपट, स्वार्थता का बोलबाला है। अब वैश्वीकरण के दौर में नई पीढ़ी मानवीय सम्बन्धों से कटकर प्रौद्योगिक संस्कृति का गुलाम बन गयी है। हिन्दी उपन्यासों की ओर नज़र दौडायें तो पता चलेगा कि भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप मानवीय सम्बन्धों में बहुत सारे परिवर्तन आ चुके हैं। नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मँगनी ', 'कुइयाँजान ', ममता कालिया का ' दौड ', उषा प्रियंवदा का ' भया कबीर उदास', ऋता शुक्ला का 'अरुन्धती' आदि में ये परिवर्तन स्पष्ट झलकता है।

ममता कालिया का उपन्यास 'दौड' को देखिए। इसमें वैश्वीकरण के फलस्वरूप आए परिवर्तन और बदलते मानवीय सम्बन्धों का खुला चित्रण है। पुराने ज़माने में परिवार का खास महत्व था। लेकिन उत्तराधुनिकता में भागनेवाले मानव के सामने वक्त की कमी है। अपने माँ-बाप से बातचीत करने या महीने में एक बार मिलने तक का अवसर नहीं। नायक पवन और भाई सघन के व्यवहार इसका नमूना है।आज मानवीय सम्बन्धों का आधार पैसा बन गया है। सघन अपने पिता से रुपए का हिसाब माँगता है- "आपने इतने बरसों में क्या किया ? दोनों बच्चों का खर्च आपके सिर से उठ गया। घूमने आप जाते नहीं, पिक्चर आप देखते नहीं, दारू आप पीते नहीं, फिर आपके पैसों का क्या हुआ? "1

युवा वर्ग रिश्ते- नाते, जीवनमूल्य, नैतिकता एवं संस्कृति को छोडकर धन एवं कैरियर की दौड में लगे हुए हैं। पुराने ज़माने में पति- पत्नी सम्बन्ध एवं माँ- बच्चे सम्बन्ध उदात्त थे। लेकिन आज के उत्तराधुनिक युग में किसी भी रिश्ते का कोई मायना नहीं। 'गिलिगडु' में चित्रा मुद्गल ने कर्नल स्वामी की बहू के माध्यम से इसका चित्रण किया है। कर्नल स्वामी की बहू पति और बच्चों को छोडकर नृत्यगुरु के साथ भाग जाती है। इसके विरोध में पति श्रीनारायण दूसरी शादी करता है। बेचारे बच्चे अकेले पड जाते हैं। पति-पत्नी – बच्चे सम्बन्ध के बीच का दरार यहाँ व्यक्त है। फलस्वरूप बच्चे अकेलेपन भोगने में मज़बूर हो जाते हैं। मानव-मूल्यों की जानकारी बच्चों को दिलानेवाले माँ- बाप की हालत ऐसी है तो बच्चे मानव – मूल्यों की जानकारी से वंचित हो जाते हैं। स्वाभाविक रूप से बच्चे मानवीय सम्बन्धों से कटकर प्रौद्योगिक संस्कृति के गुलाम बन जाते हैं। चित्रा मुद्गल के शब्दों में - "बुद्धि विकास की आड़ में बडी खूबसूरती से बच्चों को संवेदनाच्युत किया जा रहा- इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सकें, न कभी अपना कोई परिवार गढ़ सकें।"2

नासिरा शर्मा का बहुचर्चित उपन्यास 'ठीकरे की मँगनी' की नायिका महरूख विशाल हृदय की मालकिन है। बडे मुस्लिम खानदान की बेटी महरूख अपनी सारी सुख- सुविधाएँ त्यागकर बेचारे गाँववालों की भलाई केलिए काम करती है, उन्हें शिक्षित कराने की कोशिश करती है, उन्हें अन्याय के खिलाफ जगाने की कोशिश करती है। किसानों के प्रति महरूख आत्मीयता रखती है। पढ़ी- लिखी महरूख अपनी ज़िन्दगी के सुनहरे भविष्य छोडकर गाँव की शीतलता स्वीकार करती है। " अपनी लडाइयाँ खुद लडी, अपना गम अपने से पिया । मैं ने अगर पीछे बहुत कुछ छोड़ा है तो आगे इतना कुछ पाया भी तो जो पाया है वह सबकी किस्मत में

कहाँ?"3 आज के छल- कपट के युग में महरूख जैसे कई लोग हैं जो दूसरों की सहायता के लिए हमेशा प्रयत्नरत हैं।

'कुइयाँजान' नासिरा शर्मा कृत श्रेष्ठ उपन्यास है, जो उदात्त मानवीय संबन्धों की गाथा है। इसमें भाईचारा एवं आपसी प्यार का सुन्दर सामंजस्य देख सकते हैं। नायक डॉ. कमाल और पत्नी समीना सहजीवियों से प्यार करनेवाले हैं। वे अपना नर्सिंग होम चलाते हैं और अपने पेशे के ज़रिए इन्सानियत को बचाने का काम करते हैं। दोनों के मन की विशालता का उत्तम उदाहरण गली के आग लगने के प्रसंग पर देख सकते हैं। आग में सबकुछ जलकर खाक हो गया था। उस समय दोनों वहाँ पहुँचते हैं उनकी सहायता करते हैं। लोगों को समीना सांत्वना देती है - "पहला काम तो यह करो कि तुम लोग कुछ खा-पी लो। देखो, हम जाकर तुम लोगों के लिए चाय, शक्कर, दूध और आटा लाते हैं। पहले बच्चों को कुछ दो, खुद खाओ। फिर सोचना।"4 अपने चारों ओर के लोगों को दया, करुणा एवं मानवीयता की डोर से एक साथ लाने का स्तुत्य प्रयास दोनों करते हैं।

आज मानव मन में अपनी-अपनी भलाई की चिंता मात्र है। भाईचारा नाम के बराबर है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'विज़न' में चिकित्सा क्षेत्र की विसंगतियों के द्वारा बदलते मानवीय सम्बन्धों का चित्रण देख सकते हैं। पुराने ज़माने में डाक्टर-मरीज सम्बन्ध इतना सुदृढ़ था कि डाक्टरों को ईश्वर का स्थान था। मरीजों की भलाई डाक्टरों का लक्ष्य था। ज़माना बदला तो डाक्टर लुटेरा बन गया। धन की लालच में अपना कर्तव्य वे भूल गए। यहाँ 'शरण आई हॉस्पिटल' की आड़ में मरीज़ों का शोषण करनेवाले डाक्टरों का वर्णन उपन्यासकार करते हैं। केस मामूली 'डे केयर सर्जरी' का है तो भी तीन- चार दिन नर्सिंग होम में दाखिल करते हैं, क्यों कि डाक्टरों का

जेब भरना है। उनकी राय में जीवन का एक 'मिशन' है- "मिशन जो किसी 'कॉज़' के लिए होता है, महज व्यक्ति के लिए नहीं।"5

हॉस्पिटल के बहाने मरीजों का लूटना, ब्लैकमेलिंग, झूठी चिकित्सा सबका चित्रण भी 'विज़न' उपन्यास में है। चिकित्सा जगत् में हावी हो रही लूट-खसोट और मानवीय मूल्यों के क्षय का चित्रण है।

आज के प्रौद्योगिक युग में रिश्तों में जीवंतता और आत्मीयता नहीं दिखाई देती हैं, सब कहीं खोखलापन है। एक छत के नीचे रहनेवाले लोग भी आपस में बातचीत न करके ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। ऋता शुक्ला का उपन्यास 'अरुंधती' इसका स्पष्ट दस्तावेज़ है। नफरत- नुक्सान की नज़र से रिश्तों को देखनेवाले वर्तमान समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र प्रस्तुत उपन्यास में है। पिता के स्वर्गवास के बाद अकेली पड गयी माँ- बेटी को भी देख सकते हैं। बेटी अरुंधती कहती है-"निष्प्राण सम्बन्धों को ढोते-फिरने की कायरता क्यों ? अम्मा, क्या अब भी तुम्हें नहीं लग रहा है कि इन अपने लोगों के बीच हम सबसे ज़्यादा असुरक्षित हैं। "6

आज ज़माना ऐसा है कि रिश्ते- नाते दूसरों को दिखाने का मुखौटा मात्र है। आज भाईचारे से परे छल- कपट है।

उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'भया कबीर उदास' में अवसरवादी पुरुषों के निर्मम हरकतों का चित्रण है। नायिका लिली पांडेय स्तन-कैंसर से पीड़ित है। लेकिन जीवन के अंतिम क्षणों में प्यार करनेवाले शेषेंद्र उसे छोड़कर चला जाता है। दो पुरुष पात्र अपूर्व और शेषेंद्र स्वार्थता के प्रतीक हैं। कैंसर से पीडित अपर्णा को त्यागनेवाले अपूर्व और स्तन कैंसर से पीडित लिली को त्यागनेवाले शेषेंद्र। शेषेंद्र का कथन है-" मैं बहुत कमज़ोर और कायर व्यक्ति हूँ। चार- पाँच साल पहले पत्नी को वक्ष- कैंसर हो गया था। मैं अपने या किसी और की बीमारी देख नहीं सकता,

अस्पताल की गन्ध से मैं दूर भागता हूँ।"7अपनी पत्नी को हिम्मत और साथ देने के बदले उससे दूर भागनेवाला शेषेंद्र स्वार्थी व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है। ज़माने के रूपांतरित भाव को उषा प्रियंवदा ने इधर आंका है।

ज़माना बदला। नाते- रिश्ते सिमट गए। प्यार, दया, ममता, ईमानदारी की जगह छल, कपट, धोखेबाज़ी, स्वार्थता ने स्थान पा लिया। हिन्दी के बहुत सारे उपन्यासकारों ने मानवीय सम्बन्धों में आए इस दारार का चित्रण किया है। मानवीय मूल्य और नाते- रिश्ते रूपी शीश महल को संभालना सब का फर्ज है। जब वह हाथ से फिसलकर धरती पर गिर जाता है तब हज़ारों टुकडे बन जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ममता कालिया, दौड, पृ.94.
2. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, पृ.34.
3. नासिरा शर्मा, ठीकरे की माँगनी, पृ.194.
4. नासिरा शर्मा, कुइयाँजान, पृ.44.
5. मैत्रेयी पुष्पा, विज़न, पृ.120
6. ऋताशुक्ला, अरुंधती, पृ.25
7. उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, पृ.51

डॉ. ज्योति. एन

एसोसिएट प्रोफसर

सरकारी वनिता कॉलेज

तिरुवनन्तपुरम्

****

14

हीरा भोजपुरी का हेराया बाजार में

राजीव रंजन गिरि

संजीव अपने समय के एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। उन्होंने 'पूत-पूत-पूत', 'अपराध', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'लिटरेचर', 'आरोहण', 'ट्रैफिक जाम' और 'खोज' जैसी कई लोकप्रिय एवं चर्चित कहानियाँ लिखी हैं। इसके साथ ही संजीव ने 'किशनगढ़ के अहेरी', 'सर्कस', 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'पाँव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', और 'सूत्रधार' उपन्यास भी लिखे हैं। आखिर उनकी कथा में ऐसा क्या है, जो उन्हें उनके समकालीन कथाकारों से अलग करता है? साथ ही उन्हें बतौर महत्वपूर्ण कथाकार स्थापित करता है?

संजीव अपनी प्रत्येक रचना के लिए शोध करते हैं। भाषा के स्तर पर और कथ्य के स्तर पर भी। श्रम-साध्य शोध को, अपनी दृष्टि से, कथा में पिरोते हैं। गझिन बनाते हैं। संजीव जहाँ की कथा कहते हैं, मानो वहीं बस जाते हैं। कथा पढ़कर पाठक वहाँ की बोली-बानी और भूगोल को भी समझ सकता है। इन सबके साथ, संजीव की वैचारिक दृष्टि भी स्पष्ट दिखती है। संजीव ने जिन मुद्दों पर लिखा है, उसी से उनकी एक अलग पहचान बनती है। उनकी रचनाएँ कलात्मकता के साथ ही उनकी पक्षधरता भी रेखांकित करती हैं। संजीव कथा के लिए जिस विषय का चुनाव करते हैं, उस पर महानगरों के ड्राइंगरूम में बैठकर नहीं लिखा जा सकता। अगर कोई लिखता है तो उस विषय के प्रति ईमानदारी नहीं बरतता। वह रचना विश्वसनीय भी नहीं होती है। अंततः कमज़ोर रचना सिद्ध होती है।

'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', या फिर 'सूत्रधार' में संजीव ने जिन विषयों पर लिखा है; उन पर लिखने के लिए उन इलाकों में भटकने का साहस भी किया है उन्होंने। तथ्यों को प्राप्त कर, उनके रचनात्मक उपयोग की बेहतर क्षमता भी है उनमें। अपनी किस्सागोई व कलात्मकता के सहारे संजीव, उन विषयों पर, लिखने का जोखिम उठाते हैं।

संजीव का उपन्यास 'सूत्रधार' भोजपुरी भाषा के लोक-कलाकार भिखारी ठाकुर के जीवन पर आधारित है। इस आलेख के दो भाग हैं। पहले हिस्से में बजरिए 'सूत्रधार' कथाकार संजीव अपने कथा-नायक भिखारी ठाकुर के जीवन और उस ज़माने को, जिस रूप में दिखाना चाहते हैं, उसे ज़ाहिर किया गया है। यह हिस्सा संजीव के पक्ष की व्याख्या है। दूसरे हिस्से में, संजीव के देखन और दिखावन का विश्लेषण करते हुए, उसमें निहित समस्याओं की तरफ़ इशारा किया गया है; ताकि कथाकार के पक्ष की जाँच-पड़ताल हो सके।

भिखारी ठाकुर का जन्म बिहार के तत्कालीन सारन (अब छपरा) जिला के एक पिछड़े गाँव कुतुबपुर में हुआ था। उनके जन्म की तिथि को लेकर पर्याप्त मतभेद हैं। फिर भी कुछ लोग मानते हैं कि उनका जन्म 18 दिसंबर, 1887 को हुआ था। वे चौरासी साल जीवित रहे। उनका निधन 10 जुलाई, 1971 को हुआ। भिखारी ठाकुर द्वारा रचे एवं मंच पर प्रदर्शित किए नाटक 'बिदेसिया', 'गबर-घिचोर', 'बेटी-वियोग' (कई लोग इसे 'बेटी-बेचवा' नाम देते हैं।) 'भाई-विरोध', 'विधवा-विलाप', 'कलियुग-प्रेम' एवं 'नाई-बहार' भोजपुरी भाषियों के बीच काफ़ी लोकप्रिय रहे हैं। उनकी लोकप्रियता एवं नाटकों को परखते हुए, जगदीशचंद्र माथुर ने उन्हें 'भोजपुरी का शेक्सपियर' और राहुल सांकृत्यायन ने 'अनगढ़ हीरा' कहा था।

अपने प्रारंभिक उपन्यासों से ही संजीव भारतीय समाज की समस्याओं पर बारीक नज़र रखते आए हैं। कहना न होगा कि संजीव की अंतर्दृष्टि उन्हें बारीकी प्रदान करती है। उनके

उपन्यास 'सूत्रधार' को कुछ लोगों ने 'आंचलिक उपन्यास' की संज्ञा दी है; क्योंकि यह उपन्यास भोजपुरी भाषी लोगों की संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज़ एवं परंपरा को रेखांकित करता है। इस उपन्यास में भोजपुरी भाषी क्षेत्र की मिट्टी की महक है। लेकिन क्या इसकी वजह से सूत्रधार को 'आंचलिक' कहा जा सकता है? जवाब होगा, नहीं; क्योंकि आंचलिक उपन्यास में अंचल नायक होता है। कोई व्यक्ति-विशेष नायक नहीं होता। हिंदी का श्रेष्ठ उपन्यास 'मैला आँचल', जो आंचलिक भी है; इसका बेहतरीन उदाहरण है। 'सूत्रधार' में भोजपुरी क्षेत्र मुख्य चरित्र नहीं है, बल्कि भोजपुरी भाषा के लोक-कलाकार भिखारी ठाकुर नायक हैं। भिखारी ठाकुर के बहाने ही उपर्युक्त तत्वों का समावेश किया गया है। सवाल उठता है कि संजीव बगैर भोजपुरी इलाके की संस्कृति, बोली, टोन के इस उपन्यास को लिखने में कितना सफ़ल होते? इस सवाल पर मतभेद हो सकता है।

दरअसल, संजीव भिखारी ठाकुर को 'भिखरिया, भिखारी, भिखारी ठाकुर, मल्लिक जी एवं राय बहादुर भिखारी ठाकुर' तक चित्रित करना चाहते थे। अतः यह आवश्यक था कि भिखारी ठाकुर के चरित्र के विकास को विश्वसनीय बनाने के लिए, वे ऐसा प्रयोग करते। यूँ उपन्यास की रचना के लिए यह जोखिम भरा काम है। संजीव के लिए तो और भी। संजीव की अपनी बोली (मातृभाषा) अवधी है। भोजपुरी के एक कथा नायक को, ठेठ उसी की भाषा में, चित्रित करने के लिए जिन तत्वों की ज़रूरत है, उसको हासिल कर रचनात्मक उपयोग करने में लेखक का श्रम काफ़ी बढ़ गया होगा। छपरा की स्थानीय बोली-बानी, रीति-रिवाज़, गाली, मुहावरे, परिवेश एवं खास टोन के समन्वय से रचित 'सूत्रधार' ज़्यादा विश्वसनीय लगता है।

भिखारी ठाकुर ने अपने रचनात्मक जीवन की शुरुआत भोजपुरी से की थी। अंतिम दौर तक भोजपुरी का ही उपयोग किया। अलबत्ता भिखारी ठाकुर बाद में, हिंदी का थोड़ा प्रयोग करने

लगे थे। लेखक ने उपन्यास में इसे चित्रित भी किया है। लेकिन भिखारी ठाकुर खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग नहीं करते, या कर पाते हैं। उनकी हिंदी वही है, जो एक आम भोजपुरी भाषी बोलता है। जो अपनी बोली को व्याकरण की कसौटी पर नहीं कसता। भोजपुरी युक्त हिंदी। यह भाषा की जीवंतता एवं लचीलेपन का सुंदर नतीजा है। भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में 'स्थानीयता' की अस्मिता खतरे में है। भूमंडलीकरण के नाम पर सिर्फ 'पूँजी का भूमंडलीकरण' हो रहा है। इसी क्रम में अँग्रेजी भाषा का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, अवधी जैसी भाषा की कौन कहे, अब तो हिंदी जैसी भाषा पर संकट के बादल छाए हैं। हिंदी अब हिंगरेज़ी बनती जा रही है। सूचना-तंत्र के विभिन्न माध्यमों के ज़रिए ऐसा हो रहा है। भोजपुरी तो भारतीय भाषाओं के बीच भी उपेक्षित रही है। ऐसे समय में 'सूत्रधार' की भाषा, सकारात्मक संदेश देती है। आज जैसा व्यवहार अँग्रेज़ी हिंदी के साथ कर रही है, वैसा ही शोषणमूलक व्यवहार खड़ी बोली हिंदी ने अपनी अन्य बोलियों (भाषा) के साथ किया है। 'सूत्रधार' ने प्रकारांतर से भोजपुरी की अस्मिता को रेखांकित एवं स्थापित किया है।

'सूत्रधार' का प्रारंभ भिखारी ठाकुर के जन्म से होता है। 'सूत्रधार' भोजपुरी इलाके की जनता के बीच सर्वाधिक लोकप्रिय कलाकार भिखारी ठाकुर के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इस प्रकार, यह एक 'जीवनीपरक उपन्यास' है। जीवनीपरक उपन्यास लिखने की अपनी समस्याएँ होती हैं। लेखक ने उपन्यास के प्रारंभ में इन समस्याओं के बारे में लिखा है कि "जीवनी लिखना इससे कहीं सरल कार्य होता, कारण, तब आप परस्पर विरोधी दावों के तथ्यों का उल्लेख कर छुट्टी पा सकते हैं। जीवनीपरक उपन्यास में आपको औपन्यासिक प्रवाह बनाते हुए किसी मुहाने तक पहुँचना ही पड़ता है, यहाँ द्वंद्व और दुविधा की कोई गुंजाइश नहीं है। दूसरी ओर उपन्यास लिखना भी जीवनीपरक उपन्यास लिखने की अपेक्षा सरल होता है, कारण

आप तथ्यों से बँधे नहीं रहते। यहाँ दोनों ही स्थितियाँ नहीं थीं। भिखारी ठाकुर तीस वर्ष पहले तक जीवित थे; उन्हें देखने और जानने वाले लोग अभी भी हैं। सो, सत्य और तथ्य के ज़्यादा-से-ज़्यादा करीब पहुँचना मेरी रचनात्मक निष्ठा के लिए अनिवार्य था। इस प्रक्रिया में कैसी-कैसी बीहड़ यात्राएँ मुझे करनी पड़ीं, ये सारे अनुभव बताने बैठूँ तो एक अलग पोथा तैयार हो जाए।"

भिखारी ठाकुर जैसे व्यक्तित्व को केंद्र बनाकर उपन्यास लिखने में और भी कठिनाई है। वजह, उनकी प्रामाणिक जीवनी का अभाव। वे जीते जी 'लीजेंड' बन गए थे। ज़ाहिर है, जनता ने अपने प्रिय कलाकार के बारे में खुद मिथ गढ़ लिया है। भिखारी ठाकुर के बारे में लोग भाँति-भाँति की बातें बताते हैं। जितने लोग, उतनी तरह की बातें। इन पंक्तियों के लेखक का घर भोजपुरी भाषी इलाके में है। अतः अपने गाँव के बड़े-बुजुर्गों से, भिखारी ठाकुर के बारे में, तरह-तरह की बातें सुनने को मिलती हैं। लोगों से उनके बारे में, उनकी लोकप्रियता के बारे में सुनकर अचरज होता है। ऐसे में लेखक ने, मिथ बन गए भिखारी ठाकुर के जीवन को, 'सूत्रधार' में जो गति एवं आकार प्रदान किया है, वह बेहतर किस्सागोई एवं वैचारिक दृष्टि का नमूना है।

जीवनीपरक उपन्यास लिखने के लिए ज़रूरी होता है, उपन्यास के नायक के देश-काल को पकड़ना। देश-काल की अच्छी समझ के बगैर जीवनीपरक या ऐतिहासिक उपन्यास लिखा नहीं जा सकता। यह भी सच है कि प्रत्येक रचनाकार तत्कालीन परिवेश को परखते हुए, अपनी समझ व दृष्टि के मुताबिक, तत्कालीन देश-काल यानी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की रचना करता है। वर्तमान के बोध और भविष्य के स्वप्न से भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को गढ़ने में मदद मिलती है। लेकिन कभी-कभी वर्तमान, तत्कालीन देश-काल पर, हावी हो जाता है, तो कभी भावी स्वप्न से आक्रांत होने के कारण भी विगत ठीक-ठीक समझ में नहीं आता; ऐसे में सही ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य की रचना नहीं हो पाती है। सही देश-काल को गढ़ने के लिए ज्ञान के दूसरे अनुशासनों में हुए शोध व अध्ययन की जानकारी भी निहायत ज़रूरी होती है।

इतिहास के जिस दौर को, रचनाकार अपनी रचना में चित्रित करता है, उस देश-काल का सही चित्रण करने के लिए तत्कालीन समाज, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज़, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज में मौजूद तरह-तरह के अंतर्विरोध, तनाव और जटिलताओं की व्यापक समझ के बगैर संभव नहीं है। इसीलिए ज्ञान के दूसरे अनुशासनों से सहायता लेनी पड़ती है। काबिलेगौर बात है कि देश-काल की रचना कै मरामैन द्वारा ली गई तस्वीर जैसी नहीं होती, क्योंकि तत्कालीन परिवेश सामने नहीं होता है। यह चित्रकार द्वारा बनाया चित्र होता है जिसे बनाने में चित्रकार तरह-तरह के रंगों को अपनी कल्पना एवं प्रतिभा द्वारा भरता है। संजीव ने 'सूत्रधार' में भिखारी ठाकुर के व्यक्तित्व के विकास-क्रम को दिखाने के लिए, जिस परिवेश व देश-काल का निर्माण किया है, ज़्यादातर विश्वसनीय है। भिखारी ठाकुर के बहाने समाज की जटिलता को, इस उपन्यास के ज़रिए, समझा जा सकता है।

शिवकली देवी एवं दलसिंगार ठाकुर के पुत्र का नाम भिखारी ही क्यों पड़ा? इससे तत्कालीन सामाजिक संरचना के सत्तामूलक पहलू को समझा जा सकता है। नाम का भी समाजशास्त्र होता है। "नाम...? नाम पड़ा भिखारी। यूँ तो कितने अच्छे-अच्छे नाम हैं, लेकिन वे बड़ी जात वालों को शोभते हैं, फिर नाम पर कौन सिर खपाता।" (सूत्रधार, पृष्ठ-16 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण) भिखारी ठाकुर का जन्म जिस परिवार में हुआ था, वह तथाकथित निम्न जाति (नाई जाति) में आता था। यह परिवार आर्थिक रूप से भी कमज़ोर था। आर्थिक एवं सामाजिक दंश झेल रहे इस परिवार को इतनी फुर्सत कहाँ कि नवजात बेटे के नामकरण के लिए सिर खपाए। इस तबके के लिए नाम तो महज बुलाने-पहचानने का जरिया

है। यह तबका सामाजिक एवं आर्थिक रूप से इतना सबल नहीं है कि 'नामकरण संस्कार' कराए। आर्थिक दुर्बलता के कारण 'नामकरण संस्कार' के नाम पर पैसे खर्च नहीं कर सकता। सामाजिक रूढ़ियों के कारण सुंदर नाम नहीं रख सकता। भिखारी जब स्कूल पढ़ने जाते हैं तो (तथाकथित) बड़ी जाति के लड़के चौंक जाते हैं।

"ई के ह-अ रे?"

"नउवा!"

"नउवा...? इ हो पढ़ेगा? पढ़-लिख के तें का करेगा रे?"

"नौवा कौवा, बार बनौवा!" और तरह-तरह की अश्लील टिप्पणियाँ!

"हजामत के बनाई?"

"नहरनी ले ले बाड़े रे, तनी नह काट दे।" (पृष्ठ-17)

ये पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि भिखारी की प्राथमिक पहचान एक व्यक्ति मात्र के रूप में नहीं, बल्कि एक 'नउवा' (जाति विशेष) के रूप में है। व्यक्ति की पहचान उसके कर्म से नहीं, अपितु जन्म से है। समाज द्वारा पूर्व निर्धारित जाति से है। तथाकथित बड़ी जाति के भिखारी के ही उम्र के भोले (!) बच्चों के मन में ये बातें इसी उम्र से भर गई हैं। भिखारी के पढ़ने से उन्हें आपत्ति क्यों है? पढ़कर भिखारी शायद प्रदत्त पहचान को ठुकरा दे। अपनी नई पहचान बनाए। समाज द्वारा पूर्व निर्धारित कर्मों को त्यागकर अपनी प्रतिभा एवं इच्छानुसार कार्य करे। तभी तो वे कहते हैं, "हजामत के बनाई?"

भिखारी जिस समाज से आते हैं, उसका काम हजामत बनाना, न्योतना, टहलुअई करना है। स्कूल के विद्यार्थी ही नहीं गुरुजी भी इसी मानसिकता से ग्रस्त हैं। गुरुजी को लगता है, मुफ़्त का 'टहलुआ' मिल गया। वे 'टीपने' के लिए बाँह या टाँग पसार देते हैं। यही वह समय है, जब

भिखारी का सरोकार परिवार से आगे समाज के अन्य लोगों से होता है। इस सरोकार से क्या सीख मिलती है, भिखारी को? भिखारी स्कूल जाना नहीं चाहते हैं। स्कूल छोड़ देते हैं। भिखारी एक दोस्त घुलटेन से कहते हैं, "नान्ह जाति के अलग से पाठशाला होखे के चाहीं।" इस पर घुलटेन दुसाध का जवाब है, "ओकरा में पंडीजी ना, नान्हे जात के मास्टर।" भिखारी के बचपन की इन घटनाओं के बाद दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्म-कथा 'जूठन' एवं जयनंदन का उपन्यास 'ऐसी नगरिया में केहि बिधि रहना' का एक प्रसंग अनायास ही याद आता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि से स्कूल के मास्टरजी पूरे स्कूल की सफ़ाई कराते हैं, शेष लड़कों को पढ़ाते हैं। जयनंदन के उपन्यास के मास्टरजी (?), डोम जाति के अपने एक शिष्य के साथ, अप्राकृतिक यौनाचार तक करते हैं।

स्कूल छोड़ने के बाद भिखारी ठाकुर दियारे में गाय चराने जाते हैं। गाय चराने में भिखारी को आनंद आता है। आखिर यह आनंद क्यों आता है? दियारे में स्वतंत्रता है। किसी की 'टहलुअई' नहीं करनी पड़ती है। अपने मन का करना है। कोई दबाव नहीं है। दियारे में गुंटी, चीका, कबड्डी, गुल्ली-डंडा खेलते हैं, दोस्तों के साथ। नाच-तमाशे, दुनिया-जहान की बातें आपस में करते हैं। भिखारी का विवाह हो गया है लेकिन 'मेहरारू' क्या होती है; इसका बोध नहीं। दियारे में ही भिखारी के कलाकार का जन्म होता है। खपटा बजाकर गीत शुरू करता है -

"हम तऽ नइहर के बानी रसीली

कि लोगवा पागल कहेला ना..."

"खटर-खटर खपड़ा बोलता, 'खुदर-खुदर' चुरती हाँड़ी की खीर। रस में आकर कोई गमछे का घूँघट बनाकर ठुमके लगाने लगता। एक गीत खतम होता तो दूसरा गीत छिड़ जाता। एक नाच खतम होता तो दूसरा। एक-एक गीत को कई-कई तरह से गाया जाता। अक्सर किसी-

किसी की एक ही कड़ी याद रहती - एक दिन अइह-अ कान्हा, नदिया किनारे मोरा गाँव, नदिया किनारे की घन बँसवारिया..." (पृष्ठ 19)

स्कूल में जाति को लेकर अपमानित होने के बाद भिखारी ठाकुर को एक 'यज्ञ' में दुबारा अपमानित होना पड़ता है। एक ब्राह्मण को भिखारी की जाति का पता नहीं था। गौर वर्ण, सुंदर व्यक्तित्व देखकर पुरोहित जी (!) भिखारी को ब्राह्मण का लड़का समझ गए थे। उनका आदेश पाकर भिखारी अल्पना बनाने लगे। थोड़ी देर में एक दूसरे पुरोहित आए। "आते ही उसने पूछा - ई के ह-अ?"

आवाज़ में इतनी घृणा थी कि भिखारी के हाथ-पाँव ठंडे हो गए, कलेजा काँपने लगा।

"काहे का बात है?" पहले पंडित जी ने पूछा।

"आपको ब्राह्मण नहीं भेटाया जो नाई के लड़के से जग्गशाला भरस्ट करवा रहे हैं?"

"ई नाऊ है?"

"तब का! ..."

"वो बच्चा दूसरा काम देखो। एक बात सुन लो, जात मत छिपाना, पाप लगेगा।" भिखारी के हाथ-पाँव सुन्न। जैसे कोई चूक हो गई हो। (पृष्ठ-22)

इसके बाद पुरोहितजी ने गंगा जल का छिड़काव कर मंत्र से शुद्ध किया। जिस 'यज्ञ' में श्रम के सभी काम तथाकथित निम्न जाति के लोग कर रहे हों, उनके छूने से यज्ञशाला भरस्ट हो जाता है, भिखारी का भोला मन इसे समझ नहीं पा रहा था। गंगाजल नाई या कहार ढोकर ले आए थे, लकड़ी लोहार फाड़ रहा था। दूध-दही अहीर के घर से आया होगा, कलशा-परई कुम्हार दे गया होगा, दोना-पत्तल नट और डोम दे गए होंगे। आम का पल्लव मल्लाह दे गया था। बावजूद

इसके यज्ञशाला भरस्ट। आश्चर्य तो यह है कि जिस गंगाजल को नाई या कहार लाया था, उसी से यज्ञशाला शुद्ध किया जा रहा था। यह है हिंदू-समाज का अंतर्विरोध।

मराठी के एक दलित कवि शरण कुमार लिम्बाले की कविता हिंदू समाज का यह पाखंड रेखांकित करती है -

"मस्जिद से अजान की आवाज़ आई
सब मुसलमान मस्जिद में चले गए।
गिरजे की घंटियाँ बजीं
सब ईसाई गिरजे में चले गए।
मंदिर से घंटे की आवाज़ आई।
आधे लोग मंदिर में चले गए,
आधे बाहर ही रहे।"

हिंदू धर्म के इस शोषणमूलक चरित्र को समझने के लिए अँग्रेजी शासन के सांस्कृतिक तर्क को परखा जा सकता है। अँग्रेजी शासक अपनी सत्ता कायम रखने के लिए जिस तर्क का सहारा लेते थे, वैसा तर्क प्रत्येक वर्चस्ववादी सत्ता गढ़ती है। अँग्रेज़ अपने स्वार्थ को स्वीकार नहीं करते थे। उनके अनुसार, वे भारत को लूटने-खसोटने के लिए, अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए यहाँ शासन नहीं कर रहे थे; अपितु यहाँ के लोगों को सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से बेहतर बनाने के लिए, कर रहे थे। चूँकि वे दुनिया में सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिए यह ईश्वर का आदेश है कि सबको बेहतर बनाने का ज़िम्मा लें। विचारणीय है कि आधुनिक युग में जिन तर्कों के ज़रिए अँग्रेज़ी सत्ता ने पूरी दुनिया को गुलाम बनाया; सदियों पूर्व अपने समाज के कुछ लोगों को गुलाम बनाने के लिए हिंदू समाज ने भी उन्हीं तर्कों का उपयोग किया था। तभी तो उस यज्ञ में प्रवचन

करने काशी से आए रामायणी बाबा कह रहे थे - "ईश्वर अंश जीव अविनाशी! सभी प्राणी उसी ईश्वर के अंश हैं; वही जो बड़ा या बृहत करता है - ब्री, हनताद इति ब्रह्मं! तब भी भेद और प्रभेद है। तब भाई लोग, बूझिए कि फरक कहाँ पड़ा। ई छोट बड़ कैसे भईल भाई! तो सुनिए छोट-बड़ हम और आप नहीं बनाए। ऊपर से ही बन के आया है - करई करावई भंजई सोई - ओही परमात्मा के छोट-बड़ बनावल है, हम-आप के हैं? इसमें झूठ तनिको नहीं है। बेद ब्रह्माजी के मुँह से निकला है, गीता विष्णु भगवान के साक्षात् अवतार कृष्ण जी के मुख से निकली है और गोसाईजी का रामायण पर स्वयं शंकर भगवान का दस्तखत है। ब्रह्म के तीनों महा अंश ब्रह्मा, विष्णु, महेश के बाद और कोई साखी-गवाही चाहीं?" (पृष्ठ 22) काशी से आए रामायणी बाबा (!) सबसे बड़े झूठ को कैसे विश्वास के साथ आम जनता में प्रचारित कर रहे हैं?

इतिहास के उसी दौर में हिंदू धर्म के बाह्याडंबर, कुरीतियों, पाखंड एवं झूठ को मिटाने के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना की थी। इस पुस्तक में, उन्होंने रामायणी बाबा जैसे लोगों के झूठ का पर्दाफ़ाश किया था। यह ठीक है कि दयानंद के तार्किक दृष्टिकोण की भी सीमाएँ हैं। बावजूद इसके वे कई भ्रमों को ठीक से समझते थे। प्रवचन के ज़रिए प्रचारित किया जा रहा है कि 'छोट-बड़' ईश्वर ने ही बनाया है। मैकियावेली ने ठीक कहा था कि शासक वर्ग को अपनी सत्ता कायम रखने के लिए सुनियोजित भ्रम का प्रचार करना चाहिए। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच को ईश्वर प्रदत्त बताना, सुनियोजित भ्रम ही तो है।

भिखारी ठाकुर जाति-प्रथा के दंश को झेलते हैं। उसके शोषणमूलक चरित्र को समझते हैं। उन्हें शोषण का बोध है। एक बार जब उनकी मुलाकात एक सूरदास से होती है। वे सूरदास के गीत की तारीफ़ करते हैं। सूरदास के पूछने पर कि "के ह-अ भाई?"

जवाब देते हैं - "महाराज जी हम हई - भिखारी, कुतुबपुर दीयर, जिला, सारन के नाई।"

... ...

महात्माजी की रुचि, लगता था, भिखारी-जैसे नाई की प्रशंसा सुनने में नहीं थी। बोले, "अरे ए ठाकुर, तनी हथवा टीप न द भगत।"

उसने खुशी-खुशी मालिश की सूरदास की, फिर बजाने वालों की भी। अलसाए कुत्तों की तरह वे पसरते गए, एक-एक करके।

"यही सब कुछ तो होता रहा अब तक उसके साथ। उम्र के उनतीस बरस के बेकार बीते हुए दिन। आज इस दूर-दराज के गाँव में रह-रहकर वे सारे बरस जग रहे हैं। सूरदास भी बेगार करवाने से बाज न आए, दूसरे तो कराते ही हैं। नाई देखते ही हजामत बढ़ जाती है। औरत जितनी भी गुणवती क्यों न हो, भोगी के लिए उसका सिर्फ़ एक गुण है - भोगने की चीज़! नान्ह जातिवाला आदमी चाहे जितना भी ज्ञानी हो, बड़े जातिवालों के लिए उसका सिर्फ़ एक उपयोग है - सेवा लेना। सेवा लेना और उससे घिना करना। शास्त्रों में भी यही लिखा है और बाप-महतारी-गाँव-समाज भी यही मानता है। हुँह -'सीता माई' कहकर ताने कस रहे थे। दूसरी जगह नाच और गवनई में मूँड़ी हिलाएँगे, वाह! वाह!! शाबासियाँ देते हुए थकेंगे नहीं। और अपने घर में हो तो ...? इस दो मुँहेपन को क्या कहें? वह चाहे तो उनमें से कइयों से अच्छा करके दिखा सकता है, लेकिन भाग्य में तो हज्जामी लिखी है।" (पृष्ठ 47)

भिखारी ठाकुर को 'बेगारी' का बोध है। 'नान्ह जात' पर हो रहे अत्याचार की समझ है। यहाँ जाति का दंश झेल रहे कलाकार भिखारी ठाकुर की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। हमारा समाज कला से आनंदित होता है लेकिन कलाकार को महत्व नहीं देता। सामंती समाज में ऐसा होता है। वही व्यक्ति जो 'नाच' में शाबासी देता है, बाद में ताना मारता है। कलाकार के महत्व, उसकी मनोदशा, पीड़ा को नहीं समझता है। भिखारी की पीड़ा है कि "तो क्या यूँ ही टहलुअई करते बीत

जाएगी पूरी उमर? मन में अजीब-सी खलल है। इस फंदे से छुटकारा पाए बिना गति नहीं। असहनीय पीड़ा, जैसे अंडे से कोई चूजा निकल आने की जद्दोजहद में हो।" (पृष्ठ 47) यही 'सूत्रधार' का केंद्रीय तत्व है। भिखारी के जीवन एवं रचनात्मक संघर्ष की वजह भी यही है।

भिखारी 'टहलुअई' करते जीवन बिताना नहीं चाहते हैं। उन्हें यह बोध है कि इस फंदे से छुटकारा पाए बिना गति नहीं। असहनीय पीड़ा भी होती है। कलाकार भिखारी बनने के लिए यह पीड़ा प्रेरित करती है। आखिर कैसे छूटे टहलुअई? अब 'कलाकार' भिखारी के जीवन की शुरुआत होती है। भिखारी के दोस्त रामानंद सिंह, जो भाई-जैसा स्नेह देते हैं, 'रामलीला' की भूमिका के बँटवारे को लेकर चिंतित हैं। रामलीला में राम की भूमिका 'नान्ह' जाति के लड़के नहीं कर सकते। "बबनवा, रामनवला, धनी और शिवहरखा-चार नाम आए। इनमें एक कोइरी, एक कुर्मी, एक दुसाध और एक राजपूत। नान्ह जातियों के लड़कों को रामानंद सिंह ने एक स्वर में खारिज कर दिया।" (पृष्ठ 50) यह है उस समाज की सच्चाई, जहाँ कलाकार भिखारी का उदय होता है। जबकि रामानंद सिंह बाकी 'बबुआन' से उदार हैं। तब भी उनकी मानसिक स्थिति ऐसी है। आखिर जिस समाज में रामानंद सिंह जैसे लोगों की मानसिक बुनावट ऐसी बनती है; उस समाज की, शेष बबुआन की, सामाजिक स्थिति की कल्पना की जा सकती है।

रामलीला के बाद भिखारी ठाकुर नाच शुरू करते हैं। वे तत्कालीन नाच मंडलियों से इत्तफ़ाक नहीं रखते हैं। वे अलग किस्म की नाच मंडली शुरू करना चाहते हैं। यहाँ भिखारी की नाच मंडली के उद्देश्य का पता चलता है।

"हम दूसरे ढंग की नाच चाहते हैं जिसमें रस-रंग तो हो लेकिन मरजाद न टूटे।"

"ऐसा कैसे होगा कि नाचो भी और घुँघटा भी बना रहे?" (पृष्ठ-62)

भिखारी अपने नाच को 'तमाशा' कहते हैं। अपने नए तमाशे के लिए खुद रचनाएँ करते हैं। नाच शुरू करने पर गाँव के लोग ताना मारते हैं। पिता भी नाराज होते हैं। दलसिंगार ठाकुर अपनी 'मरजाद' के भय से नाच का विरोध करते हैं। समाज में इन कलाकारों को कई स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। स्वयं भिखारी तीन स्तरों पर आजीवन संघर्ष करते रहे। जीने के लिए आर्थिक परेशानी के स्तर पर, कला के स्तर पर; तथा तीसरा, सामाजिक समानता के स्तर पर। भिखारी की कला दलसिंगार ठाकुर को पसंद नहीं है। वजह स्पष्ट है, समाज में इन कलाकारों की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। दलसिंगार ठाकुर भिखारी को 'बिगड़ा' मानते हैं और अपनी पत्नी को कोसते हैं - "अभी तो हम बोल रहे हैं, कल पूरा समाज बोलेगा, लड़का-लड़की का बियाह-शादी रुक जाएगा, तब पता चलेगा।"

"जब कोई पूछेगा कि लड़की का बाप का करता है तो हम का कहेंगे कि नचनिया है?" (पृष्ठ-63)

भिखारी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते हैं। संघर्ष का ज़रिया है कला। लेकिन यहाँ तो कला की ही प्रतिष्ठा नहीं थी। कला की प्रतिष्ठा स्थापित करने की कोशिश में भिखारी नई नाच मंडली बनाते हैं। नाच में होने वाली कहानियों के बरअक्स सामाजिक समस्याओं को केंद्र में रखकर नई-नई कथा रचते हैं।

गाँव में जाति-व्यवस्था के पायदान पर चाहे कोई कहीं हो, अगर वह नाच में चला गया तो उसका एक अलग पायदान, सबसे नीचे, माना जाता था। "नचनियों, बजनियों और अछूतों की अलग पाँत बैठती थी। पहले बाभनों की पाँत बैठी दुआर पर, फिर साफ़-सफ़ाई छिड़काव के बाद राजपूतों की, उसके बाद दूसरी जातियों की। इसी के साथ मूल पाँत से काफ़ी दूर हट-हटाकर

पशुओं की सार के बदबू देते कीचड़ के बगल नचनियों, बजनियों, अछूतों की पाँत बैठाई होगी।" (पृष्ठ 121) समाज में जो स्थान तथाकथित अछूतों का था, वही स्थान इन कलाकारों का भी था।

संजीव के भिखारी ठाकुर अपनी 'जाति-अस्मिता' को लेकर चिंतित हैं। भिखारी के 'तमाशा' की लोकप्रियता काफ़ी बढ़ गई। लोग 'बेटी-वियोग' को 'बेटी-बेचवा' और 'बहरा-बहार' को 'बिदेसिया' नाम से जानने लगे। 'तमाशे' से आगे बढ़कर यह किस्सा बन गया, फिर 'गाथा'। 'बिदेसिया' एक शैली बन गई। भिखारी का 'बेटी-वियोग' देखकर अनेक लड़कियों ने बूढ़े दूल्हे से शादी करने से इनकार करना शुरू किया। उस समाज में भिखारी के गीत "अगुआ के पूत मरे, बभना के पोथी जरे" लोकप्रिय हुए। पैसा लेकर पिता की उम्र के दूल्हे से बेटी की शादी करने वाले बड़े (!) लोगों को इससे विरोध था। कई जगह काफ़ी परेशानी हुई, नाच-मंडली को। यहीं भिखारी प्रदत्त परंपरा से टकराते हैं।

यह देखना वाजिब होगा कि नवजागरण के उस दौर में भिखारी ठाकुर जैसे व्यक्ति जो अँग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से पूरी तरह वंचित हैं, उनका महत्व क्या है? साथ ही, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से वंचित, इस लोक कलाकार की सीमाएँ क्या थीं? भिखारी ठाकुर का उद्देश्य नवजागरण लाना सीधे तौर पर भले ही न रहा हो, लेकिन उनकी रचनाओं एवं नाच में, जिन सवालों का ज़िक्र है, वे नवजागरण से जुड़ते हैं। छुआछूत का सवाल, स्त्रियों की पराधीनता का सवाल - नवजागरण के केंद्र में रहे हैं।

महेंद्र मिसिर, फेकू सिंह से मिलने पर जो चर्चा होती है, वह भिखारी को अपनी अस्मिता के प्रति सचेत करती है। भिखारी को "अचरज हुआ, यहाँ किसी ने भी 'बेटी-वियोग' या 'बहरा-बहार' की चर्चा न की। बात राजों, रजवाड़ों, कांग्रेस और ऊँची जाति के नामी वीर पुरुषों तक महदूद रही। इस गौरवशाली परंपरा में खुद को कहीं से भी जोड़ नहीं पा रहे थे भिखारी। उनके

मन में बार-बार एक सवाल उठ रहा था, "इनमें नाई कहाँ है, नाई की बात तो दूर - दूसरी नान्ह जाति के लोग ही कहाँ हैं?" (पृष्ठ 127) यह है संजीव रचित भिखारी की चिंता। यह महज भिखारी की चिंता नहीं, बल्कि हाशिए के लोगों के पूरे समूह की चिंता है।

भिखारी लोकप्रिय होते हैं। बाद में सम्मान भी पाते हैं लेकिन उनके गाँव के लोग उन्हें बार-बार 'टहलुआ' होने का अहसास कराते हैं। नान्ह जात का बोध कराते हैं। यही वजह है कि वे कथित बड़े लोगों को केंद्र बनाकर कुछ नहीं लिखते। अंततः भिखारी की यश-प्रतिष्ठा उन्हें 'टहलुअई' से मुक्ति दिलाती है। भिखारी अपनी प्रतिभा के बल पर, प्रदत्त परंपरा को अस्वीकार कर, अपनी कला को स्थापित करते हैं। आज भिखारी ठाकुर पर भोजपुरी भाषी जनता को विशेष रूप से गर्व है। उसी भिखारी को कितनी पीड़ा पहुँचाई गाँव-समाज के लोगों ने, 'सूत्रधार' इसका साक्ष्य है। उन्नीसवीं सदी के भारतीय गाँवों में व्याप्त व्यभिचार, भेद-भाव, आन्तरिक-उपनिवेश एवं शोषणमूलक व्यवस्था का दस्तावेज है - 'सूत्रधार'। 'सूत्रधार' में न सिर्फ़ भिखरिया से रायबहादुर भिखारी ठाकुर के जीवन-संघर्ष को समझा जा सकता है, अपितु तत्कालीन भारतीय गाँवों की जटिलताओं को भी देखा-परखा जा सकता है।

यह है संजीव के भिखारी ठाकुर का पक्ष वाया 'सूत्रधार'। 'सूत्रधार' संजीव का सृजन है, लिहाजा 'सूत्रधार' में चित्रित भिखारी ठाकुर संजीव की अंतर्दृष्टि और कलात्मकता के परिणाम हैं।

सूत्रधार की समस्याएँ : संजीव ने भिखारी ठाकुर के इस 'जीवनीपरक उपन्यास' के बहाने, जीवनीपरक उपन्यास के बारे में जो धारणा ज़ाहिर की है, वह एक कसौटी है 'सूत्रधार' के मूल्यांकन की। संजीव ने बताया है एक जीवनी लिखना जीवनीपरक उपन्यास लिखने की तुलना में सरल होता है क्योंकि इसमें परस्पर विरोधी दावों के तथ्यों का उल्लेख कर छुट्टी पाया जा सकता

है। जबकि जीवनीपरक उपन्यास में औपन्यासिक प्रवाह बनाते हुए मुहाने तक पहुँचाना ही पड़ता है, यहाँ द्वंद्व और दुविधा की कोई गुंजाइश नहीं है। दो, उपन्यास लेखन भी जीवनीपरक उपन्यास लेखन की अपेक्षा सरल होता है, क्योंकि यहाँ भी तथ्यों से बँधकर नहीं रहना पड़ता।

'सूत्रधार' के खास संदर्भ में संजीव ने जो बताया है, उस पर आने से पहले संजीव की उपरोक्त दोनों धारणाओं की बाबत कहना ज़रूरी है कि; अव्वल तो यह है कि 'जीवनी में परस्पर विरोधी दावों के तथ्यों का उल्लेख कर छुट्टी नहीं पाया जाता। जो जीवनीकार ऐसा करता है, उसकी कृति दोयम दर्जे का जीवनी-साहित्य साबित होती है। ऐसी कृतियाँ श्रेष्ठ जीवनियों के तौर पर शुमार नहीं होंती। कहना न होगा कि जीवनीकार को भी अपने जीवनी-नायक की जीवनी रचने के वास्ते एक परिप्रेक्ष्य निर्मित करना होता है और उसी परिप्रेक्ष्य में अपने नायक के चरित्र का विकास दिखाना होता है। यह भी दिखाना होता है कि उस खास परिप्रेक्ष्य में जीवनी नायक का चरित्रगत विकास सकारात्मक है या ह्रासात्मक। उल्लेखनीय यह भी है कि जिस जीवनी में 'परस्पर विरोधी दावों के तथ्यों का उल्लेख कर छुट्टी' पा लिया गया होता है, वह कृति जीवनी का तथ्य व स्रोत-संग्रह मात्र होती है, जीवनी-साहित्य नहीं। अमृत राय लिखित प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' उत्कृष्ट जीवनी-साहित्य का प्रमाण है; जबकि प्रेमचंद के जीवन से संबंधित परस्पर विरोधी दावों के तथ्यों का उल्लेख करने वाले मदन गोपाल की कृति 'कलम का मजदूर' वह दर्जा नहीं पाती, जो 'कलम का सिपाही' को हासिल है।

संजीव का यह नज़रिया भी सच्चाई से कोसों दूर है कि जीवनीपरक उपन्यास में 'औपन्यासिक प्रवाह' बनाते हुए किसी मुहाने तक पहुँचना ही पड़ता है, यहाँ द्वंद्व और दुविधा की कोई गुँजाइश नहीं होती; जबकि जीवनी में ऐसा नहीं है। असलियत तो यह है कि जीवनी में भी रचनाकार को किसी मुहाने तक पहुँचना ही पड़ता है। बगैर किसी मुहाने तक पहुँचे, कोई भी

कृति न तो तार्किक परिणति पा सकती है और न ही कलात्मक परिणति। हाँ, भले ही जीवन में 'औपन्यासिक' प्रवाह न हो पर 'प्रवाह' तो वहाँ भी रचना होता है। रही बात द्वंद्व और दुविधा की - संजीव के मुताबिक जीवनीपरक उपन्यास में जिसकी कोई गुंजाइश नहीं होती - तो कहना होगा कि द्वंद्व और दुविधा कमज़ोरी नहीं अपितु चुनौती होती है। द्वंद्व और दुविधा कृति की श्रेष्ठता का एक पक्ष भी होती है। देखना होता है कि कृतिकार ने द्वंद्व और दुविधा कितनी रचनात्मकता के साथ, कृति में रचाया-बसाया है।

दो, बकौल संजीव, उपन्यास-लेखन भी जीवनीपरक उपन्यास लेखन की अपेक्षा सरल होता है, क्योंकि यहाँ भी तथ्यों से बँधकर नहीं रहना पड़ता। अव्वल तो यह है कि उपन्यास में, जीवनीपरक उपन्यास के नायक के जीवन से संबद्ध ऐतिहासिक तथ्य भले नहीं होता, परंतु यहाँ भी उस उपन्यास का अपना तथ्य तो होता ही है। भले ही इस तथ्य की रचना उपन्यासकार अपने विवेक, दृष्टिकोण और कला-कौशल के ज़रिए करता हो। उपन्यासकार इस 'तथ्य' को कलात्मकता की मार्फ़त विश्वसनीय और तार्किक दिखने लायक संरचना गढ़ता है। उपन्यास की संरचना और अंतर्वस्तु दोनों मिलकर एक तथ्य ही निर्मित करते हैं, भले ही भिन्न प्रकार के; और गरचे वे 'ऐतिहासिक तथ्य' न होते हों।

इसलिए ज़ोर देकर कहा जा रहा है कि संजीव की, जीवनी की बाबत धारणा, न तो तार्किक है और न वाजिब ही। बहरहाल, 'सूत्रधार' का मूल्यांकन करें तो कहना होगा कि भोजपुरी इलाके के सांस्कृतिक नायक भिखारी ठाकुर के जीवन के बारे में मौजूद तथ्य, किस्से और किंवदंतियों के बारे में शोध कर, उपन्यासकार ने जो औपन्यासिक तथ्य सृजित किया है, वह खालिस संजीव का है। इस 'तथ्य' की रचना में संजीव का दृष्टिकोण हावी है, न कि भिखारी ठाकुर का जीवन। इस आलेख के पहले हिस्से में, अर्ज किया जा चुका है कि अतीत के किसी भी देश-

काल की रचना फोटोग्राफर द्वारा ली गई तस्वीर सरीखी नहीं होती, बल्कि यह चित्रकार द्वारा निर्मित चित्र जैसा होता है। इसलिए महत्वपूर्ण यह देखना होता है कि कलाकार ने चित्र बनाने के लिए किन-किन रंगों का सहारा लिया है। 'सूत्रधार' में भिखारी ठाकुर का जीवन रचने के लिए संजीव ने जो रंग भरा है, उस पर समकालीन अस्मितावादी विमर्श का गहरा असर दिखता है। लिहाजा यह कहना होगा कि 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर का देश-काल बहुत हद तक विश्वसनीय होने के बावजूद इसके नायक, भिखारी ठाकुर, के चरित्र का विकास जिस दिशा में दिखाया गया है, वह संजीव की वैचारिक दृष्टि का परिणाम है। इसमें निहित संजीव का वैचारिक नज़रिया पिछले दशकों में, विकसित दलित-पिछड़ी जातियों के आंदोलन के आलोक में निर्मित हुआ है।

भोजपुरी भाषी इलाके के सांस्कृतिक, नवजागरण के अग्रदूत भिखारी ठाकुर की शख्सियत को संजीव ने दलित-पिछड़ी जातियों का प्रतीक-पुरुष बनाने की कोशिश की है। संजीव के इस कलात्मक प्रयास से 'दलित-पिछड़ी राजनीति को एक मजबूत प्रतीक तो मिल गया परंतु भिखारी ठाकुर का व्यापक दाय और उनकी बहुमुखी शख्सियत का दायरा सिमट गया।

इस लिहाज से, संजीव का सूत्रधार सफल भी है और असफल भी। सफल इस अर्थ में, कि जिस राजनीतिक इरादे और अस्मितापरक विमर्शों का 'सूत्रधार' संजीव ने रचा है, उससे दलित-पिछड़ी जाति-अस्मिता के लिए एक 'सांस्कृतिक' प्रतीक की सर्जनात्मक-औपन्यासिक निर्मिति सामने आई है। प्रतीक-निर्माण के इस दौर में, अलग-अलग क्षेत्रों में सक्रिय रहे पुरखों को कतर-ब्योंत कर, काट-छाँट कर, अपने-अपने वैचारिक नज़रिए के उपयुक्त सृजित करने की परंपरा पल्लवित पुष्पित हो रही है। इस प्रक्रिया में पुरखों के देश-काल और चरित्र को, अपने वैचारिक-विमर्श के औचित्य के अनुकूल गढ़ा जा रहा है। जाहिर है इतिहास के उस दौर और पूर्वज के व्यक्तित्व का जो पहलू, ऐसे रचनाकारों के वैचारिक दृष्टिकोण के लिहाज से

'पॉलिटिकली करेक्ट' और वर्तमान के अनुकूल नहीं होते, उसे या तो नज़रअंदाज किया जाता है अथवा ऐसे कील-काँटों को खराद कर, रुचिकर बनाने की हिकमत की जाती है। अलबत्ता संजीव एक मँजे हुए रचनाकार हैं, लिहाजा उनकी कलात्मकता 'सूत्रधार' को विश्वसनीय मनवाने की सफ़ल कोशिश करती है। इस मायने में 'सूत्रधार' सफ़ल कृति है।

यह उपन्यास असफ़ल इस अर्थ में है कि एक ऐसा व्यक्ति, जिसने व्यक्तिगत संघर्ष के ज़रिए, अपनी कला को स्थापित किया, लोगों के बीच स्वीकृति पाई और परिणामस्वरूप उस ज़माने में, भोजपुरी भाषियों का सांस्कृतिक अगुआ बना - उसकी शख्सियत को संजीव ने महदूद करने की रचनात्मक कोशिश की है। दरअसल, संजीव की अवधारणात्मक समझ - कि उपन्यास में द्वंद्व और दुविधा की गुंजाइश नहीं होती - का नतीजा है कि इन्होंने भिखारी ठाकुर के बहुस्तरीय और बहुआयामी संघर्ष को एकस्तरीय और एकायामी बनाकर बेहद सँकरा कर दिया है। यह संजीव की तंगनजरी का प्रमाण है और परिणाम भी।

भिखारी ठाकुर के सर्जनात्मक संघर्ष का नतीजा है कि नाच शुरू करने से पहले जिन द्विज लोगों की नज़र से वे महज 'नाई' हैं; नाच प्रतिष्ठित होने के बाद वे महज 'नाई' नहीं रहते। नाच यानी कला की स्वीकृति और प्रतिष्ठा के पश्चात भिखारी ठाकुर भी स्वीकृत होते हैं और प्रतिष्ठित भी। सोचने लायक बात है कि अपने सबाल्टर्न स्वर की अभिव्यक्ति के साथ भिखारी ठाकुर ने अपनी कलात्मकता को विस्तारित किया था, उसका दर्शक क्या सिर्फ़ कथित पिछड़ी और दलित जमात के लोग थे। भिखारी ठाकुर के गाँव-जवार की अगर सभी द्विज आबादी, भिखारी और नाच दोनों के विरुद्ध ही होती तो; न तो द्विज जाति से आने वाले कलाकार उनकी मंडली में शामिल होते और न ही द्विज दर्शक मिलते। सवाल यह भी उठता है कि भिखारी ठाकुर के नाच की लोकप्रियता दूर-दराज के इलाके तक फैली, तो क्या इसमें सिर्फ गैर द्विज स्वीकृति

ही थी? अलबत्ता ध्यान देने लायक तथ्य यह भी है कि भिखारी ठाकुर के 'नाच' में जो गीत गाए जाते थे वे उनके दर्शकों के ज़रिए - क्योंकि कैसेट उद्योग का आविर्भाव नहीं हुआ था - मुँहा-मुँही प्रचारित-प्रसारित हो गए थे। भिखारी के ये गीत पर्याप्त लोकप्रिय भी हो गए थे। संजीव के 'सूत्रधार' में भी इसकी कुछ बानगी मिलती है। स्त्रियाँ शादी-विवाह के मौके पर 'गाली गाते' में, इन गीतों को भी गाती थीं। 'बभना के पोथी जरे' गीत सिर्फ़ गैर द्विज जाति तक सीमित नहीं थे। अलबत्ता ये द्विज जाति - (ब्राह्मण जाति में भी) - में भी गाए जाते थे। भिखारी के ऐसे गीत ब्राह्मण जाति की शादी में भी महिलाएँ गाती थीं, इससे जटिल प्रत्यय निर्मित होता है। संजीव के यहाँ ऐसी असुविधाजनक जटिलताएँ सिरे से गायब है। भिखारी की कला में जिन मूल्यों का विरोध था, उन मूल्यों में रचे-बसे लोग भी उनके दर्शक और श्रोता बन गए; रूपांतरण की ऐसी तमाम जटिल प्रक्रिया संजीव के 'सूत्रधार' में अन सुलझी-अनखुली रह जाती है।

संजीव ने उस दौर के तनावों को बेहद सतह से समझा है। संजीव के 'शोध' की यह सीमा है और समस्या भी। दरअसल 'शोध' का मतलब महज तथ्यों को जमा करना नहीं होता। भिखारी ठाकुर ने जिस तरकीब से उस दौर के तनावों में अपना 'नाच' स्थापित किया था, उसमें एक अहम बात थी - भिखारी ठाकुर के नाच में अभिव्यक्त आवाज़ और उनके व्यक्तित्व की फाँक। उनके नाच में जिन समस्याओं को अभिव्यक्ति मिलती थी और इस अभिव्यक्ति में जो पक्ष लिए जाते थे, इसमें वे जिस तरीके से प्रतिपक्ष रचते थे; इसके रचयिता भिखारी का व्यवहार अपने विपक्ष के प्रति वैसा ही नहीं रहता था, जैसा 'नाच' के दरम्यान होता था। भिखारी की कला और उनके व्यक्तित्व की फाँक उनकी खूबसूरती है। इसे समझाने के लिए दूसरे शब्दों में कहें, भिखारी ठाकुर के नाच में अभिव्यक्त स्वर, ज्यादातर, पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान कर उसका अहसास कराने, प्रतिपक्ष रचने का सुंदर रचनात्मक प्रयास था। व्यथा की कलात्मक अभिव्यक्ति एक बड़ी वजह

थी कि दर्शक उसमें रस-विभोर होकर, इस तरह शामिल हो जाते थे कि खुद उस पीड़ा का पक्ष बन; उसके 'अन्य' का मजाक उड़ाने लगते थे। यह भिखारी की कला का अनोखापन था कि दर्शक सिर्फ आनंद लेने वाले, मनोरंजन ग्रहण करने वाले नहीं रह जाते थे। यहीं दर्शक का व्यक्तित्वांतरण होता था, भले ही अल्पकालीन। भिखारी का नाच दर्शक के चित्त, मानस और काल में अपनी जगह कायम करता था। यह खालिस भिखारी का अनूठापन था। संजीव अपनी सृजनात्मकता की परिधि में, इस अनूठेपन को समेटने में असफल रहे हैं।

प्रश्न उठता है, संजीव की असफलता की वजहें क्या-क्या हैं? संजीव-सरीखा दृष्टि संपन्न रचनाकार कैसे चूक गया है? संजीव ने भोजपुरी इलाके में घूम-घूमकर भिखारी ठाकुर के जीवन के बारे में 'सारा लोहा' जुटा लिया, परंतु अपनी 'धार' देने, भिखारी ठाकुर के जीवन से इस उपन्यास में 'सान' चढ़ाने में, सफल क्यों नहीं हो पाए? भिखारी ठाकुर के जीवन पर संजीव ने कहानी नहीं लिखी है, उपन्यास रचा है; इसलिए यह तर्क भी नहीं दिया जा सकता कि कहानी के कलेवर में सारे आयाम गुंफित नहीं हो पाए हैं। संजीव ने 'सूत्रधार' में जो औपन्यासिक वितान खड़ा किया है, उसमें भिखारी ठाकुर के अनोखेपन के तमाम आयाम सहेजे जा सकते थे, जो 'सूत्रधार' में नहीं हो सका। इसके कारण क्या हैं? 'सूत्रधार' में अनुस्यूत प्रसंगों का ज़िक्र कर, इस कारण के बारे में नतीजा निकाला जाएगा। ये दोनों प्रसंग 'सूत्रधार', भिखारी ठाकुर के जीवनारंभ से लिए जा रहे हैं; क्योंकि शुरुआती कोण विकास की दिशा का संकेत बखूबी दे देते हैं।

पहला प्रसंग है, बालक भिखारी का नामकरण। बकौल संजीव, "यूँ तो कितने अच्छे-अच्छे नाम हैं, लेकिन वे बड़ी जात वालों को शोभते हैं, फिर नाम पर कौन सिर खपाता।" संजीव ने यहाँ दो मुद्दे रचे हैं । एक, अच्छे-अच्छे नाम तो हैं, परंतु वे बड़ी जाति वालों को शोभा देते हैं। दो, नामकरण पर सिर कौन खपाता? यहाँ कथाकार ने जिन दो पहलुओं को उभारा है, उसमें से

पहला पहलू उपन्यास के विकास का दिशा-सूचक है। नाम की सामाजिकता के अनेक आयाम, इसमें गुम हो गए हैं। इस बाबत संजीव के पहले 'तथ्य' पर विश्वास करें तो भिखारी ठाकुर के माता-पिता के नाम के साथ इस तथ्य और तर्क की संगति कैसे बैठाई जाएगी? भिखारी के माता-पिता तो भिखारी से एक-पीढ़ी पहले के हैं; लिहाजा और पीछे के वक्त में, शिवकली देवी और दलसिंगार ठाकुर के नाम साबित करते हैं कि अच्छे नाम सिर्फ बड़ी जाति वालों को ही नहीं शोभते? दलसिंगार ठाकुर और शिवकली देवी, दोनों भिन्न-भिन्न परिवार में पैदा हुए थे और उस दौर के लिहाज से, दोनों के नाम, तथाकथित निम्न जाति में पैदा होने के बावजूद शोभा देते हैं। तो आगामी बीस-तीस साल में समाज आगे जाने के बजाय क्या पीछे चला गया? क्या जाति की कट्टरता लचीली होने के बजाय दृढ़ हो गई, कि दलसिंगार ठाकुर-शिवकली देवी दंपति को बच्चे का नाम भिखारी रखना पड़ा। दरअसल उस दौर के नामकरण की इतनी सरल और सपाट निर्मिति संजीव ने 'सूत्रधार' में 'धार' देने के लिए की है, जो उस देश-काल की अधूरी समझ का परिणाम है अथवा समकालीन अस्मितापरक विमर्श के लिहाज से उस दौर में अनुकूल ज़मीन बनाने की कवायद।

इसमें कई दफ़े यह भी दिखता है कि 'सिर खपाकर' ही, शिशु के परिवार वाले, भिखारी-सरीखा नाम रखते हैं; इस नामकरण में कथित ऊँची और निम्न जाति की बंदिश और दीवार कम नहीं करती। ऐसे मामलों में, मान्यताएँ और लोक-विश्वास, द्विज-गैर द्विज, सवर्ण-अवर्ण सबको अपनी जद में रखते हैं।

इसीलिए इतिहास के उस दौर के जब भिखारी ठाकुर पैदा हुए थे, समाज की समझ रखने वाला कोई व्यक्ति संजीव की इस समझ से इत्तेफ़ाक नहीं रख सकता।

दूसरा प्रसंग है, यज्ञ का। संजीव ने 'सूत्रधार' में दिखाया है कि गाँव में एक यज्ञ हो रहा था। किशोर भिखारी के 'गौर-वर्ण', 'सुंदर व्यक्तित्व' को देखकर पुरोहित ने इन्हें ब्राह्मण-पुत्र समझ लिया और यज्ञ के लिए अल्पना बनाने का आदेश दिया। अल्पना बनाने लगे भिखारी, तभी एक दूसरे पुरोहित का आगमन हुआ। इस पुरोहित ने भिखारी को अल्पना बनाते देख, इनके बारे में पूछा। बकौल संजीव, इस पुरोहित की "आवाज में इतनी घृणा थी कि भिखारी के हाथ-पाँव ठंडे हो गए, कलेजा काँपने लगा?" यह पुरोहित भिखारी को पहचानता था। जिस पंडित ने भिखारी को अल्पना बनाने के लिए कहा था, उससे कहा कि 'आपको ब्राह्मण नहीं भेटाया, जो नाई के लड़के से जग्गशाला भरस्ट करवा रहे है।" इसके बाद पुरोहित ने गंगा-जल से यज्ञशाला 'शुद्ध' करवाया।

यह प्रसंग, कथाकार संजीव के शोध और इस शोध से अर्जित ज्ञान दोनों पर, सवाल खड़ा करने के लिए प्रेरित करता है। अव्वल तो यह है कि नाई जाति 'अछूत' कभी नहीं रही। पूजा-पाठ, यज्ञ या कोई भी धार्मिक प्रयोजन हो, नाई हमेशा पुरोहित का सहयोगी रहा है। बगैर नाई के, कई विधान तो संपूर्ण नहीं माने जाते। नाई की मौजूदगी अनेक मौके पर, ब्राह्मण की तरह शुभ मानी जाती रही है। यज्ञ के दरम्यान पुरोहित मंत्रोच्चारण करता है और उसके अनुरूप नाई यजमान से तमाम विधियों का पालन करवाता है।

काबिले गौर यह भी है कि यज्ञ-प्रयोजन या पूजा-विधान में निर्मित संरचना में ब्राह्मण के साथ नाई को, प्रदत्त पहचान के आधार पर ही, वैधता हासिल है। इस वैधता के कारण, यज्ञ में ब्राह्मण के साथ-साथ नाई की समान भागीदारी होती है और यज्ञ से प्राप्त दान-दक्षिण में हिस्सेदारी भी। अलबत्ता इस हिस्सेदारी में पुरोहित का अनुपात ज़्यादा होता है और नाई का कम; पर शेयरिंग दोनों की होती है। यजमान के लिए तो पुरोहित और नाई, दोनों दक्षिणा ऐंठने वाले होते हैं।

कथाकार संजीव ने नाई की भागीदारी और हिस्सेदारी दोनों को भुलाने के साथ-साथ, नाई को 'अछूत' तक बना दिया है।

असल में, संजीव की यह भूल नहीं है; सायास सृजन है। ऐसे ही औपन्यासिक तथ्यों की रचना संजीव ने 'सूत्रधार' में की है। इसका पता चलता है एक दूसरे प्रसंग से। संजीव ने 'सूत्रधार' में एक स्कूल का चित्रण किया है, जहाँ शिक्षक और अन्य विद्यार्थी भिखारी को 'टहलुआ' समझते हैं। बालक भिखारी अपने दोस्त घुलटेन दुसाध से कहते हैं - "नान्ह जाति के अलग से पाठशाला होखे के चाहीं।" इस पर इनके दोस्त का जवाब है, "ओकरा में पंडीजी ना, नान्हे जाति के मास्टर।"

'सूत्रधार' में संजीव ने यज्ञ वाले प्रसंग में जो सायास 'ऐतिहासिक भूल' की है, उसकी वजह यही है।

इस उपन्यास की मार्फ़त संजीव ने पिछड़ी और दलित जातियों को मिलाकर एक पहचान बनाने की कोशिश की है। यह पहचान है - नान्ह जाति। संजीव ने 'नान्ह जाति' की कैटेगरी को विस्तृत और मजबूत बनाने के लिए इसमें तथ्यात्मक कलाकारी की है। मजेदार यह है कि हिंदू समाज में जिन जातियों के साथ छुआछूत बरतने का घिनौना चलन कायम था, उनके साथ संजीव ने नाई जाति को भी मिला दिया है। यह है, सूत्रधार की दिशा। इस नए गठबंधन के लिए संजीव ने एक भाषा के नायक-शख्सियत का चरित्र इस रूप में गढ़ा है कि वे महज 'नान्ह' जाति के प्रतीक पुरुष की मूर्ति में सिमट जाएँ।

'सूत्रधार' शीर्षक कई अर्थों को व्यंजित करता है। अनेक मायने समाहित हैं इस शब्द में। भिखारी ठाकुर के चरित्र को अगर सही दिशा में संजीव रचते तो वे तमाम अर्थ व्यंजित भी होते 'सूत्रधार' में। परंतु यह विडंबना है कि एक महत्वपूर्ण कथाकार ने सांस्कृतिक नवजागरण के एक

देसी 'सूत्रधार' को सीमित बना दिया है। इसलिए कहना होगा कि अपने राजनीतिक एजेंडे में संजीव सफ़ल हुए हैं, पर 'सूत्रधार' असफ़ल हो गया है।

सूत्रधार के पूर्व प्रकाशित उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में कथाकार संजीव ने भारतीय समाज की जटिलता को चित्रित करने की दिशा में कुछ कदम बढ़ाया था। यह कहने का आधार यह है कि इस उपन्यास से पहले संजीव 'वर्ग-संघर्ष' की अपनी समझ से परिचालित होते रहे हैं, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में उन्होंने वर्ग के साथ-साथ भारतीय समाज की सच्चाई, जाति के रिश्ते की जटिलता को चित्रित कर दो कदम आगे बढ़ाया था। कहना होगा कि 'सूत्रधार' में संजीव चार कदम पीछे चले गए। बावजूद इसके 'सूत्रधार' में संजीव की किस्सागोई उनके पूर्ववर्ती उपन्यास से आगे गई है। यही उनका हासिल है। इस परिपक्व किस्सागोई के साथ संजीव ने भिखारी ठाकुर के चरित्र को इकहरा नहीं बनाया होता, उस दौर की जटिलताओं, तनावों, द्वंद्व और दुविधा को भी इस उपन्यास में बुना होता तो 'सूत्रधार' हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में शुमार हो जाता।

संपर्क :

राजीव रंजन गिरि

हिंदी विभाग

राजधानी कॉलेज

(दिल्ली विश्व विद्यालय)

राजा गार्डन, नई दिल्ली 110015

****

15

दलित संघर्ष और संगठन की राजनीति

डॉ.सुमा.एस

"प्रेम हमारी प्राथमिकता नहीं है । संघर्ष हमारी मूल भावना है। दलितों ने कभी प्रेम नहीं किया। उन्होंने संघर्ष और आंदोलन से प्रेम किया है। हमें प्रेम के बजाय अस्मिता महत्व की लगती है।"

भारत के दलित साहित्य का मसीहा श्री शरण कुमार लिम्बाले के शब्द हैं ये । दलितों के समर संघर्ष और संताप इन शब्दों में मुखरित है । कुलीन साहित्य ध्वजा के शासनकाल के दौरान अपने स्वयं के जीवन के संघर्ष और अनुभवों का खुलासा करके दलित साहित्य का ध्वजा फहराकर साहित्य क्षेत्र में आये थे शरण कुमार लिम्बाले । हाशिये कृत दलित और दलित जीवन को तथा उपेक्षा से लकवाग्रस्त दलित साहित्य को मुख्यधारा में लाने का श्रेय शरणकुमार लिम्बाले को ही है । उनका साहित्य मुख्यधारा के लेखकों की साहित्यिक अवधारणाओं को अस्वीकार करता है । लिम्बाले के अनुसार मुख्यधारा के साहित्यकार दलितों के जीवन को , उनके संघर्षों को अपनी रचनाओं में व्यक्त नहीं कर सकते ,क्योंकि दलित ही दलितों की वेदना जान सकते हैं .समझ सकते हैं । क्योंकि दलितों की रचना आंसू और धीरज की रचना है । यह कुलीन साहित्यकारों की समझ में नहीं आयेगा । मुख्यधारा का साहित्य सौन्दर्य का साहित्य है । पर दलित साहित्य संघर्ष का साहित्य है ,इसलिए उनका काम सुन्दरता का नहीं है ।

शरणकुमार लिम्बाले द्वारा मराठी में लिखित 'उपाल्य' शीषक उपन्यास का हिंदी रूपांतर है 'नरवानर '। डा.बाबा साहब आंबेडकर की मृत्यु के बाद दलितों में हुए भ्रम और दलित संगठनों में आये बदलाव , अन्य राजनैतिक दलों ने कैसे दलितों का शोषण किया , उनके खोखले वादों में बेचारे दलित लोग कैसे फंस गए और कैसे दलित आन्दोलनों में विभाजन हो गया इन सारी बातों पर यह उपन्यास प्रकाश डालता है । सत्ता में आते ही सभी राजनैतिक दल अपने मूल्यों को भूल जाते हैं , उनके सभी प्रकार अधिकार धन पर ही निर्भर है, नेताओं को सत्ता में आने का एक साधन मात्र है दलित आदि इस उपन्यास के विषय बन जाते हैं । कुछ ने संगठन पर कब्जा पाने की कोशिश की । दूसरों ने एक और संगठन बनाया ।

दलितों ने रिपब्लिकन एकता ,भूमी का हड़पना और मराठवाडा विश्व विद्यालय का नाम बदलना जैसे मुद्दों पर आन्दोलन किया । कई दंगे हुए । नेताओं ने दलितों का समर्थन हासिल करने के लिए आंबेडकर की तस्वीर का इस्तेमाल किया । संगठन जिस चीज़ के लिए बनाया गया था उससे भटककर संगठन कुछ और ही बन गया । सचमुच यह उपन्यास दलित पैंथर आन्दोलन और दलित आन्दोलन के इतिहास को सामने लाता है । उपन्यास की शुरुआत एक सनातन ब्राह्मण युवक की कहानी से होती है जिसे एक छात्रावास के कमरे में दलितों के साथ रहना पड़ता है । एक पतिव्रता स्त्री किस तरह अपने बदचलन पति को द्वार खोल देती है उसी तरह ब्राह्मण अनिरुद्ध अपने सह छात्रों के लिए कमरा खोल देता है । अनिरुद्ध के विचार में निम्न जाति के लोगों के साथ एक कमरे में रहना एक ब्राह्मण के लिए सज़ा के बराबर है । धर्म के अनुसार एक ब्राह्मण को दलित के साथ एक कमरे में रहना नहीं चाहिए । फिर भी मैं रह रहा हूँ । शायद यही लोक तंत्र है । अनिरुद्ध की चिंताएं इस तरह जाती हैं । हालाँकि गरीबी और जीवन संघर्ष के मामले में अनिरुद्ध और अन्य दलित छात्रों की हालत बराबर है ,फिर भी अनिरुद्ध

के विचार में दलित छात्रों के साथ एक कमरे में रहना अपने ब्राह्मण वाद पर कलंक है । धार्मिक ग्रंथों के अनुसार ब्राह्मण और दलित जातियों के बीच सम्बन्ध नहीं होना चाहिए । फिर भी यह धोखा क्यों ? अनिरुद्ध खुद से पूछता है ।

भारतीय लोग सदियों पुराने जातिगत भेद भाव से आज भी बाहर नहीं आये हैं । भारतीय परिवारों में बच्चों को सबसे पहले अपनी जाति और धर्म पर गर्व करना सिखाते हैं । उपन्यास में उस सनातन दलित युवक की विधवा बहन से एक दलित कवि शादी करता है । उसके पुरोहित पिता को इस रिश्ते को स्वीकार करने में वर्षों लग जाते है । सभी जाति चेतना से परे एक मनुष्य को पहले मनुष्यता से युक्त होना है ,इस बात पर लेखक ज़ोर देते हैं भले ही हम इसे अक्सर भूल जाते हैं ।

दलित जो वर्षों से कांग्रेस पार्टी के वोट बैंक रहे हैं 'दलित पैंथर' नामक एक संगठन के माध्यम से अपनी पहचान प्राप्त करने लगे । दलित युवा मोर्चा,रिपब्लिकन यूथ ,बाबा साहेब स्टूडेंट्स एसोसिएशन जैसे छोटे दल और भी थे । लेकिन इनमें से किसी भी संगठन का एकीकृत रूप नहीं था । इसलिए ही दलितों की समस्याओं को सरकार के सामने लाया नहीं जा सका । दलित पैंथर एक ऐसा संगठन था जिसने उन्हें एक नया जीवन दिया । इस संगठन ने दलितों को गाँवों में मौजूद नस्लीय उत्पीडन ,बहिष्कार और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित किया । राज्य और पुलीस हमेशा ऊंची जातियों के साथ रहे हैं । उन्होंने दलितों के विरोध को बेरहमी से दबाने की कोशिश की । प्रदर्शनकारियों पर गोलीबारी की । दलितों की ह्त्या की गयी ,कई दलित कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके जेलों में बंद कर दिया गया । उनका लक्ष्य था कि दलितों को कभी भी ,किसी भी कीमत पर विरोध और रैली करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए । भारतीय सवर्ण जाति व्यवस्था ने कभी भी दलितों की पहचान की भावना को स्वीकार

नहीं किया । समाज ने फैसला कर रखा था कि उन्हें हमेशा बाहर ही रखना चाहिए । समाज की इसी मानसिकता के कारण विश्वविद्यालय के एक दलित प्रोफेसर को इस्तीफा देना पड़ता है और दलित लेखन को मुख्य धारा के साहित्य श्रेणी में स्थान नहीं दिया जाता है ।

राजनैतिक नेता दलितों से सत्ता का वादा करते हैं और चुनाव में लड़ने के लिए सीट भी देते हैं ,पर उन्हें वे ही सीटें देते हैं जहाँ उनकी पराजय पहले से तय हो । हमारी विधान सभाओं और लोक सभा में दलितों की संख्या में जो गिरावट है वह इसी कारण है । सत्ता हमेशा उच्च वर्ग की होती है और दलितों का सत्ता में आना सवर्ण मानसिकता वालों के लिए बर्दाश्त के बाहर है।

अनिरुद्ध का मानना है कि यह एक सुन्दर दृष्टिकोण है कि ब्राह्मण को ज्ञान देना चाहिए ,क्षत्रियों को शासन करना चाहिए ,वैश्यों को व्यापार करना चाहिए और शूद्रों को उपर्युक्त तीनों की सेवा करनी चाहिए । अगर दलित गाँव भर सफाई नहीं करेगा तो गाँव की गन्दगी कैसे हटेगी ? मरे हुए जानवरों के शव को कौन दफ़ायेगा ? रईसों के घर की लकड़ी कौन काटेगा ? उन्हें काम करने के लिए पैसे भी तो देते हैं ,फिर काम करने से मुकर क्यों जाते हैं ? यही अनिरुद्ध जैसे लोगों की सवर्ण मानसिकता है । उपन्यास में अनिरुद्ध भारतीय कुलीन मानसिकता का प्रतिनिधि मात्र हैं । उसकी दृष्टि में जाति व्यवस्था सबकी भलाई के लिए बनी है । इश्वर ने ही जाति व्यवस्था की सृष्टि की है । इस तरह की धार्मिक मान्यताओं और मिथकों के आधार पर वे सदियों से दलितों पर अत्याचार करते रहे । वे कहते रहते हैं कि दलितों द्वारा अनुभव की गयी यह दासता और भेदभाव भगवान का निर्णय है । इस तरह यहाँ धर्म ,सत्ता और राजनीति हमेशा ऊंचे जातिवालों के आधिपत्य के साथ रहे हैं । चुनावों के दौरान ही राजनीतिक नेता दलितों की याद करते हैं ।

दलितों के संगठित होने से सभी राजनैनिक नेता डरते थे । सवर्णों की यही कहना है कि जो कुछ लाभ हम उन्हें देते हैं उन्हें लेकर उन्हें चुप रहना चाहिए ,सत्ता या अधिकार जगहों पर

उन्हें लाना बेवकूफी है । इस विचार के विरोध में जैसे-जैसे दलित एक जुट होते हैं ,प्रत्येक राजनैतिक दल उन्हें विभाजित करने और नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं । इसी कोशिश में दलित पैंथर लोगों के विरोध का दमन और नेताओं की गोली चलाकर हत्या उपन्यास में चित्रित है । कांग्रेस द्वारा दी गयी सीट पर जीतकर एक दलित रोहिताश्व मंत्री बन तो जाता है , पर सवर्णों से भरे मंत्री सभा में दलितों के लिए कुछ भी करने में वह असमर्थ रह जाता है । एक तो ऊंचे जातिवाले उनके मार्ग में रोड़ा अटकाते हैं तो दूसरी ओर दलित आन्दोलन के कुछ कार्यकर्ता सोचते हैं कि उनमें से एक को सत्ता मिली तो इसी आड़ में थोड़ा पैसा कमा सकता है और सुख से रह सकते हैं । इस तरह के प्रतिलोमकारी लोगों को संगठन न पसंद करता है या संगठन से निष्कासित करते हैं तो वे अलग संगठन में जा मिलते हैं या एक अलग संगठन बना लेता है । एक साथ खड़े होकर संघर्ष करने के बजाय दलित विभिन्न संगठनों और दलों में बिखर जाते हैं और इस तरह मुख्य लक्ष्य से दूर हो जाते हैं । इस विभाजन का फ़ायदा उठाते हैं मुख्य राजनैतिक नेता जो कभी भी दलितों की नहीं चाहते ।

'नर वानर' दलितों के संघर्ष और अस्तित्व की कहानी है । इसमें यह दिखाया गया है कि कैसे अम्बेडकर के दर्शन ने दलितों को नयी आशा और स्वत्व की भावना दी । लेख़क बताते हैं कि दलितों को उस स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है जो उन्हें तब प्राप्त होती है जब वे सरकार द्वारा प्रदत्त आरक्षण द्वारा सरकारी नौकरी प्राप्त करते हैं । इससे परे उन्हें अपने स्वत्व में मज़बूती से खड़े होकर इंसान के रूप में जीने का अधिकार चाहिए । एक दलित चाहे वह शिक्षित हो या कोइ अधिकारी या चुनाव जीतकर मंत्री बन गया हो ,वह अपने उस दलितत्व से छुटकारा नहीं पा सकता है जो समाज ने उन्हें प्रदान कर दिया है । इसलिए दलितों को एक ऐसी राजनीति की आवश्यकता है जो सभी प्रकार के शोषण से बच सके और असमानताओं के खिलाफ एक

साथ लड़ सके । चातुर वर्ण्य पर आधारित 'गीता' और 'महाभारत' उनके लिए मान्य नहीं । शम्बूक की हत्या का वर्णन करनेवाला रामायण दलितों के लिए कैसे पवित्र रह सकते हैं । संस्कृत देववाणी है । पर शूद्र को संस्कृत पढ़ने का अधिकार नहीं । मनुस्मृति में कहा गया है संस्कृत का या वेदों का अध्ययन करनेवाले शूद्रों के कान में सीसा पिघलाकर डालना चाहिए । इसके बावजूद उन्हीं धर्म ग्रंथों में लिखा गया है कि मानव सब सामान है । ऐसे विरोधाभासी धार्मिक ग्रंथों की पूजा हम दलित कैसे करें ? उपन्यासकार पूछते हैं । इसलिए दलितों को एक नया मिथक बनाना होगा ।

नर वानर समाज की मुख्यधारा से अस्वीकृत लोगों को एक नयी पहचान देने का रचनात्मक विद्रोह है जिसमें लेख़क को पूरी सफलता मिली है । यह अम्बेडकर की लोक तंत्र भावना ,समानता और स्वतन्त्रता के दृष्टिकोण से समर्थित है । भाषा को हथियार बनाकर उपन्यासकार ने दलितों के अधिकारों की वक़ालत की है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

नरवानर : शरणकुमार लिम्बाले

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : शरणकुमार लिम्बाले

डॉ.सुमा.एस

सह आचार्य ,हिंदी विभाग

सरकारी महिला महा विद्यालय

तिरुवनंतपुरम

****

16

वैश्विक स्तर पर स्त्री की भूमिका : 'दस द्वारे का पिंजरे ' के संदर्भ में

डॉ सुधा . ए . एस

वैश्वीकरण के कारण यह कहते हैं कि सारी पृथ्वी एक गाँव में बदल गई है । लेकिन इसमें स्त्री की नियति किस कदर त्रासद हुई है इसका गहराई से अनुसन्धान होना अभी बाकी है। लगता है इस पूंजीवाद माहौल में स्त्री अपनी अधीनस्थता से कभी मुक्त नहीं हो पाएगी । मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्रियां पढ़ -लिखकर सरकारी गैर-सरकारी नौकरियों में तेज़ी से अपना स्थान बना रही हैं। स्त्री - पुरुष के बीच विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में भेदभाव का होना, स्त्रियों का कार्यस्थल में यौन - उत्पीड़न, यौनपरक विज्ञापनों का प्रदर्शन, घरेलू हिंसा, बलात्कार आदि की घटनाओं का बढ़ना, गरीब और असहाय होती स्त्रियों की संख्या में वृद्धि आदि यह साबित करता है कि नव उदारवादी व्यवस्था दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों के साथ-साथ स्त्रियों के लिए भी अहितकारी है। ऐसी स्थिति में यह ज़रूरी लगता है कि ज़मीनी स्तर के ज्ञान को आधार बनाकर नारीवादियों को शोध और विश्लेषण में लग जाना चाहिए। क्योंकि भारत जैसे विकासशील देशों की स्त्रियों को न केवल पितृसत्तात्मक सामाजिक वर्जनाओं का प्रतिरोध करना पड़ रहा है बल्कि पश्चिम की वर्चस्वकारी प्रौद्योगिकी के दबाव से जूझना पड़ रहा है। इसलिए नारीवादियों को यही मान्यता होनी चाहिए कि बाज़ार केन्द्रित पश्चिमी प्रौद्योगिकी द्वारा

समस्या का समाधान खोज निकालने की बजाय स्त्री को उसी प्रौद्योगिकी को अपनाना चाहिए जो प्रकृति व पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित कर सके ।

मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है नारी जीवन । इसके बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण है। आदि से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य में नारी जीवन का चित्रण किया गया है। समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य भारतीय जीवन और परिवेश की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गया है। वह अपने समय का ईमानदार प्रतिबिंब है। इसकी अनेकानेक विशेषताओं में एक विशेषता है आज के नारी-जीवन की नानाविध विसंगतियों का चित्रण। "स्वीकार करना होगा कि हिन्दी के वर्तमान औपन्यासिक परिदृश्य की समृद्धि में इधर की कथा लेखिकाओं का महत्वपूर्ण अवदान है। औपन्यासिक विषय वस्तु की नवीनता के साथ नए कथा - मुहावरे की तलाश का यह रचनात्मक परिदृश्य अत्यन्त उम्मीद- भरा व आश्वस्तकारी है। " (उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता - वीरेन्द्र यादव - पृ 196) स्त्रियों का घर-परिवार को संभालना, राजनीति और बाहरी कार्यों से दूर रहना आदि पुरुष द्वारा तय किया हुआ था । इसलिए स्त्रियों के लेखन - कार्य को अहमियत नहीं दी गई। " विश्व चाहे कितना कर ले, फिर भी स्त्री के प्रति एक आम धारणा यह बनी हुई कि, उसका संसार, उसकी दुनिया, घर-परिवार रिश्तेनातों को पकड़कर बैठने में ही है। उसकी रचनात्मकता का संसार बहुत छोटा है ।" (समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना - सं : डॉ. वी के अब्दुल जलील - पृ . 108) फिर भी पिछले कुछ दशकों से लेखिकाओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने कैरियर के तौर पर लेखन - कार्य को चुना है। इसी कारण संभवतः स्त्री - लेखन विपुल मात्रा में सामने आ रहा है। स्त्रियों ने समझ लिया है कि इस पर पुरुषों का एकाधिपत्य नहीं है। इस दृष्टि से जो हिदी लेखिकाएँ विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं उनमें एक नाम अनामिका जी का है। अनामिकाजी की यही विशेषता

है कि वे अपने रचनात्मक जीवन के प्रारंभ से ही नारी जीवन की समस्याओं के प्रति संवेदनशील रही हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनि अनामिका की साहित्य सृष्टि व्यापक तथा सारगर्भित है। उन्होंने कम समय में ही अपने उपन्यासों द्वारा हिन्दी जगत् को समृद्ध - किया है। उपन्यासो की संख्या बहुत कम है। 'दस द्वारे का पिंजरा ' , ' अवान्तर कथा ', 'तिनका तिनके पास ' और 'आईनासाज ' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कविता के ज़रिए स्त्री विमर्श में हस्तक्षेप करने वाली लेखिका अपने उपन्यासों में भी स्त्री को केन्द्र में रखकर स्त्री और पुरुष की आपसी संबद्धता और परस्पर तनाव को कलात्मक तरीके से सृजन करती है। पात्रों की स्वाभाविकता, पाठकों के निकट उनके स्वभाव की प्रामाणिकता, मानवीय पक्ष, जीवतंता, सहृदयता,संवेदनशीलता, कई भूले-बिसरे शब्दों और वाक्य खंडों से सजाई गयी सुन्दर भाषा आदि के द्वारा उनके उपन्यासों ने आज की स्त्री की भूमिका, वह भी वैश्विक स्तर पर निभाने की कोशिश की है।

अनामिका का अनुभव संसार व्यापक है। उनकी रचनाओं में कहीं न कहीं वात्सल्य है, क्रोध है और आक्रोश भी है। एक करुणामयी संवेदनशील स्त्री के नजरिए से अपने समय तथा समाज को देखती है और उसकी विडंबनाओं के निरपेक्षता से नहीं बल्कि गहरी संबद्धता के साथ अभिव्यक्त करती है। अनामिका के नए उपन्यास 'आईनासाज ' की समीक्षा में सुनीता गुप्ता लिखती है " अनामिका के यहाँ प्रतिरोध की वह मुखर प्रतिध्वनि नहीं मिलती जो स्त्री-विमर्श की पहचान है। स्त्री के साथ वे उस पुरुष मन को भी साधती है जिसे पितृसत्ता के बारीक रेशों ने बना है।" (https.//. www.shabdankan.com) जीवन केवल कुंठाओं, विकृतियों तथा ऊब का नाम नहीं है। समग्र और सम्यक् दृष्टि से जीवन को देखना ही कलाकार की विशेषता होती है । इसलिए अनामिका जी ने अपनी रचनाओं में भारतीय नारी-जीवन के यथार्थ चित्रण कर लिया

है। वह यथार्थ भारतीय संदर्भ में होने पर भी वैश्विक धरातल पर परंपराओं के टूटने और आधुनिकीकरण के दबाव से उत्पन्न मूल्यों के संघर्ष का है।

सन् 2008 में प्रकाशित उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा ' दो परिच्छेदों की एक महागाथा है । नारी अस्मिता के विभिन्न धरातलों की पड़ताल करते यह उपन्यास भारतीय समाज में स्त्री-प्रश्न का कॉलेज सा रचने दीखते हैं। अपने नारी पात्र रमाबाई , ढेलाबाई, काननबाला, तारा, अवंतिका, की जीवन गाथा के समानांतर चलती एक प्रवाहमान धारा है उनका नारी विमर्श । इनमें दो नायिकाएँ पंडिता रमाबाई और ढेलाबाई की आत्मीय कथा के ज़रिए अनामिका जी ने भारतीय समाज का एक ऐसा तत्कालीन परिदृश्य बुना है जिसमें आधुनिकता के प्रभाव से परंपरा का पुन: संस्कार करने की प्रक्रिया चलती दिखाई देती है। संस्कृति के इस पुल पर सफर करने वाले कई ऐतिहासिक पात्र होते हैं- स्वामी दयानंद, फेनी पावर्स, मैक्समूलर, महादेव रानाडे, केशवचन्द्र सेन, ज्योतिबा फुले, भिखारी ठाकुर और महेंद्र मिसिर । इन ऐतिहासिक और लोक प्रसिद्ध हस्तियों को शामिल करके लेखिका इस उपन्यास में पाठकों के लिए कई अविस्मरणीय मुहूर्त प्रदान करती है।

'दस द्वारे का पिंजरा ' की कथा में अदम्य जिजीविषा की संभावनाओं खुले आकाश की टूटन और अन्वेषण है जो तमाम तरह के मोहभंग से गुजर कर , तमाम विघटन के बावजूद प्रश्नों , सपनों और मिथ की अलग व्याख्या की गयी है। पंडिता रमाबाई की कथा और इस कथा के साथ तत्कालीन इतिहास की यात्रा और इस यात्रा के साथ भारतीय समाज के सुधार काल के प्रश्नों , समाधानों की पुनः पड़ताल , जाति, धर्म, स्त्री -पुरुष रिश्तों का विमर्श ,ब्रिटिश और अमेरिकी संस्कृति , उस संस्कृति के साथ आधुनिकता का आगमन एवं आक्रमण है ' दस द्वारे का पिंजरा ' । पंडित अनन्त शास्त्री डांगे की पुत्री है रमाबाई । अनन्त शास्त्री का पूरा परिवार

विद्या का उपासक है। लेकिन जीवन के सामान्य सुख उनके लिए नहीं होते। पंडित शास्त्री का शिष्य अनाम कुल गोत्र सदाव्रत, रमाबाई का बाल सखा , फिर जीवन सखा और जीवन बन जाता है। रमाबाई की जीवन यात्रा के पड़ावों पर कई तरह के लोग आते जाते हैं । सदाव्रत के देहान्त के बाद रमाबाई को जीवन ने सिखा दिया है कि "सार - सार को गहि लियो । थोथा - देई उडाय - मैं भी मन सूप की तरह फटकदार रखना चाहती हूँ। इसलिए मुझे कोई व्यक्ति या देवता हर तरह से आदर्श नहीं दिखता ।" (दस द्वारे का पिंजरा - पृ 46) अपने जीवनानुभव से उसने समझ लिया है कि अन्योन्याश्रयता ही प्रेम है। क्योंकि विदुषी पंडिता रमाबाई को जीवन साथी के रूप में सदाव्रत मिले थे। " सदुरुषों की समस्या यही है कि हर सदपुरुष अपनी स्त्री का भगवान बनना चाहता है- निरपेक्ष भाग्य -विधाता और औरतों का भी मुख्य दोष थे ही है । खुद अपना दीपक होने बदले वे चाँद हो जाना चाहती हैं । आयातित प्रकाश में उष्मा कहाँ? (वही - पृ-57)

और एक नारी पात्र है फैनी पावर्स । उसके उबड़ - खाबड़ जीवन में कई पुरुष आए गए और ठहरे भी है और यौन शुचिता के उनको अपना मापदंड भी है। रमाबाई सोचती है कि इस विषय पर बोलने की वे सचमुच अधिकारिणी है। स्त्री पुरुष संबंध के बारे में फैनी ने रमाबाई को यह सार दिया है - "स्त्री - पुरुष संबंध इस पुरुष शासित समाज में खूबसूरत ढंग से तब ही निभा सकते हैं जब दोनों के बीच भौतिकता हावी न हो, न देह की, न पैसे की ।" (वही : पृ - 87) जीवन उठा - पटक ने रमाबाई को ये ही सिखाया था कि यौन शुचिता किसी के चरित्र का इतना भी बड़ा पक्ष नहीं होती कि पूरे चरित्र की ऊँचाई का एकमात्र मानक बने। रमाबाई के साथ कई लोग जुडते हैं , उनके दुख सुख के साथ भी खड़े होते हैं। एक खास तरह की अगाघता उनमें होती है, दानव नहीं होते, वे लेकिन कमज़ोर तो होते हैं। कुछ लोगों में इस तरह की कमज़ोरी नहीं होती पर वे काफी शुष्क स्वार्थों और दुष्ट हो सकते हैं। रमाबाई मानती है कि "आनुषांगिक प्रेम प्रीती

की मध्यवर्तो धारा को समृद्ध ही करते हैं ' शायद ' । " (वही : पृ - 92) यह 'शायद ' क्यों ? क्योंकि जीवन ऐसे स्थापित प्रेमियों पर नहीं चलता है। जीवन के बारे में तो केवल एक बात ही निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि वहाँ कुछ भी निश्चित नहीं है। स्त्री - पुरुष संबंधों में अवसान मूलक विषाद तभी घुलता है जब पुरुष पहल पर उतारू हो जाता है । रमाबाई ने यह पहल कई रंगों में देखा ठेला है। अकेली औरत विदुषी और सुन्दरी रमाबाई के लिए कोई दोस्त बनने को प्रस्तुत नहीं था । प्रेमी तो तीन बुलाने पर तेरह आने की स्थिति में है। "स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में स्त्री -पुरुष के दैहिक रिश्तों की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि देह को झुठलाया नहीं जा सकता । परन्तु स्त्री - पुरुष के संबंध में देह से परे एक और रिश्ता होता है वह है स्नेह और आत्मीयता का जो सभी पति - पत्नियों में नहीं होता । " (समकालीन हिन्दी उपन्यास : समय और संवेदना - सः डाॅ . वी . के . अब्दुल जलील , पृ - 110) इस संदर्भ में अनामिका जी का कथन है " कामांधता एक तरह की रतौंधी है । देह का प्रत्याशी प्रेम तो सचमुच कपूर है। " (पृ - 59) आदि वक्तव बीच बीच में देकर लेखिका यह स्थापित करती है कि ये सब कोई स्थापित मापदंड , मानदंड नहीं विशुद्ध 'आंखिन देखी 'अनुभव है । इसलिए फैनी रमाबाई से कहती है "तुम्हारी मिट्टी अलग है- तुम कुछ बडा करने आई हो धरती पर, इसी वक्त सारी दुनिया एक नई करवट ले रही है और उसे स्त्री दृष्टि की जरूरत है । " (पृ - 88)

बुद्ध का कथन इस प्रकार है कि "कोई बात इसलिए न मानो कि वह किताबों में लिखी है । " इसके दो हज़ार वर्ष बाद कबीर ने 'आंखिन देखी यथार्थ ' सुनाया । इस वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भी भोगे यथार्थ की अनवरत यात्रा ज़ारी है । इसलिए रमाबाई को सम्यक आदर्श की तलाश है । वह मुक्ति की मंजिल के लिए धर्म के रास्ते की तलाश करती है। इधर उधर चलकर उसकी आत्मा किसी नये धर्म की व्यास में भटक रही थी। अनामिका जी के शब्दों में " अपने

वर्तमान स्वरूप में हिंदुत्व स्त्री विरोधी था। ब्रह्म समाज की जडे अभी गहरे नहीं गई थी , वह आदमी की बनाई मशीन सा लगता था। मुक्ति की मशीन ! सब धर्मों का यांत्रिक सार । " (पृ - 64)

आध्यात्मिक मूल्यों का संस्थान धर्म में है तो उसकी नयी समस्याएँ उभर आती हैं , ठीक उसी प्रकार प्रेम जैसी सात्विक वृत्ति का संस्थान 'विवाह ' के रूप में होने पर वह शासन - प्रशासन की क्रूर राजनीति और रण नीति से घिरने लगता है। इसलिए रमाबाई नई औरत के मन को समझने वाले युवकों की टोली खडा करना चाहती है। क्योंकि "मुक्ति तो दो पहियों वाली सवार है । स्त्रियों के साथ नये पुरुष के भी मन का क्षितिज विस्तृत करना ही होगा। " (पृ - 115) अपनी विशिष्टता से परे खड़े होकर ही बेसहारा स्त्री रमाबाई बीज रूप में असंख्य रमाबाई यों के लिए सोच पाई । इस सोच की परिणति थी शारदा सदन । वहाँ रमाबाई ढेलाबाई से मिलकर उनके मुक्ति मिशन का सदस्य बनती है। ये दोनों मिलकर स्त्री - मुक्ति आंदोलन के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर अपना जीवन सार्थक बनाती हैं।

दूसरी नायिका ढेलाबाई पिंजरे में कैद थी, उसकी जिंदगी भी अभिशप्त थी । क्योंकि वह वेश्या-पुत्री और अनपढ़ थी भोजपुरी भाषा के विद्वान , गीतकार , संगीतकार महेंद्र मिश्र ढेलाबाई के कोठे पर गीत गाते थे। वह ढेलाबाई से विवाह करना चाहता था। ढेलाबाई भी महेन्द्र मिश्र को चाहती थी। लेकिन बाबू हलवंत सहाय को ढेलाबाई अच्छी लगती थी । महेन्द्र मिश्र मेले से ढेलाबाई को अगवा कर हलवंत सहाय को सौंप देता है। वह न चाहते हुए भी हलवंत के साथ रहने के लिए मजबूर हो जाती है। घर की चारदीवारी के नारकीय जीवन जीना पड़ता है। रात - दिन अंग्रेज अफसरों के सामने नाच - गाना करना पड़ता था। पति के सामने ही अंग्रेज़ अफसर ढेलाबाई के साथ अश्लील हरकतें दिखाने पर पति खुश हो जाता था। एक बार ढेलाबाई अपने

दर्द का बयान करती है " मिश्रा जी मेरी स्थिति ज़रा भी नहीं बदली, जो मैं पहले थी, अब भी हूँ। रण्डी के बेटी जिसे कोई कुछ भी कह सकता है , जिसके साथ कभी भी, किसी भी समय दरवाज़ा धकिया कर घुस कर सकता है भीतर । सामने पान की दुकान है। कोई खण्डर की दीवार से पूछकर तो पीक नहीं फेंकता उस पर । मैं हूँ वह दीवार । हर रण्डी वही दीवार है कोठे पर हो चाहे कोठी में ।" (पृ - 206) . उसके शब्दों में स्त्री-मुक्ति की छटपटाहट है। " मैं जो पहली थी अभी वो ही हूँ । पहले भी मुजरा करती थी, अब भी करती हूँ । फर्क सिर्फ इतना है कि रुपया मेरे हाथ में आता था , अब मुख्तार साहब के हाथ में आता है। पहले पाँव में बस घुँघरू थे , अब मोटी जंजीरें भी है , पाबंदियों की । यहाँ मत जाओ, वहाँ मत जाओ, इससे मत बोलो , उससे मत बोलो। ये करो , वो मत करो , सुनते सुनते मेरे दिमाग की नसें तड़कने लगी है। " (पृ - 206) वह स्वयं को एक जिन्दा लाश समझती है।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों का लेखा जोखा दो नायिकाएँ रमाबाई और ढेलाबाई के माध्यम से लेखिका स्त्री मुक्ति के लिए समाज में परिवर्तन चाहती है। ये नायिकाएं सनातनी कुलीनता की चौखट को तोड़ कर अपनी जगह बनाने की कोशिश करती है। बाल विधवाओं , युवा परित्यकताओं , वृद्ध वेश्याओं , उपेक्षित स्त्रियों को सहारा देकर उन्हें शिक्षित करके आत्मनिर्भर बनाने की शक्ति देकर वे अपना जीवन सार्थक बनाती हैं। दस द्वारे का पिंजरा कबीर से लिया गया है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्म इन्द्रियां मिलकर शरीर के दस द्वार बनते हैं जिसमें आत्मा बसती है । अर्थात स्त्री की मुक्ति केवल बुद्धि या हृदय की मुक्ति नहीं होती, बल्कि तमाम इन्द्रियों की मुक्ति भी होती है । देह भी बंधन में है उससे मुक्ति ही पूर्ण मुक्ति है।

"अकेली रहने वाली औरतों के अकेलेपन से परे साथ रहते हुए अकेलेपन भोगने वाली निर्वासित औरतों का समूह अपनी इयत्ता के प्रश्न पर अपने दरवाजे की साँकल बंद कर लेता है। आखिरी सीढ़ी तक पहुंचकर फिर मध्य में खड़े होने की त्रासदी । देख लिया कि अस्मिता, इयत्ता के प्रश्नों के हल कितने उलझे हुए हैं, सीख लिया कि नैसर्गिक संवेदनाओं, पीड़ाओं को परफेक्शन की चादर से ढक कर सुखी संतुष्ट दिखना जिन्दा रह पाने की शर्त बन चुकी है। असंख्य बीज रूप रमाबाई, ढेलाबाई, तारा को अपने से स्त्री मन को समझने वाले गुइयाँ की तलाश है ।" (सृजन संवाद - अंक 9, अप्रैल 2009 , पृ: 119) यह सुख की तलाश है । लेकिन यह सुख न फ्रायडीय न कामाध्यात्म । यह सुख संपूर्ण विशुद्ध मानवता का सुख है। यह सुख पाने का एकमात्र रास्ता दूसरे के दुख को बांटना है। स्त्री या पुरुष हर मानव को सही करना चाहिए ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 .उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता - वीरेन्द्र यादव

2 .नये आयामों को तलाशती नारी - सं : दिनेश नन्दिनी डालमिया

3 .समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना - सं : डॉ . वी . के अब्दुल जलील

4 .सृजन संवाद 21 वीं सदी - अंक 9 अप्रैल 2009

डॉ . सुधा . ए . एस

एसोसिएट प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग,

यूनिवर्सिटी कॉलेज,

तिरुवनन्तपुरम ।

****

17

वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन

डॉ. एस. सुनिल कुमार

अनिताराणी .आर

भारतीय समाज में नारी को देवी, अर्धांगिनी, सहधर्मिणी, गृहलक्ष्मी,आदि विशेषणों से सज्ञित किया है । भारतीय समाज में पत्नी का बड़ा ही आदर्श चित्र खींचा गया है और उच्च आसन पर बिठाया गया है । उसे पूज्य भी माना गया है। अधिकार विहीन जीवन जीने को बाध्य नारी शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण का शिकार बनी रही ।पुरुषों का एकाधिकार होने से स्त्री पुरुषों की अधीनता और अत्याचार को झेलने के लिए विवश हुई है। परंपरागत रूढ़ियों के तहत नारी का शोषण अनवरत रहा । संयुक्त परिवार, अशिक्षा, दहेज, बाल - विवाह एवं अन्य वैवाहिक कुरीतियों ने नारी जीवन को अत्यधिक कष्टमय बना दिया है ।

वीरेंद्र जैन के अपन्यासों में नारी जीवन की विविध समस्याओं को चित्रित किया है । उनके उपन्यास में पति – प्रेम वंचित नारी, नौकरी पेशा नारी, अत्याचार पीडित नारी, समाज सुधारक नारी, आदर्शवादी नारी, रीति रिवाज़ और रूढीवादी– परंपरावादी नारी, आदि की समस्याओं को प्रस्तुत की गयी है ।

समाज के विकास के लिए नारी और पुरुष दोनों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । नारी पुरुष के जीवन को माँ, बहन, पत्नी, कन्या के रूप में परिपूर्ण करती हैं । हिन्दी के विद्वान महेंद्र कुमार जैन कहने हैं कि, - " आज के नए युग में मनुष्य के सामने जितने आर्थिक, राजनैतिक

एवं सामाजिक उलझन भरे प्रश्न हैं कि, आज के इस नए युग में स्त्री का समाज में कौन – सा स्थान रहेगा ? वर्तमान अर्थ – युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि नारी की आर्थिक स्वावलंबन है।आज नारी आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा रहना पसंद करती है। " ।समाज में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है । आधुनिक युवा साहित्यकारों ने आज की नारी की सामाजिक स्थिति और मनसिकता को बड़ी गहराई से चित्रित किया है । उनमें से एक वीरेंद्र जैन भी हैं । वीरेंद्र जैन ने अपने साहित्य में पुरुषों से अधिक नारी जीवन को गहराई से चित्रित किया है। नारी जीवन के विविध पहलुओं को उन्होंने यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

(महेंन्द्र कुमार जैन - 'हिन्दी उपन्यासों में पारिवारक चित्रण ' , पृ . सं . 3)

पति-प्रेम से वंचित नारी : इस स्थिति को दिखाते हुए पुरुषों को विशेषकर पति-वृत्ति को दोषी ठहराया है। पुरुष जान- बूझकर अपनी पत्नी को प्रेम तथा शरीर सुख से वंचित रखता है। इस अन्यायपूर्ण बात को उजागर करते समय नारी मर्यादाओं का उल्लंघन भी करती है। विवेच्य साहित्य में ऐसे अनेक अदाहरणों से जैन जी ने पुरुषी वृत्ति को यथार्थ रूप से चित्रित किया है । ' सुरेखा पर्व ' उपन्यास में सुरेखा जीजी को पति – प्रेम से वंचित रहना पड़ता है। सुरेखा जीजी को बचपन से ही अनाथाश्रम में रहना पड़ा था। सुरेखा की शादी एक समाज सुधारक के बेटे के साथ होती है। कुछ दिनों तक दोनों का दांपत्य जीवन सुखी रहता है। फिर उसमें तनाव आ जाता है। इस स्थिति का चित्रण करते हुए वीरेंद्र जैन लिखते हैं – " उसका मिज़ाज़ तो एक साल पहले ही जब सुरेखा जीजी माँ बनने बाली थी तभी से बदल गया था । दुर्भाग्यवश बच्ची मरी पैदा हुई भी और कुछ समय के लिए सब ढंग ठीक चल निकला , पर जब वे फिर गर्भवती हुई तो उसका मिज़ाज़ फिर गर्म रहने लगा । सुरेखा जीजी का ख्याल है कि उनका पति जिम्मेदारी से बचना

चाहता था , इसलिए वह पलायन कर गया "1 । सुरेखा जीजी का पति उसे अकेला छोड़कर भाग जाता है फिर वह अनाथाश्रम में आती है। उसे पति — प्रेम से वंचित होकर ही रहना पड़ता है ।

नौकरी पेशा नारी : स्वाधीन भारत की नारी अब अपना सारा समय घर का चूल्हा फूँकने में ही व्यतीत नहीं करना चाहती है बल्कि स्वावलंबन को अपनाकर पुरुषों के संग नौकरी के हर क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में सफल होना चाहती है । भौतिक सुखों की लालसा या समाज में विशिष्ट पद प्राप्ति के लिए नारी स्वयं को प्रेरित होने लगी है । शिक्षा के कारण वह खाली समय का महत्व समझने लगी और घरेलू कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेने लगी है। 'अनातीत ' उपन्यास की नायिका सुमी नौकरीपेशा नारी है। वह एक स्कूल में अध्यापिका की नौकरी करती है। शादी के एक साल बाद उसके पति एक दुर्घटना में मर जाते हैं। वह विधवा होकर भी अपने बच्चे के भविष्य के प्रति आबद्ध होकर नौकरी करती है। रोहिणी नामक एक युवती भी नायक के दफ़्तर में क्लर्क की नौकरी करती है। सुमी को सांत्वना देते हुए कहती है कि ," सुमी इतना भी क्या निराशा होना , आखिर तुम्हारी इस निराश से कुछ हासिल तो नहीं होगा । उल्टे यह समय और भारी भले हो जाए । फिर तुम अध्यापिका हो , तुम्हें तो बच्चों को लुभाना है " । 2 नारी को सशक्त करने के उपादानों में प्रमुख है शिक्षा , जिससे वह अपने आस- पास के यथार्थ से ही नहीं विश्व भर की वास्तविकताओं से अच्छी तरह परिचित हो सकती है। शिक्षित नारी के लिए अगला कदम नौकरी पाना और स्वावलंबी होना है । वह नौकरी के क्षेत्र में प्रवेश करके आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को साकार पाने के लिए कठिन परिश्रम शुरू करती है । वह धन कमाने लगती है। पहले नारी का शोषण घर में होता रहा तो अब नौकरी के क्षेत्र में , स्त्री पक्ष रचनाकारों ने इस यथार्थ को अपने-अपने ढंग से उकेरने का कार्य किया है ।

अत्याचार से पीडित नारी : वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में चित्रित नारियाँ यातना और पीड़ा का दर्द सहते – सहते असहाय होती जा रही हैं । उसे समाज द्वारा सास – ससुर या पति के द्वारा भी अपमानित होना पड़ता है। फिर भी वह अन्याय को चुपचाप सह लेती है। इस असहाय तथा पीडित नारी की स्थिति का चित्रण वीरेंद्र जैन ने अपने विवेच्य साहित्य में यथार्थ रूप में किया है। 'प्रतिदान 'उपन्यास में नायक नरेन है ।उनके ससुरालवालों से दहेज के रूप में कुछ न मिलने के कारण प्रभा से सास कहती है , " बहू , नरेन तो आलू नहीं खाता था । क्या तूने सिखा दिया ? यह तो बड़ी गलत बात है , बहू , भला हम लोग ' उभक्ष ' कैसे खा सकते हैं ? ऐसा कर , मसूर की दाल तो होगी घर में , वही बना दे । "1

वीरेंद्र जैन ने ' तीन अतीत ' में अत्याचार पीड़ित नारी का यथार्थ चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

आदर्शवादी नारी : 'तीन अतीत ' में वीरेंद्र जैन ने विवेच्य साहित्य के मूल्य – स्थापना करने वाली आदर्शवादी नारी पात्रों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है । जैन जी ने स्वाधीनता के पचास साल भी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने अनेक उपन्यासों में आदर्शवादी नारी पात्रों को चित्रित किया है।

'प्रतिदान 'उपन्यास की नायिका प्रभा अपने व्यवहार से आदर्श प्रस्तुत करती है। प्रभा नौकरीपेशा सुशिक्षित नारी है। वह अपने देवर और ननद को अपने साथ शहर ले आकर उनकी पढ़ाई पूरी करवाती है। इस समय नरेन ने प्रभा की ओर देखा , वह अपने चेहरे पर गंभीरता लाकर बोली " हॉ , इनकी ज़रूरत रहेगी हमें अब , तब तक , जब तक मनीष अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता और प्रगल्भा की डोली हम अपने घर से विदा नहीं कर देते । 2 प्रभा देवर की शिक्षा और ननद की शादी करवाने के लिए अपनी संतान को जन्म देने से इंकार करती है।

प्रभाअपने व्यवहार से समाज में आदर्श स्थापित करती है। इस प्रकार आदर्शवादी नारी के विविध रूपों का वीरेंद्र जैन के साहित्य में गहराई से चित्रित किया है ।

समाज सुधारक नारी : नारी जीवन में शिक्षा से बदलाव आ रहा है, लेकिन लगता है — बदलाव की प्रक्रिया अभी-अभी शुरु हुई हैऔर निरंतर चलती रहेगी । इसी बदलाव के लिए महत्मा गाँधी जैसे नेताओं का आदर्श लेकर हिन्दी उपन्यासकार अपने-अपने उपन्यासों में पात्रों का निर्मण करते आ रहे हैं। गाँधीजी की ग्राम- सुधार योजना की आज भी आवश्यकता महसूस होती है। इसी को ध्यान में रखकर वीरेंद्र जैन जी स्वाधीनता के पचास साल भी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने अनेक उपन्यासों में समाज सुधारक नारी प्रभा जैसी अनेक नारी पात्रों को 'तीन अतीत ' में चित्रित किया है।

वीरेंद्र जैन के ' प्रतिदान ' उपन्यास की नायिका प्रभा अपने व्यवहार से आदर्श प्रस्तुत करती है। प्रभा नौकरी पेशा सुशिक्षित नारी है। वह अपने देवर और ननद को अपने साथ शहर ले आकर उनकी पढ़ाई पूरी करवाती है । इस अवसर पर अम्मा ने बताया , " बेटा , तुम्हारे पिताजी ने बहू की इच्छा पर उन्हें यहाँ भेजा है। अब से तीनों यहीं रहकर पढ़ेंगे। प्रगल्भा बहू के काम में थोड़ा — बहुत हाथ बाँटा दिया करेगी । हो सकें तो साल में दो — तीन महीने के लिए मैं भी आ जाया करूंगी । प्रभा ने बड़ी खुशी से यही दायित्व स्वीकार कर लिया था"। प्रभा अपने देवर की शिक्षा और ननद की शादी के लिए अपना जीवन व्यतीत करती है । प्रभा अपने व्यवहार और विचारों से समाज में आदर्श स्थापित करती है।

वीरेंद्र जैन ने समाज सुधारक नारी एवं आदर्श नारी के विविध रूपों का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में गहराई से किया है।

रीति रिवाज़ और रूढी - परंपरावादी नारी : वीरेंद्र जैन ने अपने साहित्य में सामाजिक रीति रिवाज़ और रूढी -परंपरा का चित्रण किया है। रीति – रिवाज़ और रूढी - परंपराएँ संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होती हैं। वास्तव में लोक- जीवन में जो जीवनोपयोगी तथा उचित मान्यताएँ होती हैं वही कालांतर में संस्कृति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यद्यपि रीति – रिवाज़ और रूढी– परंपराएँ आर्थिक या राजनैतिक घटनाओं की भाँति शीघ्र नहीं बदलती फिर भी समय और परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन आना स्वाभाविक है । किसी भी समाज के आदर्श , विश्वास , नियम , व्यवहार एवं मान्यताएँ समयानुसार बदलती रहती हैं। सामाजिक संगठन के लिए रीति – रिवाज़ और परम्पराएँ – प्रथाएँ आदि बनाई जाती है। स्वातंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में काफ़ी पारिवर्तन आए हैं। जीवन के सभी मानदंड बदल चुके हैं। परम्पराएँ काफ़ी हद तक क्षीण होती चली जा रही हैं।

वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में सामाजिक रूढी -परम्परा का चित्रण हमें देखने को मिलते हैं। प्राचीन काल में जो रूढ़ियाँ थीं , वही रीति - रिवाज़ और परम्पराएँ आज आधुनिक काल में भी चली आ रही दिखाई देती हैं। उनमें थोड़ा – सा बदलाव भी आ रहा है। पहले दादा – दादी या माता- पिता या परवार के बड़े सदस्यों के कहने पर ही जन्म, विवाह , मृत्यु, आदि अवसरों पर रीति- रिवाजों का पालन किया जाता था । वीरेंद्र जैन के 'सुरेखा पर्व ' उपन्यास की नायिका विद्या के पति विनय हर एक सवर्ण जाति के विवाह में भोंपू (फोनोग्राम) बजाने का काम करता है। क्योंकि हर शादी में रूढी – परंपरा के अनुसार भोंपू (फोनोग्राम) बजाया जाता है। उसके बिना शादी नहीं की जाती है। साथ ही विद्या और विनय भी परंपरा के अनुसार अपनी शादी के लिए खुद लड़की देखने जाता है और लड़की पसंद करता है। विद्या और विनय के विवाह के अवसर पर कहा गया है- "मेरे पिता ने अपनी शादी में मंडप से उठ – उठकर भोंपू के तवे बदले,

अपनी शादी का जोड़ा खुद रात जागकर सिला और यही क्रम अनके जीवन का अंग बन गया । दोनों कामों में उनकी पत्नी का हाथ बाँटाने लगी ।" इस प्रकार आज भी विवाह में रूढी - परंपरा का प्रचलन चलता हुआ दिखाई देता है।

इस प्रकार आज सामाजिक संगठन के लिए रीति – रिवाजों और परंपराएँ आदि बनाई जाती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात समाज में काफ़ी परिवर्तन आए हैं जिससे जीवन के सभी मानदंड बदल चुके हैं। रूढी– परंपराएँ काफ़ी हद तक क्षीण होती जा रही हैं, फिर भी कुछ स्थानों पर इनका बोलबाला दिखाई देता है। वीरेंद्र जैन के विवेच्य साहित्य में समाज की रूढ़ियाँ एवं परंपराएँ एक हद तक सफलता के साथ चित्रित हुई है।

नारी का मातृरूप : नारी का मातृरूप भारतीय संस्कृति में अन्यंत महान एवं गौरवशाली माना गया है। इतना ही नहीं उसे स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बतलाया है, " जननी जन्मभूमिश्च स्वगदिपि गरियसी ।" नारी के नारीत्व की पूर्ति मातृत्व की प्राप्ति में ही मानी जाती है। बच्चों को जन्म देकर अन्हें शिक्षा देकर अनके व्यक्तित्व विकास के लिए उचित प्रयत्न करना यही माता का कर्तव्य माना गया है। पालन – पोषण, स्नेह, वात्सल्य, तथा सेवा भाव आदि मातृरूप नारी की सर्व प्रमुख विशेषताएँ होती हैं , जिनसे वह संसार में सुख, संतोष एवं उल्लासमय वातावरण का निर्माण करती है। परिवार में पिता की अनुपस्थिति में माता उसकी प्रतिनिधि होती है और धैर्य एवं विश्वास से परिवार का पालन – पोषण एवं संचालन करती है। '

' निष्काम कर्म योग' माता के जीवन की बिशेषता है। अपनी सारी प्रसन्नता, उल्लास वैभव सुख एवं संतोष वह संतान के जीवन- निर्माण के हेतु हँसते – हँसते निछावर कर देती है। इसमें उसे प्रतिदान की अपेक्षा नहीं होती। इसे अपना कर्तव्य मानकर वह पूरा करती रहती है। त्याग ही उसका जीवन होता है। समाज में उसका स्थान बड़ा ही गौरवपूर्ण तथा महत्वपूर्ण होता

है। माँ के इस गौरवशाली तथा महिमामय रूप का चित्रण प्राचीन काला से साहित्य में होता आया है। नारी का यह गौरवपूर्ण रूप हिन्दी अपन्यासकारों को भी सदैव आकर्षित करता रहा है ।

वीरेंद्र जैन ने उपन्यास में प्रभा के त्याग का परिणाम यह निकाला कि वह मातृत्व सुख से सदा के लिए वंचित हो जाती है। किन्तु नरेन आदर्श पति होने का पूरा फर्ज निभाता है। वह अनाथाश्रम से एक शिशु को गोद लेकर प्रभा के मातृत्व – सुख की अभिलाषा को पूरा करता है। डॉक्टर ने कहा-" मैंने जहाँ तक मरीज को समझा है, उसके लिए यही ठीक होगा कि किसी भी तरह उसे एक नवजात शिशु लाकर दे दिया जाए। यदि ऐसा न किया गया तो महीज को काफ़ी गहरा आघात पहुँच सकता है और इसका परिणाम बहुत दुखद भी हो सकता है। "

उपन्यासकार ने नारी को बच्चों के लिए त्याग करने वाली मातृ रूप का यथार्थ चित्रण भी किया है। मातृत्व नारी को ईश्वर द्वारा दिया गया अनुपम उपहार है। माँ के रूप में वैदिक काल से नारी पूजनीय रही है। नारी को मातृत्व का आदर्श -स्वरूप मानकर स्त्री को पुरुष से भी अधिक सम्मान देने की बात लेखक पाठकों से कहते हैं।

विधवा नारी : पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में एक विधवा नारी का जीवन शोचनीय है। अपने इस तरह के जीवन को एक स्वरूप प्रदान करने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है । समाज एक विधुर को पुनर्विवाह करने की अनुमति प्रदान करता है। लेकिन विधवा - विवाह को मान्यता नहीं मिलता । वीरेंद्र जैन अपने उपन्यास 'अनातीत' के माध्यम से विधवा विवाह की समस्या और नायिका सुमि के माध्यम से विधवाओं की करुणा जनक स्थिति, मानसिकता और विद्रोह आदि का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

सुमी शादी के एक साल बाद विधवा बन जाती है। वह समाज की सहानुभूति के भार को वहन करने के लिए असमर्थ होकर उस के विरुद्ध विद्रोह करती है। भारतीय समाज में एक

स्त्री श्वेतवस्त्र धारिणी बनने से बड़ी और कोई विपदा नहीं हो सकती। इस विपदा के आगे बाकी सभी विपदाएँ गौण बन जाती है। अपनी इस यातनामायी पारिस्थिति का वर्णन सुमी इस प्रकार देती है — " ज़िन्दगी में एक जो बड़ा सा ठहराव इन सफेद कपड़ों के साथ आया है उसने और सभी ठहराव मानो तोड़ दिया ।" साधारणत: हम यह मानते हैं कि स्त्री के मनोभावों को जितना स्त्री समझ सकती है उतना पुरुष नहीं समझ सकता । विधवाओं के जीवन में यह भाग्य भी नहीं है। क्योंकि विधवाओं की यातना और दु:ख को समझते हुए भी स्त्रियाँ उसे उसके अधिकार से वंचित करती है। विधवाओं को सहज रूप से स्वीकारने में असमर्थ स्त्रियाँ दया और सहानुभूति से उसके जीवन को बोझिल बना देती हैं। स्त्रियों के इस व्यवहार को लेखक ने अपने उपन्यास में सुमी के शब्दों से इस प्रकार व्यक्त किया कि दु:खी तो जब होता है , तब स्त्रियाँ भी इस प्रकार का व्यवहार करती है ।

वीरेंद्र जैन के उपन्यास में नारी जीवन का चित्रण इस अनुशीलन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि नारी जीवन आत्म निर्भर स्वतंत्र विचारों की व्यवहारी है। वे पुरानी रूढी -परंपरा का विरोध करती है। नए मानवीय मूल्यों को स्वीकार करके नज़र आ रही है । कई स्त्रियाँ आत्मनिर्भरता के कारण पति से अलग रहती दिखाई दे रही हैं। कई स्त्रियाँ पति-प्रेम से वंचित हैं और अत्याचार से पीड़ित भी हैं। नौकरीपेशा नारी आदि विविध रूपों में आज की नारी को लेखक ने हमें दिखाया है। इस प्रकार नारी जीवन में अस्थिरता ने अपनी जडें मज़बूत की हैं। आज नारी जीवन के विकास के साथ-साथ शहरों में अनेक प्रकार की विकृतियाँ भी होती जा रही हैं। स्पष्ट है कि वीरेंद्र जैन के विवेच्य उपन्यासों में नारी-जीवन के विविध रूपों का वास्तविक और यथार्थ दस्तावेज देखने को मिलते हैं।

संदर्भ

1. वीरेन्द्र जैन - तीन अतीत ' पृ . सं . 46

2. वीरेन्द्र जैन - ' तीन अतीत 'पृ . सं .96

3. वीरेंद्र जैन" तीन अतीत " पृ . सं.21

4. वीरेंद्र जैन " तीन अतीत "पृ . सं . 28

5. वीरेंद्र जैन , "तीन अतीत" पृ . सं . 28

6. वीरेंद्र जैन - 'तीन अतीन ' पृ . सं .50

7. वीरेंद्र जैन - 'तीन अतीत ' पृ . सं . 39

8. वीरेंद्र जैन - तीन अतीत 'पृ . सं .115

अनिताराणी .आर
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम
केरल ।

डॉ. एस. सुनिल कुमार
असोसिएट प्रोफसर
हिन्दी विभाग
यूनिवर्सिटी कॉलेज
तिरुवनन्तपुरम,
केरल ।

****

18

भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास

नीतू एस एस

भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण माने राष्ट्रगत सीमाओं के विलेपन से पूरे विश्व का एकीकरण । अंग्रेजी में वैश्वीकरण के लिए प्रयुक्त 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द के तहत हिंदी में 'भूमंडलीकरण', 'विश्वायन', 'भौगोलिकरण', 'जगतीकरण' आदि शब्द भी प्रचलित है । इनमें से सर्वाधिक चर्चित शब्द 'भूमंडलीकरण' शब्द पर विचार करें तो आधुनिक युग में प्रस्तुत शब्द का निहितार्थ इसकी अभिधार्थ से कुछ उल्टा व्यवहृत है । यानि प्रस्तुत शब्द की प्रयोग से 'सब जन हिताय सब जन सुखाय' की जो भावना उत्पन्न होना था इसके विपरीत वर्त्तमान युग की सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रण करनेवाले कुछ सशक्त बहुराष्ट्रीय कंपनियों और उनके अर्थ केंद्रित अमेरिकन हितों की रक्षा की पहचान दिलानेवाले शब्द के रूप में ध्वनित हो रहे है ।

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण को लेकर प्रोफसर सत्यमित्र दूबे का कथन है कि, "भूमंडलीकरण पूँजीवाद का उदार, परिवर्ध्दित और परिष्कृत रूप है । इसका मूल आधार है – राज्य के नियंत्रण में ढिलाई, बाजार का वर्चस्व, पूँजी और उत्पादित वस्तुओं का पूरी दुनिया में मुक्त प्रवाह , उदारीकरण, आर्थिक पुनर्रचना, निजी स्वामित्व और प्रतिस्पर्धा । भूमंडलीकृत अर्थ व्यवस्था में निजी उद्योगों में राष्ट्रीय सीमाओं से परे जाकर पूँजी का निवेश होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और लाभ कमाना होता है ।" महान आलोचक रामचंद्रन शुक्ल जी का अभिप्राय रहा कि ज्यों – ज्यों औद्योगीकरण बढता जाएगा विज्ञान के चरण मानव जीवन पर

अपनी गहरी छाप छोड़ने लगेंगे जो कविता या साहित्य की अस्मिता के लिए संकट की स्थितियाँ बनेगी । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो नवउदारवाद, पाश्चात्यीकरण, औद्योगीकरण आदि सब वैश्वीकरण का ही विभिन्न मुखौटें हैं । औद्योगीकरण से उत्पन्न आर्थिक मंदी, पारंपरिक धंधों का ह्रास से श्रमिक वर्ग में उत्पन्न तनाव, बाजारवादी संस्कृति, औद्योगीकरण से उत्पन्न पारिस्थितिक अव्यवस्था, मीडिया का समाज में नकारात्मक प्रभाव , ह्रास होते मानवीय मूल्यों से उत्पन्न पीढ़िगत टकराहट आदि भूमंडलीकरण की प्रमुख खामियाँ है । हिंदी उपन्यास जगत में भूमंडलीकरण की इन खामियों एवं उससे उत्पन्न समस्याओं का बेबाक दस्तावेज उपलब्ध है । प्रस्तुत लेख भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के दौर में उत्पन्न विभिन्न सामायिक समस्याओं का चित्रण करनेवाले उपन्यासों पर केंद्रित है ।

संजीव कृत 'धार' बिहार एवं बंगाल को कोयालांचल क्षेत्र की कोयले की खानों में काम करनेवाले संताल आदिवासियों के जीवन पर केंद्रित यथार्थवादी उपन्यास है । औद्योगीकरण के कारण खेतीबारी या पशुपालन जैसे परंपरागत अर्थोपार्जन साधनों को त्यागकर मज़दूरी अपनाने पड़ी जनता की विवशता को प्रस्तुत उपन्यास में दर्शाया गया है । भूमंडलीकरण से उत्पन्न औद्योगीकरण की लहरों ने उनकी सांस्कृतिक पैतृक को ही उजाड़ दिया है । कभी - कभी बढ़ती हुई महंगाई से उत्पन्न आर्थिक विपन्नता की वजह से खेती — मज़दूरी के काम निपटाकर कोयल खानों का काम भी संभालना पड़ता है । इसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार हुआ है — "अब क्या बतायें .....। अरे खेती में क्या रखा था — ऐ । मुशकिल से तीन धान, कोदो, मडुआ, खेसारी । फैक्टरी से कम — से — कम सालभर नून — रोटी, चाहे माँड भात तो जुट जाता है ।" वास्तव में भूमंडलीकरण से उत्पन्न आर्थिक अराजकता और महंगाई ही आम एवं गरीब जनता को निर्धनता की गहरी खाई में धकेल दी है । इस संदर्भ में उपन्यास का पात्र शंकर का आर्थिक —

मानसिक तनाव को उपन्यास में इस प्रकार वर्णित है कि "ऐसी तो नहीं थी यह ज़िंदगी । न सही रजा – महाराजा, पेट भर भोजन, तन भर कपड़ा और सर पर एक टुकड़ा छांव की कमी तो नहीं थी । लेकिन अब .....? एक –एक कर भेड़े चुक गई, मुर्गे – मुर्गिया चुक गये, इज़्ज़त चुक गये । रह गई यह इकलौती भेड़ और बाप की यह टूटी साईकिल । कौन छीनकर ले गया सारा कुछ ?"

भारत की बढ़ती हुई बेरोज़गारी के संदर्भ में अलका सारावगी जी का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत ' एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में लिखा है कि "अमेरिका के लोगों केलिए बच्चों का सस्ता होमवर्क सस्ती मज़दूरी और अब सस्ती प्रार्थना करने केलिए भी इंडिया हाजिर है ।" भारत की बढ़ती बेरोज़गारी से तंग आकर नई पीढ़ी भूमंडलीकरण व्यवस्था के लाभ उठाकर विदेश जाकर मज़दूरी करना ही बेहतर समझते है । प्रस्तुत उपन्यास को लेकर में 'ग्लोबल समय में गद्य' शीर्षक पुस्तक में इसप्रकार लिखा गया है कि – "उपन्यास पढ़ते – पढ़ते यह बात अलक्षित नहीं रह जाती कि हिंदी में संभवतः पहली बार एक ऐसी रचना सामने आई है जिसमें उदारीकरण का लाभ उठानेवाले और उसे अंजाम तक पहूँचाने वाले प्रतिनिधि वर्गों और चरित्रों के जरिए इस भूमंडलीय दौर में बन रहे भारतीय समय और समाज की मनोरचना को उसकी महत्वाकांक्षाओं और उसके अंतर्विरोधों के साथ बेहद करीब से समझा जा सकता है ।" आलोच्य उपन्यास मुख्यतः समकालीन भारत के आर्थिक मंदी से जुडी समस्याओं को उठाया गया है । कॉपोरेट जगत में व्यवहृत धनिकों के सपनों के साथ साथ आम आदमी की साधारण ख्वाइशों से जुडी समस्याएँ भी उपन्यास में चित्रित है । विदेशी कम्पनियाँ भारत में फिर से कब्ज़ा कर लिया है । ऐसी कंपनियों की मकड़जाल से देश और जनता प्रभावित है । गुडगाँव की तुलना दक्षिण भारत की प्रांतों से करते हुए कहानी का पात्र के . वी शंकर अय्यर का कथन है कि – " चेन्नई में

मल्टीनेशनल कम्पनियाँ लाइन लगाकर खड़ी है ; चाहे गाड़ियों की बी एम डब्लयू, फोर्ड या हुंडाई कम्पनियाँ हो या इलेक्ट्रॉनिक की नोकिया, मोटरोला ,सैमसंग । खरीददारों के पास जैसा पैसा अब साउथ इंडिया में है, उसकी नार्थ वाले कल्पना भी नहीं कर सकते । कितने रेस्तरां, ए .टी .एम बैंक, शॉपिंग मॉल और सिनेमा के मल्टीप्लेक्स चेन्नई में खुल गए है और लोगों को सामान खरीदने की कैसी क्षमता है 'इसका अंदाजा चेन्नई, हैदराबाद, बंगलोर गए बिना नहीं हो सकता । कोयंबटूर जैसे शहर में तीन दिन में के . वी. ने जितनी मर्सीडीज गाड़ियाँ देखीं , उतनी तो बंबई – दिल्ली में भी नहीं दिखती ।" यहाँ सूचना क्रांति से प्रभावित ज़माना का वर्णन हुआ है ।

प्रदीप सौरभ जी का 'मुन्नी मोबाईल' उपन्यास में भी भूमंडलीकृत चकाचौंध दुनिया की चंगुल में पड़कर पैसा कमाने की लालच से, अवैध धन्धाओं को बेशर्म स्वीकार करने वाली नारी का चित्रण किया गया । सूचना प्रौद्योगिकी की नकारात्मक प्रभाव को लेकर यहाँ बकान हुआ है । मोबाईल के प्रति असीम लगाव के कारण ही बिंदु यादव नामक साधारण सी घरेलू नौकरानी का नाम मुन्नी मोबाईल बन गई थी । अर्थोपार्जन केलिए प्रौद्योगिकी की महान भूमिका को लेकर पहचान पाने पर मुन्नी इस सुविधा को अवैध तरीके से पैसा कमाने की साधन के रूप में स्वीकार लेती है । इस तरह आगे जाकर वह एक वेश्या रैकट की संचालिका बन जाती है । उसने उपन्यास के नायक आनन्द भारती (जो प्रसिद्ध पत्रकार है) की मोबाईल और कम्प्यूटर के सहारे अपने व्यापार की वृद्धि करती है । मुन्नी के मृत्युपरांत उसकी बेटी रेखा माँ की धंधा सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से ही सफलता पूर्वक आगे बढाती है । वह तो माँ से भी होशियार निकलकर लैपटॉप पर लड़कियों का लेखा – जोखा करके एस.एम.एस , इंटरनेट , ब्लाग आदि के सहारे लडकियों का तस्वीर दिखाकर ग्राहकों को खोजती थी ।

औद्योगीक उत्पादन की प्रगति केलिए लोग प्रकृति के प्रति नज़र – अंदाज़ कर रहे हैं । जनता का पर्यावरण बोध कमज़ोर होने पर पारिस्थितिक संतुलन भी बिगड़ गए । जिसके फलस्वरूप बाढ़, भूकंप, सुनामी जैसे प्राकृतिक आपदाओं से प्रकृति व मनुष्य सदैव पीड़ित रहने लगे । संजीव के 'धार' में कोयला खनिजों से उत्पन्न पारिस्थिति असंतुलन का चित्र उपलब्ध है । 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में भी ग्लोबेल्वामिंग से जुडी हुई समस्याएँ चित्रित है । नासिरा शर्मा कृत 'कुइयाँजान' जल की समस्या पर लिखा गया उपन्यास है । यह उपन्यास एक दृष्टि से वर्त्तमान भूमंडलीकृत समाज से लेखिका की चेतावनी ही है । देशों ने अपनी सीमाओं का ध्यान न रख अपनी उच्च एवं निरंतर विकसित तकनीकी एवं संसाधनों की सहारा लेकर पर्यावरण का इतना दोहन कर रहा कि शायद वे लोग इस तथ्य को विस्मृत कर बैठा है कि अगली पीढ़ी केलिए कुछ बचाना भी है । " जाओ देखो उन घने जंगलों को, जो तुम ने काट दिए । जाओ ढूढो उन जीवों को जो तुम्हारी गोली से नापैद होते जा रहे है । जाओ देखो उस ज़मीन को , जिसके स्तनों को तुमने निचोड़ लिया और अपनी सत्ता दिखने के लिए उस पर परमाणु बमों का प्रयोग किया । जाओ देखो उसकी तपती परतों को और उसकी साजिश का अंदाजा लगाओ कि वह किस तकलीफ से दो – चार है । उन पर्वतों को देखो, जिन्हें तोड़कर – उड़ाकर तुमने अपनी इच्छाएँ पूरी कीं । उन हिम शिखरों को देखो, जिन्होंने अपने वजूद को पिघलाकर तुम्हें नदियाँ दी और तुमने उन्हें बरबाद कर दिया । यही नदियाँ थी, जिनके किनारे तुम आकर बसे थे, आज तुम उनसे मुह मोड़ चुके है । तुम स्वार्थी हो ।"

चित्रा मुद्गल के 'गिलिगडु', कृष्णा अग्निहोत्री के 'नानी अम्मा मान जाओ' आदि में भूमंडलीकरण के बहाव में पड़कर ह्रास होते जा रहे पारिवारिक मूल्यों का अंकन हुआ है । महानगरीय संस्कृति की भोगो – फेंको मानसिकता के शिकार बने वृद्ध जसवंत सिंह की त्रासद

कहानी है 'गिलिगडु' । अर्थ के पीछे चैन रहित भाग – दौड़ में व्यस्त संतानों की ज़िंदगी में बूढ़े – बुजुर्गों केलिए पालतू कुत्ते केलिए प्राप्त स्वीकृति तक नहीं है । इसी विडंबना को लेकर बाबू जसवंत सिंह के सोच को कहानी में इसप्रकार चित्रित है कि – "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते है – एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजिनियर जसवंत सिंह ! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसबत मजबूत है । उसकी इच्छा अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर । उनकेलिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता ।" पिताजी की देख – रेख उठाने की नौबत न आ जाए इसी डर से जसवंत सिंह की बेटी शैलू भी भाई का पक्ष लेती है । वह पिता को टोकते हुए कहती है कि "बाबूजी को भी अपनी खोह से बाहर निकलने की ज़रूरत है । ..... भैय्या तो यहाँ तक सोच रहे है कि जहाँ बाबूजी का मन लगे, वे प्रसन्नचित्त रहें, उन्हें वही रखा जाए । उन्होंने पता लगाया कि नोएडा के सेक्टर पचपन में कोई आनंद निकेतन वृधास्रम है, क्यों न उनके रहने की व्यवस्था वही कर दी जाए । कृष्णा अग्निहोत्री कृत 'नानी अम्मा मान जाओ' उपन्यास में नई – पुरानी पीढ़ी का अंतर्द्वंद्व ,पीढीगत टकराहट आदि का समावेश हुआ है । कहानी में नानी को बच्चों की भावनाओं के आगे घुटने टेकते हुए अपने को बदलना पड़ता है । कहानी का पात्र मोहिनी, कामना और निम्मो के ज़रिए चार पीढ़ियों के कलानुसृत परिवर्तित मानसिकता का विवरण प्रस्तुत कहानी में उपलब्ध है ।

कृष्णा अग्निहोत्री जी की 'न आना इस देश' उपन्यास में पाश्चात्यता का अंधानुकरण करनेवाले नवीन पीढ़ी से पुरानी पीढ़ी का टकराव का चित्र समावेशित है । कृष्णा जी का अभिप्राय है कि पाश्चात्यीकरण की मोह से युवा पीढ़ी देशप्रेम और देशसुरक्षा जैसी मामलों से पीछे हट रहे है । "जब तक हम अमेरिकन व विदेशी संस्कृति व संपदा के मोह में रहेंगे हमारी पीढ़ी उन्हीं की गतिविधियों, रहन – सहन रीति –रिवाज़ को अपना रही है ।" लेखिका के

अनुसार भौतिकवादिता का अंतिम चरण आ गया है । पूँजी कमाने की निजी स्वार्थी भावना इतनी निष्ठुर हो गई है कि रूपए कमाने के अलावा मनुष्य और मनुष्य के बीच अन्य कोई संबंध नहीं रहा ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण और उपभोग संस्कृति आदि ही वह विशेष पहलुओं है जो आधुनिकता की सकारात्मक पक्ष को पाश्चात्यता की बहाव में बहाकर अतिआधुनिकता तक ले जा रहे है । वास्तव में भूमंडलीकरण शब्द से जो सकारात्मक एकता की ध्वनि मुखरित है वह भ्रम मात्र है । असल में यह पूँजीवाद की एकछत्रता का छद्म रूपांतरण है । जहाँ व्यक्ति सिर्फ अर्थ केंद्रित उदारीकरण व स्वार्थता की सिद्धान्तों को अपनाते समाज में आगे बढते हुए दृष्टिगोचर है । भूमंडलीकरण की नई अवधारणा में विश्व वस्तुतः एक बाजार है , जो मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देते । वह केवल ग्राहक या विक्रेता के रूप में सिमटकर बाजार की वस्तु बना गया है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

- 'ग्लोबल समय में गद्य' — प्रियदर्शन : वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली — २०१४
- 'भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ' — सच्चीदानंद सिन्हा : वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , २००५
- 'धार' — संजीव : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली -१९९०
- 'अलका सरावगी के उपन्यास साहित्य' — डॉ . शीतला प्रसाद दुबे , डॉ . सत्य सुधीर चौबे : अतुल प्रकाशन , कानपुर — २०१३
- 'मुन्नी मोबाईल' — प्रदीप सौरभ : वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली
- 'कुइयाँजान' — नासिरा शर्मा : सामायिक प्रकाशन , नई दिल्ली
- 'गिलिगडु' — चित्रा मुद्गल : सामायिक प्रकाशन , नई दिल्ली , २००८

- 'नानी अम्मा मान जाओ' - कृष्णा अग्निहोत्री : अमन प्रकाशन , कानपुर – २०१०
- 'आना इस देश' – कृष्णा अग्निहोत्री : अमन प्रकाशन , कानपुर - २०१४

पत्रिका :

प्रो . सत्यमित्र दुबे – भूमंडलीकरण समाजशास्त्री विवेचन ,अक्षर पर्व , अप्रैल २००७ , पृ.१७)

नीतू एस एस

शोध छात्रा , हिंदी विभाग

केरल विश्वविद्यालय

कार्यवट्टम

****

19

जाल बिछा इंटेरनेट : शब्द बनाम पखेरू

डॉ. आशालता जे

हिंदी की वरिष्ट लेखिका नासिरा शर्मा समसामयिक विषयों पर अपनी तूलिका चलाती है । समकालीन समस्या 'साईबर क्राईम' और इंटेरनेट दुनिया के पाखंडों का खुलासा देने वाला, नासिरा शर्मा का नवीनम उपन्यास है 'शब्द पखेरू' । उपन्यास की नायिका शैलजा के माध्यम से अनजाने में ही साईबर क्राईम का हिस्सा बनने वाली नयी पीढ़ी की मूर्खता को दर्शाने का प्रयास लेखिका ने किया है। शब्दों की इतनी ताकत है कि जो बिना मिले ही, किसी एक व्यक्ति का प्रभाव दूसरों पर सौंपता है।आज के इंटेरनेट के ज़माने में दुनिया के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से क्षण भर में हम संपर्क कर सकते हैं। विज्ञान की तकनीकियों का अच्छा और बुरा असर पूरी दुनिया पर पड़ता है। अकल्मन्द लोग इसके गुणों को स्वीकार करके दोषों को छोड़ देते हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसी बेवकूफ़ी करते हैं कि ज़िन्दगी भर इसका बुरा प्रभाव झेलने को विवश हो जाते हैं। ऐसे इंटेरनेट के मायाजाल में पंख उठाकर चलने वाली शैलजा की बेवकूफ़ी के ज़रिए पूरी युवा पीढ़ी को चेतावनी देना नासिरा शर्मा का उद्देश्य रहा है।

सूर्यकांत की छोटी लड़की शैलजा गूगल को ग्रैन्डपा मानती है। वह गूगल को ही अपना मार्गदर्शक समझती हुई हरदम लैपटाप की स्क्रीन पर आँखें गाड़ती रहती है। बड़ी लड़की मनीषा जो एम .ए. करती है, शैलू को 'इंटेरनेट बेबी' नाम रखा है। शैलजा आज की पीढ़ी के समान फेसबुक में हर फ्रेंड रिक्वेस्ट को अक्सेप्ट करती है। मध्यवर्गीय परिवार , बीमार माँ , व्यस्त एवं

तनावग्रस्त पिता जैसे घर की बोरियत माहौल से बचने के लिए वह इंटेरनेट के मायालोक का सैर करती है। पुराने ज़माने में जैसे घर के बुज़ुर्ग, बच्चों की शंका निवारण करते हैं, वह स्थान आज गूगल ने ले लिया है। शैलजा को अपने मन की बात कहने के लिए तो कोई नहीं था पर इंटेरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने—पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था । वह ग्रैंडपा के ज़रिए बेहतर दुनिया में सांस लेने की तमन्ना पालती है।जबकि मनीषा को अपने परिवार की चिंता सताती है, जल्द-ही-जल्द वह अपने परिवार को आर्थिक टंकी से बचाना चाहती है जिसके लिए दिल लगाकर पढ़ती है। मनीषा का सपना आई.ए.एस की परीक्षा पास करना है तो शैलजा विदेश जाकर पढना चाहती है। "एक ही संस्कार में पली —बढ़ी दो लड़कियाँ अपनी —अपनी अनुभूतियों से नए जीवन की डगर की खोज में थीं। एक ज़मीन अपने नीचे ठोस चाह रही थी दूसरी 'उडान' जिसमें नयापन हो , ख़ुशी हो , उत्साह हो ,एक विस्तृत आकाश हो ।"1

फेसबुक में उनकी दोस्ती यू.के. के फ्रैंक जॉन से होती है। दोस्ती इतनी बढ़ती है कि वह शैलजा से मिलने इंडिया आता है। पौन्ड्स व डॉलर्स से भरी दो अट्टैचियॉ मुंबई एयरपोर्ट में पकड़े जाने पर बीस हज़ार रुपए मदद माँगते हुए फ्रैंक शैलजा को फोन करता है। तभी शैलजा समझती है कि वह बेवकूफ़ी से साईबर क्राईम में फँस गयी है। वह कहती है "मैं कैसे जानूँ कि तुम फ्रैंक जॉन हो, आजकल साईबर क्राईम आम है। यह तो आप भी जानते होंगे, मैं कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहती हो।"[2] हो सकता था वह भारत का ही व्यक्ति है और गलत नाम और पता देकर उसे बेवकूफ बना रहा था ।पैसे ट्रांसफर करने वाले कोई बड़े ग्रूप का एजेंट भी हो सकता था। जाने-अनजाने हमारी युवा पीढ़ी इस तरह की मुश्किलों में पड़ जाती है। अगर शैलजा वहाँ पैसे लेकर जाती तो वह भी पुलिस की पकड़ में आती, या अनजान व्यक्ति उसका पैसा वसूल करके भाग

जाता, क्योंकि वह नहीं जानती कि यह फ्रैंक जॉन कौन हो । केवल शब्दों के ज़रिए उनके बीच संबंध बढ़ता रहा और सही समय पर वह इस संबंध को तोड़कर आफ़त से बच जाती है।

इतना कुछ होने के बावजूद भी वह फेसबुक नहीं छोड़ सकती थी ।मनीषा हमेशा उसे याद दिलाती है कि "आधुनिक नेटवर्क को मिसयूस नहीं करना चाहिए ।अनजाने लोगों से मेल-मिलाप बढ़ाना उचित नहीं । हर बात फन में शुरू हुई 'अंत में खतरनाक भी हो सकती है। दुनिया बहुत तेज़ी से बदल रही है। नए -नए क्राईम रोज़ हो रहे है।"[3] लेकिन वह मनीषा की बातों का नज़रअंदाज़ करके अमेरिकन आर्मी मेन क्रिस्ट एलेन से दोस्ती करती है। क्रिस्ट मनमोहक तस्वीरें और रूमानी मेसेजेस भेजकर शैलजा के किशोर मन को अपने गिरफ़्त कर लेता है। धीरे-धीरे दोस्ती प्यार में बदल जाती है। वह अंग्रेज़ दुल्हन बनने का सपना देखती है ।शैलजा की दमित इच्छाओं का विस्फोट होने के कारण उसे अपने भविष्य से भी अधिक प्यार, भौतिक सुख-सुविधावों के प्रति होता है ।क्रिस्ट के साथ एक सुखमय जीवन की प्रतीक्षा वह करती है ।लेकिन जब उसे मालूम होता है कि दूसरी बार वह साइबर क्राईम में फँस गयी है तो सातवें आसमान पर उड़ते-उड़ते अचानक वह यथार्थ की पथरीली धरती पर आ गिरती है।

उसे पता चलता है कि अमेरिकन आर्मी ने नेट पर एक नोटिस वाइरल किया है कि क्रिमिनल नेट रैकेटेर्स, अमेरिकन आर्मी अफ़सर बताकर उनकी तस्वीरों का गलत इस्तेमाल करके औरतों को ठगते हैं। क्रिस्ट ने जिन पैसों की तस्वीर भेजी थी, उस तरह रबड़ बैंड में मुड़ी डॉलर्स की गड्डी अधिकतर स्पयिंग करने वालों को उनकी पेमेंट के रूप में दी जाती है ।यानि क्रिस्ट एलेन कोई स्पयिंग एजेंट भी हो सकता था। या फिर मर्द न होकर औरत भी हो सकता था, क्योंकि उसने न शैलजा को फोन किया है न व्हाटसैप पर आया। वह शैलजा को कोलालाम्पूर भेजकर डॉलर्स भरा बैग कहीं ओर स्मगल करना भी चाहता होगा । ऐसी अनेक सम्भावनाएँ हैं

जिनसे वह जेल की सलाखों के पीछे एक अपराधी बन सड़ सकती थी और उन लोगों का मणि आसानी से ट्रांसफर भी हो सकता था । शैलजा की तरह हमारी युवा पीढ़ी कई तरह की साइबर क्रैमों में फँसती जा रही है।

हमारी जवान पीढ़ी पैसा शॉर्टकट में कमाना चाहती है, जब कि उसे मेहनत से हासिल करना चाहिए । जवान लोगों की महत्वाकांक्षाओं की हड़बड़ाहट सब की सोच से परे है। उन्हें तो हर चीज़ ब्रैंड की चाहिए । प्यार के चंगुल में फँसकर क्राइम की दुनिया में उतरना पड़ता है। लैपटॉप ,मोबाइल , हाईहील सैंडल , बड़ा पर्स ,रिस्ट वाच ,हीरे जड़े ब्रेसलेट , नेकलेस और अटटाच्ची भर डॉलर्स देखकर शैलजा की आँखें पीली हो गयी थीं । लेकिन सच तो यह था कि वह सिर्फ़ और सिर्फ़ तस्वीर थी। फैशन की दुनिया में उड़ती युवा पीढ़ी असलियत को समझने में देरी कर बैठती है, यही हाल शैलजा की भी हुई थी । बाज़ार और तकनीक के विक्सित हो रहे माहौल में शैलजा के ज़रिए सपनों की आकाश से उतरकर यथार्थ की मरुस्थल में मेहनत की बीज बोने का आह्वान नासिरा शर्मा डे रही है ।

सन्दर्भ सूची

1. शब्द पखेरू, नासिरा शर्मा, पृ.20

2. वही, पृ. 77

3. वही, पृ.78

डॉ. आशालता जे.
देवदेयम
कोडुमण
आट्टिङ्ङल

****

20

'रेहन पर रग्घू' में वैश्वीकरण और बिगड़ते मानवीय मूल्य

श्रीनिता पी.आर

आधुनिक साहित्यकारों की पैनी नज़र अपने समय की हर एक बात पर गड़ जाती है और वे आत्मसजगता के साथ साहित्य-सृजन में खुद को समर्पित कर रहे हैं । साहित्य में तत्कालीन समाज का जीवंत रूप प्रस्फुटित हुआ है । यह साहित्यकार के सामाजिक सरोकारों का प्रमाण है । उपन्यास एक सशक्त विधा है जिसके द्वारा साहित्यकार अपने समाज की सच्चाइयों का पर्दाफाश करता है । जीवन की बदलती परिस्थितियों का चित्रण उपन्यासों में मिलता है ।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक पहुँचते ही हिंदी उपन्यासों में वैश्वीकरण का प्रभाव व्यापक तौर पर दर्शाया जाता है । वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण का सर्वाधिक असर आर्थिक स्तर पर पड़ा है । ''भारतीय समाज में भूमंडलीकरण के प्रभाव को खुली अर्थव्यवस्था, उदारीकरण और नयी आर्थिक नीति के संदर्भ में ही परखा जा सकता है क्योंकि हमारे यहाँ ये प्रक्रियाएँ एक-दूसरे से जुडी हुई हैं ।''1 बाज़ार और मुनाफ़े पर आधारित वैश्विक सरोकार ने दुनिया में असमानता पैदा की है । दोहरे मुख वाले बहुराष्ट्रीय निगमों के हस्तक्षेप, खुली अर्थव्यवस्था , मुक्त बाज़ार आदि के कारण आर्थिक स्तर का अंतर बढ़ गया है । साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक परिदृश्य भी बदलने लगे । पश्चिमी संस्कृति की नकल करके आधुनिक बनने की दौड़ ने मानव को उसकी जड़ से हिला दिया । गाँव से शहर की ओर आकृष्ट होकर उसने अपनी ज़मीन छूट दी । धीरे-धीरे रिश्ते टूट गए, परिवार ध्वस्त हुआ, परंपरा नष्ट हो गई तथा

संस्कृति एवं मूल्यों का अवमूल्यन हो गया । ''बाज़ार का तर्क एक ओर व्यक्ति को उसके समाज से विलग करता है तो दूसरी ओर व्यक्ति को उसकी भावनाओं से भी पृथक करता है ।''2

हिंदी उपन्यासों में वैश्वीकरण के आघातों की अभिव्यक्ति की गई है । काशीनाथ सिंह के 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में इसका सर्वोत्तम दृष्टांत मिलता है । अपनी सीमाओं का उल्लंघन करके लेखनी चलाने में जागरूक कथाकार हैं, काशीनाथ सिंह । उनके 'रेहन पर रग्घू' के नायक रघुनाथ को वैश्वीकरण के दुष्परिणामों को भुगतना पड़ता है । पश्चिमी सभ्यता और परंपरा के प्रति गर्व के कारण वे उलझनों में पड़ जाते हैं । वैश्वीकरण के दौर में, जीवन की विसंगतियों को झेलते मध्यवर्गीय परिवार का जीवन-यथार्थ इस उपन्यास में चित्रित है ।

मानव ज़िंदगी भर अपने परिवार की भलाई के लिए दौड़ते-दौड़ते स्वयं जीने को भूल जाता है । वह अपने चारों तरफ़ की घटनाओं से भी अपरिचित रह जाता है । रघुनाथ ऐसे ही व्यक्ति हैं जो ज़िंदगी के अंतिम पड़ाव में ही आसपास की प्रकृति का सौंदर्य देखते हैं- ''उनकी बाहें इतनी लंबी क्यों नहीं हो जातीं कि वे उसमें सारी धरती समेट लें और मरें या जिएँ तो सबके साथ! लेकिन एक मन और था रघुनाथ का जो उन्हें धिक्कारे जा रहा था- कल तक कहाँ था यह प्यार? धरती से प्यार की यह ललक? यह तड़प? कल भी यही धरती थी । ये ही बादल, आसमान, तारे, सूरज चाँद थे! नदी, झरने, सागर, जंगल, पहाड़ थे । ये ही गली, मकान, चौबारे थे! कहाँ थी यह तड़प? फुर्सत थी इन्हें देखने की?''3

पश्चिमी संस्कृति के अधीन होकर नई पीढ़ी केवल अपना स्वार्थ साधने के लिए जी रही है । वे पूरे समय ऐश करके जीवन बिताना चाहते हैं । इस बीच माँ-बाप को वे एक बोझ ही समझते हैं । यही कारण है कि नयी सदी में बुज़ुर्ग लोग अपने गाँव या घर से कहीं दूर, किसी दूसरे स्थान पर विस्थापित हो रहे हैं । वे अकेलापन झेलने को विवश होते हैं । रघुनाथ सोचते हैं-

''कभी सोचा था कि एक छोटे से गाँव से लेकर अमेरिका तक फैल जाओगे? चौके में पीढ़ा पर बैठकर रोटी प्याज नमक खाने वाले तुम अशोक विहार में बैठ कर लंच और डिनर करोगे?''4 आधुनिक मानव बाज़ारवाद व उपभोक्तावाद के माया-मोह में पड़कर सारी सुख-सुविधाओं को अपनाने की चेष्टा कर रहा है । रघुनाथ कंजूसी करके अपना घर-परिवार संभालते हैं तो उनका बेटा भौतिक सुविधाओं की कमी पर शिकायत करता है । वह अपने पिता को इसका दोषी ठहराता है । उस समय रघुनाथ कहते हैं-''हाय रे किस्मत । जिनके लिए कंजूसी की, उन्हींके मुँह से यह सुनना बदा था ।''5

वैश्वीकरण ने मानव को इतना लालची बना दिया कि वह अपने माँ-बाप के प्यार को भी अपने रास्ते का प्रतिबंध मानने लगा । उसकी महत्वाकांक्षा ने आत्म्संबंधों को भी तोड़ डाला है । प्रोफेसर सक्सेना संजय को उपदेश देता है-''देखो संजू! 'ला ऑफ़ ग्रेविटेशन' का नियम केवल पेड़ों और फलों पर ही लागू नहीं होता, मनुष्यों और संबंधों पर भी लागू होता है । हर बेटे-बेटी के माँ-बाप पृथ्वी हैं । बेटा ऊपर जाना चाहता है- और ऊपर, थोड़ा-सा और ऊपर, माँ-बाप अपने आकर्षण से उसे नीचे खींचते हैं । आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है और प्यार का भी, माया मोह का भी! मंशा गिराने की नहीं होती, मगर गिरा देते हैं! अगर मैंने अपने पिता की सूनी होती तो हेतमपुर में पटवारी रह गया होता!''6

मशीनीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण व आधुनिकीकरण ने मानव में आर्थिक लिप्सा बढ़ा दी, साथ ही उसे कामचोर भी बना दिया । खेती के झंझटों से मुक्ति पाने का उपाय रघुनाथ भी ढूँढ निकालते हैं-''रिटायरमेंट के बाद लोगों की देखा देखी रघुनाथ ने भी अपनी खेती बारी की दूसरी व्यवस्था की! उन्होंने अपने खेत सनेही को अधिया पर दे दिए! *** रघुनाथ ने उसके परिवार के लिए बरामदे का एक हिस्सा और बाहर का झोंपड़ा दे दिया! इस तरह वे भी

खेती के झंझटों से निश्चिंत होकर कहीं आने-जाने लायक हो गए! और कहीं आना जाना भी क्या, मैनेजर और प्रिंसिपल ने पेंशन लटका रखी थी और वे उसी में लगे हुए थे ।''7

आधुनिकता और परंपरा के बीच के द्वंद्व में फँसे आधुनिक मानव का आर्थिक मोह बढ़ता जा रहा है । रघुनाथ अपने बेटे संजय की शादी से परेशान होते हैं लेकिन पैसे के प्रति मोह नहीं छोड़ते-''रघुनाथ ने ब्रीफकेस खोला तो भाव विभोर! बेटे संजय के प्रति सारी नाराज़गी जाती रही! रुपयों की इतनी गड्डियाँ एक साथ एक ब्रीफकेस में अपनी आँखों के सामने पहली बार देख रहे थे और यह कोई फिल्म नहीं, वास्तविकता थी ।''8

पश्चिमी जीवन शैली और उपभोक्ता संस्कृति से प्रभावित नई पीढ़ी अपनी ज़मीन, अपना घर-परिवार आदि को तुच्छ मानती है । जब छोटा बेटा राजू, रघुनाथ से पूर्वजों की ज़मीन बेचने को कहता है तो वे क्रुद्ध हो जाते हैं- ''तुम करोडों कमाओगे लेकिन रुपया और डॉलर नहीं खाओगे । भगवान न करे कि वह दिन आए जब बैंक चावल दाल के दाने बाँटे ।***साले, तुम लोग बड़े हुए हो अपनी माँ का दूध पीकर । और तुम्हारी माँ की महतारी है यह ज़मीन । चावल, दाल, गेहूँ, तेल, पानी, नमक इसी ज़मीन के दूध हैं । और बोलते हो कि हटाइए उसे? छोड़िए उसे?''9

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने मानव को सब कुछ उपलब्ध कराया लेकिन मानव संबंधों में ज़रूर दरारें आ गयीं । जीवन के खोखलेपन एवं संबंधहीनता को समझकर रघुनाथ बोलते हैं-''देखो जग्गन, 'परायों' में अपने मिल जाते हैं लेकिन 'अपनों' में अपने नहीं मिलते । ऐसा नहीं कि अपने नहीं थे- थे लेकिन तब जब समाज था, परिवार थे, रिश्ते नाते थे, जब भावना थी! भावना यह थी कि यह भाई है, यह भतीजा है, भतीजी है, यह कक्का है, यह काकी है, यह बुआ है, भाभी है ।

भावना में कमी होती थी तो उसे पूरी कर देती थी लोक लाज कि यह या ऐसा नहीं करेंगे तो लोग क्या कहेंगे? धुरी भावना थी, गणित नहीं, लेन देन नहीं!''10

वैश्वीकरण ने समाज पर इतना कठोर आघात पहुँचाया है कि भीड़ में भी व्यक्ति अकेला ही पड़ गया । अपनों की दूरी केवल भौतिक रूप से ही नहीं, बल्कि मानसिक रूप से भी प्रकट होने लगी । कोई भी माँ-बाप अपनी संतानों की प्रगति पर रोक डालना नहीं चाहते । लेकिन वृद्धावस्था में वे उनका सामीप्य चाहते हैं । ''रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़ें! वे खेत और मकान नहीं हैं कि अपनी जगह ही न छोडें । लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा भी मौका आए जब सब एक साथ हों, एक जगह हों- आपस में हँसें, गाएँ, लड़ें, झगडें, हा-हा हू-हू करें, खाएँ पिएँ, घर का सन्नाटा टूटे । मगर कई साल हो रहे हैं और कोई कहीं है, कोई कहीं । और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए हैं कि वहाँ से पीछे देखें भी तो न बाप नज़र आएगा, न माँ!''11

वैश्वीकरण के प्रभाव से आज समाज में वृद्ध जनों की उपेक्षा की जाती है । उन्हें बेटे-बेटियों की मर्जी के अनुसार जीना पड़ता है । रघुनाथ भी इस दुर्घटना से मुक्त नहीं हैं । ''शीला, हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों, कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है- मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने!''12

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने वैश्वीकरण के बाई-प्रोडक्ट के रूप में उभरी सामाजिक विडंबनाओं का खुलासा किया है । भावशून्य, संवेदनहीन एवं विद्रूपता भरा समाज तथा बिगड़ते मानवीय मूल्य, टूटते रिश्ते, धनलोलुपता आदि बुज़ुर्गों पर डालते असर का चित्रण किया गया है । अपने परिवार एवं समाज से स्वयं मुक्त होकर जीने वाली नई पीढ़ी से ऊबकर, एक यांत्रिक व निरर्थक जीवन बिताने को मजबूर बुज़ुर्गों का यथार्थ इसमें चित्रित किया गया है ।

लेखक ने इस उपन्यास के द्वारा, वैश्वीकरण के इस दौर में मानवीय मूल्यों पर ज़ोर देने की आवश्यकता पर चेतावनी दी है ।

संदर्भ:-

1. सं.नीरू अग्रवाल, समय से संवाद- भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृ.76, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2015
2. वही, पृ.78
3. काशीनाथ सिंह, 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास, पृ.13 , राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010
4. वही, पृ.156
5. वही, पृ.28
6. वही, पृ.23
7. वही, पृ.79
8. वही, पृ.26
9. वही, पृ.85
10. वही, पृ.98
11. वही, पृ.133
12. वही, पृ.89

श्रीनिता पी.आर

अतिथि अध्यापिका,

श्री नारायणा वनिता कॉलेज, कोल्लम,

केरल विश्वविद्यालय ।

****

21

भूमंडलीकरण का जादूगर - तू है बड़ा बाज़ीगर

(रणेन्द्र के उपन्यास ' गायब होता देश ' के विशेष संदर्भ में)

डॉ. संध्या मेनन

भूमंडलीकरण का जादूगर जहाँ-जहाँ जिस - जिस इलाके में विकास की जादुई चादर बिछा कर अपना कमाल दिखाता है , वहाँ के गाँव के गाँव ही गायब हो जाते हैं और उस उजड़ी हुई ज़मीन पर बन जाते हैं पूंजीवादियों के आशियाने । तो इस तरह पूंजीवाद का नया रूप है भूमंडलीकरण ।

विकास की दौड़ में शामिल लोग ग़रीब और आदिवासी समुदाय को घास की तरह रोंदे चले जा रहे हैं । विकास की तिलस्मी गुफा में जब आदिवासियों को धकेल दिया जाता है तो वहाँ उनका अपना अस्तित्व ही मिट जाता है ।भूमंडलीकरण जनित विकास की तेज़ आँधी में आदिवासियों का सारा का सारा इलाका उजड़ जाता है ।गांव के गांव कारखानों , खदानों , बांधों , अभयारण्यों और अपार्टमेंट के नाम पर शासन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा हड़प लिए जाते हैं। विरोध करने वाले आदिवासियों को नक्सलवादी घोषित कर मुठभेड़ में मार दिया जाता है । महिलाओं के साथ अत्याचार होता है । हज़ारों लोग अपने बसेरे से बेघर होकर भूखे प्यासे दम तोड़ देते हैं , बहुतेरे जानलेवा बीमारियों की भेंट चढ़ जाते हैं और बचे - कुचे लोग बड़े-बड़े शहरों की झुग्गी - झोपड़ियों में किसी नाले के किनारे या भूमंडलीकरण के इस दौर में दूरियों को सिमेटते किसी बड़े पुल के नीचे नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त हो चुके हैं ।गांव से विस्थापित हुए

विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों के आदिवासी शहर की गंदी मलिन और बिजली , पानी से रहित बस्तियों में रहने को मजबूर हैं । पुरुषों को रोज़गार के लिए शहर में इधर-उधर भटकना पड़ता है ।स्त्रियां बड़ी-बड़ी कोठियों में झाड़ू - पोंछा कर गुज़ारा करती हैं । इसी तरह टूट कर और बिखर कर हिंद देश के मानचित्र से गायब होते जा रहे आदिवासी समाज के संघर्षों को बयान करता है श्रीलाल शुक्ल सम्मान - 2020 से सम्मानित साहित्यकार केदार प्रसाद मीणा रणेन्द्र का उपन्यास 'गायब होता देश ' । आप झारखंड में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हैं। रांची में स्थित डॉ रामदयाल मुंडा जनजातीय शोध संस्थान के प्रमुख का दायित्व भी आपने बख़ूबी निभाया है।

मुंडा आदिवासियों के दुख - दर्द की गाथा उपन्यास की मुख्य आधारशिला है । रणेन्द्र ने मुंडाओं के ऐतिहासिक विद्रोहों - तमाड़ विद्रोह , कोल विद्रोह ,सरदारी लड़ाई , बिरसा उलगुलान को बार-बार याद कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है । मुंडा समाज के माथे पर गौरव और अभिमान का टीका लगाते हुए वे कहते है कि मुंडा और शेर की गरिमा एक जैसी होती है। मुंडा जनजाति प्राचीनतम जनजातियों में से एक है, ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोल वंश के हैं । बिहार , मध्य प्रदेश , उड़ीसा त्रिपुरा तथा पश्चिम बंगाल राज्यों में इन्हे अनुसूचित जनजाति मे विनिर्दिष्ट किया गया है । इनकी मुख्य भाषा मुंडारी है। ये अपने - अपने राज्यों में हिन्दी , उड़िया और बंगला भी बोलते हैं , इनका मुख्य व्यवसाय खेती है। इसी मुंडा आदिवासी जनजाति को केन्द्र में रखकर लिखा गया कुल तीन सौ अठारह पृष्ठों का यह उपन्यास इक्यावन छोटे – छोटे अध्यायों में विभाजित है।

उपन्यास की शुरुआत कुछ इस तरह से होती है -पत्रकारिता में लंबा समय गुज़ारने वाले एक पत्रकार किशन की हत्या हो जाती है । उसकी हत्या का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। और बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से उसकी छवि एक ब्लैकमेलर, कामलोलुप और ड्रग सप्लायर व्यक्ति के

रुप में बना दी जाती है। इस बात से आहत होकर किशन के करीबी और हितैषी किशनपुर एक्सप्रेस के सम्पादक हृदयेश्वर इस हत्याकांड पर से पर्दा उठाना चाहते हैं और राजेश नामक एक युवा को यह दायित्व सौंपते हैं। राजेश यह दायित्व बड़ी ही इमानदारी से निभाता है किशन की डायरी के माध्यम से खतरनाक षड्यंत्र , आदिवासी जमीन की लूट का इतिहास और पत्रकारिता की सीमाओं का खुलासा करता है। यह उपन्यास हमें एक ऐसे इलाके में ले जाता है जो है तो हमारे आसपास ही लेकिन हमारा ध्यान कभी भी उस और गया ही नहीं। इस इलाके से गुज़रते हुए हम ना सिर्फ मुंडा आदिवासियों की स्थिति , उनकी समस्याओं और संघर्षों से बल्कि उनकी संस्कृति से भी परिचित होते हैं , और साथ ही साथ मुंडा आदिवासियों की यह गाथा सम्पूर्ण आदिवासी समाज के संघर्षों की ओर हमारा ध्यान खींच ले जाती है।

इस हत्या की गुत्थी सुलझाने की प्रक्रिया में ही उपन्यास में चित्रित सारी घटनाएँ एक-एक करके कथा के रूप में पाठकों के सामने आती रहती हैं , इसके कारण एक उपन्यास को विस्तृत फलक प्राप्त होता है ।

हमारा देश सोने की चिडियाँ यूँ ही नहीं कहा जाता था । कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला है प्रकृति का खजाना । रणेन्द्र के उपन्यास में मुंडाओं का देश भी 'सोना लेकन दिसुम'(सोना जैसा देश)जगमगाती स्वर्ण किरण , हीरों की कौंध से चौंधियाती शंख नदी , हरे सोने शाल सखुआ के वन । यही था मुंडा का सोने जैसा देश। इसी सोने जैसे देश पर ही तो भूमंडलीकरण रूपी जादूगर की काली नज़र पड़ गई । जादू के इस जाल में फँसकर न जाने कैसे — ख़्वाब सजा लिये , जिन्हें पूरा करने के लिए उसने पेड़ों की लाशें बिछा दीं । वनों की अंधाधुंध कटाई हुई । सोने जैसा देश अब गायब होने लगा। भूमण्डलीकरण की संस्कृति आदिवासी

संस्कृति को अजगर की तरह निगलती जा रही है। जैसा कि रणेन्द्र जी एक साक्षात्कार के दौरान वरिष्ठ पत्रकार रवि प्रकाश जी से कहते हैं –

"2000 में झारखंड नया राज्य बन गया । उसके बाद पता लग रहा था कि जहाँ कल तक बस्ती थी, रातों - रात उन लोगों को कहीं और पहुँचा दिया गया । किसी रियल स्टेट की कंपनी का साइन बोर्ड टांग कर उनकी ज़मीन को कंटीले तारों से घेर दिया गया । ' गायब होता देश ' में मैंने उसी कहानी को कहने की कोशिश की । "

रणेन्द्र जी अपनी बात को आग बढ़ाते हुए कहते हैं –

"आदिवासी ज़मीन की लूट के जितने भी तरीके अपनाए जा सकते थे, वे अपनाए गये या आज भी अपनाए जा रहे हैं। ..... रियल स्टेट का धंधा मुंडा आदिवासियों को तबाह कर रहा है। आदिवासी ज़मीनों के लिए आदिवासियों को गायब किया जा रहा है। .... लोगों के लालच मे कोई कमी नहीं आ रही है। .... उसे रहने के लिए घर नहीं लेना था , निवेश के लिए लेना था। ब्लैक मनी के लिए फ़्लैट खरीदे जा रहे हैं । उसके लिए जो लूट हो रही है वह ' गायब होता देश ' में आई है। "

ऐसे में आदिवासी समुदाय को स्वतः चेतना सम्पन्न होकर अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी । सत्ता व्यवस्था पर पूर्ण रूपेण आश्रित होने के बजाय स्वयं अपने अस्तित्व , अपनी अस्मिता हेतु संघर्षशील बनें । तीर धनुष से नहीं , बल्कि कलम से वैचारिक , बौद्धिक संघर्ष को अंजाम दें। ताकि आगामी योजनाओं में विकास के साथ- साथ आदिवासियों के हित को , यहाँ के मूल निवासियों के हित को सर्वाधिक महत्व दिया जाय । चूँकि शब्द हथियार की मानिंद हैं , ये शब्द हथियार बनकर आदिवासियों की रक्षा करेंगे और नगाड़े की तरह बजेंगे भी । जैसा कि निर्मला पुतुल जी कहती हैं –

' चाहती हूँ मैं / नगाड़े की तरह बजें / मेरे शब्द

और निकल पड़े लोग / अपने - अपने घरों से सड़कों पर '

रणेन्द्र के उपन्यास 'गायब होता देश ' का शीर्षक भी प्रतीकात्मकता को लिए हुए है। बहुत कुछ कहना और चेताना चाहता है हमें । सावधान रहना होगा हमें , इसी भूमण्डलीकरण रूपी जादूगर से। कहीं यह हमारे भारत देश के ' शस्य श्यामला ' सौन्दर्य को ही न गायब कर दे। रियल स्टेट और कॉरपॉरेट मुनाफ़े की जादुई छड़ी घुमाकर वहाँ कंक्रीट के जंगल खड़े कर दे।

ऐसे में वक़्त का तकाज़ा है कि भूमण्डलीकरण के सही रूप को पहचाना और अपनाया जाय । इस सृष्टि का सबसे विवेकशील प्राणी है मनुष्य। तो क्या यह उसका उत्तरदायित्व नहीं है कि अपने नन्ने मुन्नों और उनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए अपनी धरा की नैसर्गिकता को बचाये रखें ? - जो भूमि हमारे पूर्वजों ने हमें सौंपी — कम - से - कम उस प्राकृतिक सम्पदा को बनाये रखें। कोविड -19 जैसी महामारी के बाद भी इंसान अगर न सुधरा तो अब कब उसे अकल आयेगी कि जंगलों के कटने का कुछ - न - कुछ संबंध बीमारियों से ज़रूर है । और एक बात , ऑक्सीजन समुद्र के नीचे की वनस्पतियों से भी मिलती है । उन वनस्पतियों को हम कचरा डालकर नष्ट कर रहे हैं । हमें कल की कोई चिन्ता ही नहीं है। मलयाली कवि पी.के. बाल चन्द्रन की मलयालम कविता ' इनी वरुन्नोरु तलमुरयक्क ' में ये चिंता बड़ी ही गम्भीरता से व्यक्त हुई है , जो हमसे पूछती है कि ' आने वाली पीढ़ियाँ क्या अब यहाँ रह पायेगीं ? '

अपनी ज़मीन , अपनी धरा और अपने लोगों को भूमण्डलीकरण के इस काले जादू से बचाने की चिन्ता रणेन्द्र जी की लेखनी करती है। दैनिक जागरण , प्रभात खबर व आई नेक्स्ट

के संपादक रह चुके वरिष्ठ पत्रकार रवि प्रकाश से बातचीत के दौरान रणेन्द्र जी के ये विचार काफी ग़ौर फरमाने लायक हैं —

"हमने विकास का जो मानदंड तय किया है , वह यूरोपीय मानदंड या अमेरिकी मानदंड है . . . हम उपभोक्तावादी संस्कृति में अनिवार्यता को भूल गए हैं ..... आदिवासी दर्शन में मानव प्रकृति की दूसरी चीज़ों की तरह एक इकाई है . . . . वे सिर्फ अपना नहीं सोचते । पूरी सृष्टि के कल्याण की बात करते हैं । उनके गीतों में यही बातें हैं । वह हमसे ज्यादा सभ्य हैं। हमने अपना इंडेक्स खराब कर रखा है , जो उन्हें पिछड़ा मानते हैं वे दरअसल हमसे ज़्यादा समझदार हैं । उनके दर्शन , उनकी आर्थिकी , उनके इतिहास को समझने की आवश्यकता है , तभी हम ' वी द पीपल ऑफ इंडिया ' की अवधारणा को चरितार्थ कर पाएँगे। "

' विस्थापन ' आदिवासियों का सबसे बड़ा दर्द है । आंकड़ों की माने तो लाखों की संख्या में आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं । उनका घरौंदा ऐसा उजड़ा कि पुनर्वास हुआ ही नहीं । ये महानगरों में पहुँचकर घरेलू नौकर या दिहाड़ी के रूप में काम करने लगे हैं । भूमंडलीकरण से आदिवासी समाज को फायदा तो कोई हुआ नहीं है , अलबत्ता जंगल ज़रूर गायब हो गए हैं।वन - प्रबंधन योजना के तहत प्राकृतिक पेड़ों की कटाई और व्यावसायिक लक्ष्य के लिए चाय , कॉफी के बागानों को लगाया जाना , राजमार्गों का निर्माण जैसे विकास की श्रंखला से आदिवासी पुनः बेदखल होते चले गये । आदिवासियों को हमेशा ही जंगली जानवरों , भूत - प्रेतों और घुसपैठियों का डर रहा और आज तो हालात यह हैं कि जंगली जानवरों से ज़्यादा घुसपैठियों का उत्पीड़न सहना पड़ रहा है जैसा कि मलयालम फिल्म ' पुलीमुरुकन ' में नायक बने मोहनलाल कहते हैं कि - " जंगल के जानवर नहीं , शहर के इंसान हैं सबसे खतरनाक शतु । जंगल के शतु को हम

पहचान सकते हैं , उनसे मुकाबला कर सकते हैं । लेकिन शहर के इंसानों से बचकर रहना होगा । वे प्यार का नाटक कर कई सपने दिखाते हैं , लेकिन इस दिखावे के पीछे धोखा ही धोखा है "

इन्हीं ख़तरों से आगाह करने और आदिवासियों के पक्ष में आवाज़ उठाने के लिए , उन्हें उनका हक दिलाने के लिए 'आदिवासी साहित्य ' अस्तित्व में आया । फिर धीरे - धीरे पढ़े - लिखे तथा समाज के प्रतिबद्ध लोगों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के विरोध में आवाज़ तेज़ होती गई ।यही प्रयास रहा है रणेन्द्र जी का भी। उन्होंने आदिवासियों की निर्धनता , कठोर – श्रम , बेदखली, विस्थापन , उत्पीड़न, सांस्कृतिक क्षरण, घुसपैठियों का आतंक, नक्सलवादी व पुलिस की सशस्त्र हिंसा, प्रदूषण को अपने उपन्यासों की आधार -भूमि बनाया है ताकि जन-जागृति हो एवं आदिवासियों के शोषण पर रोक लगे । भले ही आदिवासी अपने छोटे से समूह में वनोपज संसाधनों से अपना जीवन निर्वाह करते , संगीत की थाप पर श्रमशील रहकर जीवन जीते और सिर्फ तीर कमान से आत्मरक्षा करते रहे हैं ।लेकिन जो प्रकृति संरक्षण , औषधियों से उपचार और प्रकृति के परिवर्तित रूपों का जो पूर्वानुमान एक आदिवासी कर लेता है उसे वैज्ञानिक , मौसम विज्ञानी भी नहीं कर पाते। काश कि नैसर्गिक जीवन और प्रकृति के सभी तत्वों को संरक्षित रखने का संकल्प समाज का बुद्धिजीवी वर्ग आदिवासियों सीख लेता ..... और शायद आने वाले समय में सीख ही ले ..... यही उम्मीद बनी रहेगी। ....

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1 . ग़ायब होता देश , केदार प्रसाद मीणा रणेन्द्र , पंगुइन बुक्स , गुड़गाँव

2 . इक्कीसवी सदी का गद्य साहित्य , सं. डॉ. दिलीप मेहरा , डॉ. हसमुख परमार , माया प्रकाशन , प्रथम संस्करण 2017

3 . भारतीय उपन्यासों में आदिवासी विमर्श , डॉ . रम्या बालन के ,

विद्या प्रकाशन , कानपुर, सं.2017

4 . वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका , आदिवासी कथा आलोचना विशेषांक , सं. डॉ . एम . फ़िरोज़ . अहमद , अलीगढ़ ।

5 . वाक् , त्रैमासिक पत्रिका , जून 2017 अंक , सं. सुधीश पचौरी , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली

6 . www.jansatta.com

7. www.apn lmatt l.com

8. www.hastakshep.com

डॉ. संध्या मेनन

अतिथि आचार्या

के.एस.एम.डी.बी.

कॉलेज , शास्तामकोटा , केरल

****

22

‘हम यहाँ थे’ उपन्यास में उत्तराधुनिक चिंतन

षिजु एस जी

इक्कीसवीं सदी के महिला साहित्यकारों की सूची में मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा आदि के साथ जुड़ने वाला एक विशेष उल्लेखनीय नाम है मधु काँकरिया । वे बदलते संदर्भ में स्त्री विमर्श के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों को भी अपने साहित्य में स्थान देकर, अपना अलग महत्व रखती हैं । समाज का यथार्थ चित्रण इनकी विशेषताएँ हैं । उनकी रचनाओं में विचार और संवेदना की नवीनता तथा समाज में व्याप्त अनेक ज्वलंत समस्याएँ जैसे संस्कृति, महानगर की घुटन और असुरक्षा के बीच युवाओं में बढ़ती नशे की आदत, लालबत्ती इलाकों की पीड़ित नारी अभिव्यक्ति आदि उनकी रचनाओं के विषय रहे हैं।

‘हम यहाँ थे’- उपन्यास मधु कांकरिया द्वारा लिखित छठा उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बाँटा गया है। उपन्यास की शुरुआत ही जंगल कुमार द्वारा दीपशिखा को लिखी हुई चिट्ठी से होती है। दीपशिखा को लगता है कि उसकी ज़िंदगी में कुछ भी सच नहीं है, सब हवा-हवाई किस्सा है या स्वप्न है। दीपशिखा दिनभर घुमक्कड़ी करती रहती है और निरुद्देश्य निर्देश देती हुई वह भटकती रहती है। पर बस एक ही पागलपन सवार रहता है कि वह लोगों के घरों में झांकने का प्रयास करती रहती है। घर चाहे सड़क पर हो या बदनुमा, मैली धुंधली बस्तियाँ हों, या फिर कोलकाता के अलीपुर, कैमक स्ट्रीट जैसे रईस इलाके की गगनचुंबी इमारतें क्यों न

हों । इंसानी दु:ख-दर्द, सुख-स्वप्न, उम्मीद-नाउम्मीद की ज़िंदा फड़फड़ाती कहानियाँ हर जगह बिक्री हुई मिलती ही हैं।

दीपशिखा की शादी टूटने के कारण माँ परेशान है। माँ उसे नौकरी भी नहीं करने देती। दीपशिखा की शादी न होने के कारण वहाँ उन्हें मानिकतल्ला स्थित जैन मंदिर के पुजारी के सुझाव पर जंतर बनवाती है, जिससे उसकी समस्या हल हो जाए ऐसा उसे लगता है। दीपशिखा की शादी हो इसलिए माँ कई पुजारी महंतों से जंतर-मंतर करवाती रहती है। परिवार के बड़े प्रयासों के बाद दीपशिखा की शादी राजीव से हो जाती है। राजीव और दीपशिखा का वैवाहिक जीवन अधिक समय तक नहीं टिक सका। घरेलू हिंसा की शिकार दीपशिखा अपने पति का घर छोड़ अपने छोटे बेटे सोनू के साथ मायके आ जाती है । यहाँ अपने वजूद को तलाशती दीपशिखा कंप्यूटर का कोर्स ज्वाइन करती है और एक जगह प्रोग्रामर की नौकरी भी पा लेती है। जहाँ दीपशिखा एक ओर खुले विचारों वाली लड़की थी वहीं उसकी माँ रूढ़िवादी और दकियानूसी सोच पर विश्वास रखने वाली ।

दोनों की सोच में ज़मीन-आसमान के अंतर के चलते घर में रोज़ क्लेश होता है । माँ और दीपशिखा के बीच में किसी-न-किसी कारण छोटा-बड़ा संघर्ष घर में होता ही रहता है। दीपशिखा को भाई बार-बार समझाने का प्रयास करता है। माँ अंधविश्वास में लिप्त होने के कारण वह दीपशिखा पर कई अंधविश्वासों का प्रयोग करती रहती हैं, ताकि उसका परिवार बस जाएँ। दीपशिखा के कारण परिवार का वातावरण बिगड़ जाता है। ऐसे में तपती धूप में जैसे घना वृक्ष राहत देता है ठीक उसी तरह दोनों के बीच एक पुल का काम करते हैं दीपशिखा के बड़े भाई अतुल । सोनू माँ और पिताजी के बीच में होने वाले झगड़े को लेकर कहता है, "पापा बाहर नहीं यहीं हैं, बहुत झगड़ा करते हैं, मम्मा के साथ...मम्मा अब पापा के पास नहीं जाएगी।" इस बात

को सुनकर रिश्तेदार ताई जी ने कहा —"ऊँच-नीच किस घर में नहीं होती, पर ऐसे घर थोड़े ही छोड़ा जाता है।"

दीपशिखा को कोलकाता के सबसे बड़े टी एक्सपोर्ट हाउस 'ए तोष एंड संस' में बतौर कंप्यूटर प्रोग्रामर की नौकरी मिल जाती है। पंद्रह सौ रुपए महीने का पगार था। अब वह बेहद खुश हो गई साढ़े तीन सौ से सीधे पंद्रह सौ । इस छोटी - सी सफलता ने दीपशिखा को आत्म गौरव के शिखर पर चढ़ा दिया। घर और ऑफिस के बीच कटती दीपशिखा की जिंदगी में एक दिन अचानक रंग भर जाता है । एक संस्था, दीपशिखा को आदिवासी संस्कृति और जीवन से अवगत कराने के लिए तीन दिनों की वनयात्रा आयोजित करती है, जिसमें दीपशिखा जाती है । आदिवासियों का जीवन और संघर्ष दीपशिखा को बदल कर रख देता है । आदिवासियों के बीच जाकर उनके संघर्ष में सहभागी बनकर दीपशिखा अपने जीवन को दिशा देती है । दीपशिखा इन आदिवासियों के बीच में शोध कार्य करने के लिए आई है। जंगल कुमार उन्हें यहाँ के 'सुंदर वन की शेरनी' कहता है। जंगल कुमार के मन में यह विचार आता है कि, "या तो मैं उसे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करूँ या उसके साथ और आगे नहीं बढ़ूँ। मेरे लिए दूसरा रास्ता ही बचा था क्योंकि आदिवासियों का विश्वास मेरे सारे जीवन की कमाई थी जिस पर हलकी सी आंच भी नहीं आने देना चाहता था मैं। " इस तरह से सत्य और ख्वाब के बीच में जंगल कुमार कई माह गुज़र चुका है।

छह महीने के बाद झारखंड में विद्रोह की चिंगारी फैल गई। मलेरिया प्रतिरोध अभियान, किसान संघर्ष समिति, महिला विकास सहयोग समिति, आदिम जनजाति विकास समिति, जल प्रबंधन अभियान, क्षेत्रीय कारीगर पंचायत अभियान, बिशुनपुर नगर विकास अभियान, अंधविश्वास उन्मूलन अभियान आदि कई आंदोलन जारी हो गए। इस आंदोलन में हिस्सा लेने

वाले कई सदस्यों, कार्यकर्ताओं को पुलिस द्वारा पकड़ाने की प्रक्रिया शुरू हो गई। वेंकटेश ग्रूप कंपनी' द्वारा गैर कानूनी भूमि अधिग्रहण करने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी जिसे सरकार सहायता दे रही थी।

उपन्यास के आखिर में लेखिका ने कुछ सुनी-सुनाई बातों का ज़िक्र किया है, जिसमें वे कहती हैं कि प्लांट मैनेजर वेंकटेश ग्रूप के मालिक का इकलौते पुत्र मिस्टर विरेंद्र मर्सिडीज गाड़ी में बैठ रहा था तब काली नागिन उसे काटती है जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है। इस घटना के बाद वहाँ कई अंधविश्वास की कहानियाँ गूँजती रहीं जिनमें कहा जाता कि फुलवा ने खुद नागिन बनकर उसे काटा है। फुलवा को भले ही अदालत में न्याय नहीं मिला लेकिन उन्होंने इस क्रिया से ज़रूर अपना न्याय हासिल किया है। बदले की भावना को लेकर कई अंधविश्वास की किवदंतियाँ अलग-अलग तरह से लोग अब कहते रहते हैं। जंगल कुमार दीप शिखा के बारे में ही सोचता रहता है। उसके कार्य के लिए वो खुद को ही ज़िम्मेदार मानता रहता है और सब कुछ खत्म हुआ है ऐसा मानता है लेकिन उसे दीपशिखा की कुछ बातें याद आती हैं वह कहती थी, " सब खत्म नहीं हुआ वक्त बदल रहा है अब चलो छोड़ दो आगे बढ़ो.....।"

'हम यहाँ थे! उपन्यास में मधु कांकरिया ने दीपशिखा और जंगल कुमार के प्यार को लेकर यह कहानी स्पष्ट की है। जिसमें आदिवासी, भूखे, पीड़ित लोगों के लिए अपनी जान की कुर्बानी देने वाली दीपशिखा और जंगल कुमार के द्वारा आज के नवयुवक और नवयुवतियों को समाज के लिए कुछ करने का संदेश दिया है। लेखिका ने अपनी कई कृतियों के माध्यम से समाज में फैली ऊँच-नीच की जड़ों पर प्रहार करने का प्रयास किया है। लेखिका भेदभाव मानने वाले लोगों की मानसिकता पर आघात करती हैं । लेखिका पाठकों को सोचने पर मजबूर करती हैं कि, अपनी रुचि के अनुसार हर व्यक्ति को आगे बढ़ने का मौका मिलना चाहिए।

मधु कांकरिया का उपन्यास 'हम यहाँ थे' की पृष्ठभूमि को दीपशिखा के इस एक वाक्य से समझा जा सकता है कि 'जंगल कुमार ! सफलता-असफलता कुछ नहीं होती । असली चीज़ होती है आपके जीवन का ताप कितनों तक पहुँचा । जीवन का अर्थ है अपने पीछे कुछ निशान छोड़ जाना ।' इस उपन्यास में लेखिका ने बड़े ही सहज और आसान भाषा में एक सामान्य स्त्री के जीवन संघर्ष को शब्दों में पिरोया है ।

कोलकाता की पृष्ठभूमि पर लिखे गये इस उपन्यास में इस महानगर की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थितियों का बखूबी वर्णन किया गया है । उपन्यास के दो मुख्य चरित्र हैं — दीपशिखा और जंगल कुमार । दोनों अलग-अलग पृष्ठभूमि और अलग-अलग शहर से आए लेकिन लक्ष्य की समानता उनको जीवन पथ पर अभिन्न बना देती है । मधु कांकरिया इक्कीसवीं शताब्दी में भी समाज में फैली ऊँच-नीच की जड़ों पर भी निगाह डालती हैं और उनपर तीखा प्रहार करती हैं । लेखिका ऐसे लोगों की मानसिकता पर तीखा वार करती हैं, जिनको ऊँचे कुल में जन्म लेने का घमंड होता है, "सुदामा ने भी ईमानदारी से अपनी भावना प्रकट करते हुए तगड़ा जवाब दिया- ' माँ जी इतना धर्म आप करती हैं और इतना नहीं जानती कि सबकी माटी एक है । खून का रंग एक है । हम लोगों को छोटी जाति का बोलती हैं पर आप हमारा काम नहीं सिर्फ चाम देखती हैं । अब आप ही बताइए कौन है छोटी जाति का? आपसे बदला भगवान ने लिया । साड़ी, बाथरूम की बाल्टियाँ, पानी की टंकी तक को आप मुझसे दूर रखती कि कहीं छुआ न जाए ।"

मधु कांकरिया ने अद्भुत ढंग से आदिवासी अस्मिता और संघर्ष को शब्द दिए हैं । प्रकृति की , मनुष्यों द्वारा हुई बेहाल व्यवस्था पढ़कर मन विचलित हो उठता है । जंगलों की अंधाधुध कटाई और जंगली जानवरों को बेघर होते देख जिस खतरे की ओर लेखिका इशारा करती हैं

उसकी अनदेखी कर भविष्य की ओर देखना संभव नहीं है । मानव मन के गहरे स्तरों को छूती यह कहानी जीवन के दर्द और सौंदर्य, प्रेम और उदासी को अद्भुत ढंग से रचती है । 'हम यहाँ थे' जीवन में व्याप्त करुणा, प्रतिरोध, संघर्ष, स्वप्न, संकल्प और समर्पण का अनुसंधान है । किसी ने कहा था कि लक्ष्यहीन जीवन भ्रष्ट और दयनीय होता है । यह जीवन सत्य धीरे-धीरे उपन्यास की नायिका या केंद्रीय अस्मिता दीपशिखा के भीतर आकार लेता है, जिसको वृत्तांत का रूप देने के लिए मधु कांकरिया ने डायरी का शिल्प अपनाया है ।

'हम यहाँ थे' एक ऐसा उपन्यास है जो जीवन के कठोर सत्य को वर्तमान के तीखे प्रकाश में परिभाषित करता है । ' खुले गगन के लाल सितारे ' , 'सलाम आखरी', 'पत्ताखोर', 'सेज पर संस्कृत' और 'सूखते चिनार' जैसे उपन्यासों से हिंदी पाठकों के दिल पर राज करने वाली मधु कांकरिया का यह उपन्यास भी पाठकों के दिल और दिमाग पर बेशक ही एक अलग छाप छोड़ेगा ।

हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। हिंदी साहित्य उदयकाल से ही समाजोन्मुख तथा मानवतावादी प्रवृत्तियों से समृद्ध रहा है। भारतीय जीवन की सभी आयामों और समस्याओं का चित्रण पूर्ण यथार्थ के साथ हिंदी साहित्य में प्राप्त होता है। इक्कीसवीं सदी की लेखिका मधु काँकरिया ने भी अपने साहित्य के माध्यम से इसी परंपरा को आगे बढ़ाया है। मधु जी के साहित्य में वर्तमान प्रश्नों की चिंता प्रमुख रूप से रही है। मधु काँकरिया ने साहित्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श पर लिखने वालों की लंबी सूची मिलती है जिन्होंने नारी जीवन के विविध रूपों का चित्रण किया है। मधु काँकरिया जी ने अपने उपन्यासों में नारी विमर्श के साथ-साथ नारी समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। मधु जी की स्त्री पात्र अपनी समस्याओं और परिस्थितियों में अपने तरीके से

संघर्ष करती हैं। मणि का संघर्ष -अविवाहित रहना, सुकीर्ति का वेश्याओं के लिए काम करना, नाबालिग लड़कियों को वेश्या बनने से बचाना, संघमित्रा का संघर्ष - कर्मकांडों की सच्चाइयों को लोगों के सामने लाना, पुष्पा भाभी का मुसलमान बच्चे का पालन-पोषण करना ये सारी बातें, घटनाएँ नारी विमर्श को व्यक्त करती हैं।

लेखिका ने नारी जीवन के सामाजिक सरोकारों से जुड़कर उनके जीवन के प्रश्नों को लेकर काफ़ी गहराई से साहित्य लिखा है। नारी जीवन की समस्याओं का केंद्र मानो उनका उद्देश्य ही हो। नारी जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत चरण में देखना है।मधु काँकरिया ने अपने साहित्य में नारी को केंद्र में रखकर उनके नारी जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है जिनमें परित्यक्ता, विधवा, वेश्या, विवाह, बलात्कार, भ्रूणहत्या आदि समस्याओं का चित्रण किया है। नारी की सामाजिक समस्याओं का अंकन यथार्थ की धरती पर करने वाली लेखिका मधु काँकरिया ने इक्कीसवीं सदी की लेखिका के रूप में अपना अलग महत्व स्थापित किया है। नारी जीवन, संवेदनात्मक सभी आयामों को उनकी कहानियों में स्थान प्राप्त तो हो चुका है। लेखिका मधु काँकरिया ने नारी प्रश्नों को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। मानो यह सभी समस्याएँ वर्तमान जीवन की प्रासंगिकता को स्पष्ट करती हुई नज़र आती हैं।मधु जी ने रिश्तों की गहराई तक जाकर उसकी पड़ताल करते हुए शोषण की समस्याओं पर चिंतन किया है। मानवीय संबंधों में रिश्तों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक रिश्ता कुछ देता है, तो कुछ छीन भी लेता है, वह रिश्ता फिर पति-पत्नी का हो, या पिता-पुत्री का पुत्र का, भाई-बहन या परिवार के अतिरिक्त पड़ोसियों का हो। प्राय: सभी रिश्तों में घुटन और छल के कारण रिश्तों का शोषण होता नज़र आता है। मधु जी ने कुछ स्त्री और पुरुष पात्रों के माध्यम से रिश्तों के शोषण की समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

भारतीय परिवारों में लंबे समय तक लड़कियों के विवाह का प्रश्न अनसुलझा रहने के कारण हैं, धन की कमी, अपितु अनेक बार प्रेमी से धोखा खाना , लड़कियों के प्रेम विवाह का विरोध होना , नौकरी करती लड़कियों का समय यों ही व्यतीत होना आदि । इस कारण वे अपने विवाह के बारे में सोच भी नहीं पातीं। जब विवाह की इच्छा इनमें जागृत होती है, तब बहुत विलंब हो जाता है । वे इस समय परिपक्व हो जाती हैं। आखिर इन लड़कियों का विवाह नहीं हो पाता। ऐसी ही अनेक अविवाहित लड़कियाँ एकाकी जीवन यापन करने के लिए विवश होती हैं । भारतीय समाज में अविवाहित नारी की स्थिति दयनीय होती है । इस प्रकार मानवीय संबंधों के रिश्तों के शोषण पर प्रकाश डालते हुए , रिश्तों के शोषण की कई समस्याओं का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है, जो यथार्थ दिखाई देता है।

षिजु एस जी

हिंदी अध्यापक

जी एच एस एस चुल्लिक्कोड

PH : 9497468287

****

23

लाल पसीना और अफीम सागर में उपनिवेशवाद का संघात:एक अध्ययन

अरुंधती मोहन

उपनिवेशवाद से तात्पर्य यह है कि कोई देश अपने अधिकार से अन्य देशों को काबिल में ला सकते हैं।अर्थात इसी प्रकार का दफन केवल राजतंत्र में ही नहीं,इसके साथ-साथ आर्थिक एवं सांस्कृतिक तौर पर भी है।शोषक सत्ता व्यापार, राजनीति, संस्कृति, मूल्य, भाषा आदि को शोषित सत्ता को दबाने के लिए ही प्रयोग में लाता है। संसार में 15 वीं सदी से बीसवीं सदी तक यूरोपीय शक्तियों ने संसार के विविध भागों में अपना संपूर्ण अधिकार हासिल किया था। उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद केवल पूंजी(capital) पर विश्वास करते थे।आधुनिक युग में उपनिवेशवाद की शुरुआत स्पेन और पुर्तगाल द्वारा समुद्र के पार नये क्षेत्रों की खोज और इन क्षेत्रों में व्यापार केंद्रों की स्थापना से हुआ। बाद में 17वीं शताब्दी में पहले ब्रिटिश साम्राज्य फ्रांसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य और डच साम्राज्य की स्थापना हुई ।उपनिवेशवाद के प्रभाव से उन देशों में पर्यावरणीय गिरावट,बीमारी का प्रसार,आर्थिक अस्थिरता,जातीय प्रतिद्वंद्व और मानवाधिकारों का उल्लंघन मौजूद है।

मॉरीशस के उपन्यास सम्राट अभिमन्यु अनत का महाकाव्यात्मक उपन्यास है 'लाल पसीना' ।प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक ने औपनिवेशीकरण के प्रभाव से पीसनेवाले

मज़दूरों की यातनापूर्ण जिंदगी का पर्दाफ़ाश किया है। ' लाल पसीना' अप्रवासी भारतीय समाज की स्वतंत्रता पूर्व स्थिति को अंकित करता है ।प्रवासी भारतीय मज़दूर एक बेहतर जीवन जीने के लिए सपनों में डूबकर देश से विदेश गए थे ।लेकिन इच्छा के विरुद्ध वहाँ की स्थिति दारुण थी , वहां जाकर नरकतुल्य जीवन बिताने को विवश बन चुके थे ।अपनी दासता से मुक्ति पाने के लिए वे निरंतर संघर्ष करते रहते थे ।अंग्रेज सरकार ने ऐसे मजदूरों को चंगुल में फंसा कर दिया। केवल धन की मोह से आम जनता स्वप्न संजोते रहे ।आर्थिक निर्भरता उपनिवेश की अवधि की एक कड़ी है ।लाल पसीना मुख्यतः इसी पर टिक पाता है ।उपन्यास की मुख्य कथा कुंदन की स्मृतियों से शुरू होती है। कुंदन युवावस्था में बिहार में अंग्रेज़ी सेना में प्रविष्ट होकर प्रशिक्षण प्राप्त कर चुका था ।अंग्रेजी सेना की मॉरीशस पर विजय के पश्चात जिस दिन कुंदन को भारत लौटना था , उसी दिन उसके हाथों से एक गोरे आदमी की मृत्यु हुई और उन्हें उम्र कैद की सज़ा भी मिली ।लेकिन कुछ गिरमिटियों की मदद से कुंदन जेल से भाग जाता है और किशन सिंह नामक एक विद्रोही से उसकी मुलाकात होती है ।कुंदन की प्रेरणा से किशन सिंह अंग्रेज नीतियों के विरूद्ध लड़ाने को गांव में बैठक का आयोजन करता है। मज़दूर आंदोलन सफलता हासिल करता है ।लेकिन जब आर्थिक स्थिति एवं जीवन शैली कुछ बेहतर होने लगी तब इसी समय बस्ती में बुखार फैलता है।

औपनिवेशिक वृत्ति के प्रभाव से उत्पन्न एक समस्या है बीमारी का प्रसार । 'लाल पसीना' उपन्यास में किशन के माता-पिता बीमारी की वजह से चल बसते हैं ।बीमारी के लिए दवा नाम मात्र के लिए भी नहीं। गाँव मृत शरीरों से भर जाते हैं। अनत जी कहते हैं - "दो सरदारों ने मिलकर उसकी लाश को उसी कुएं में फेंक दिया जिसका पानी पूरी बस्ती वाले पीते थे। रात को मशाल दिए दो आदमी कुएं में उतरे थे और किसी तरह तालिब की गली हुई लाश के एक भाग

को ऊपर किया था ।उसी रात उसे दफनाया गया था । "[3] दिन तक लोगों ने कुएं का पानी नहीं पिया। पर और कब तक? इस प्रकार लाश को भी मान्यता प्रदान करने को उच्च वर्ग तैयार नहीं है।

मानवता एवं मानव अधिकारों का उल्लंघन भी औपनिवेशिक युग का उत्पाद्य है। 'लाल पसीना' उपन्यास में मज़दूर वर्ग दासता से मुक्ति चाहता है। संविधान के अनुसार एक नागरिक को अपनी भूमि, संस्कृति, भाषा, वचन, स्वतंत्रता आदि अनिवार्य होते हैं ।लेकिन स्वतंत्रतापूर्व मॉरीशस की स्थिति मानव अधिकारों के संचालन के लिए विपरीत थी ।उच्च वर्ग के लोग जाति के नाम पर, लिंग के नाम पर और वर्ण के नाम पर निम्न वर्ग को सदैव पीड़ा देते रहे। अपनी संस्कृति और मूल्य आदि को सुरक्षित रखने को गरीब जनता संघर्ष करते रहते थे। 'लाल पसीना' उपान्यास में कुंदन, किशन एवं मदन समाज की विद्रूपतायें,रिवाज़ी पाबंदियां,सामाजिक असमानतायें आदि के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। कुंदन का पुत्र मदन सिंह पिता के ही पद चिह्नों पर चलकर विद्रोही बन गया है। मालिकों का विरोध करने के कारण उसे 7 वर्ष के लिए जेलवास भोगना पड़ता है । किशन सिंह अपनी भोजपुरी भाषा पर गर्व करता है। लेकिन गोरे के सामने अपनी मातृभाषा बोलने में वह वंचित है। मजदूरों की 3 बीघा भूमि मालिक अपने हाथ में लेना चाहते हैं तो मज़दूर उनका विरोध करता है और सरदारों पर पत्थर फेंकता है। किशन का बेटा मदन अपने देश,धर्म,जाति,संस्कृति सभी को सम्मान दिलाना अपना कर्तव्य मानता है,जिन्हें गोरे हेय दृष्टि से देखते हैं।

औपनिवेशीकरण के फलस्वरूप मॉरीशस में पर्यावरण की क्षति भी हुई। भीषण अकाल की स्थिति में भी लोग मज़दूरी करने के लिए जाते हैं। द्वीप में कभी-कभी भीषण तूफान आता है।

तूफ़ानों से सालों के कमर तोड़ परिश्रम नष्ट हो जाते हैं। इसप्रकार प्राकृतिक उपादान भी मज़दूरों को त्रस्त करते हैं।

उपनिवेशवाद का दफन केवल शारीरिक तौर पर ही नहीं मानसिक तौर पर ही है। सरकार आम जनता की पारस्परिक एकता को भी अपनी षड़यंत्र से तोड़ देना चाहते हैं ।इसके लिए एक हथियार थे धर्म एवं जाति। भारत संविधान की नीति वर्ण व्यवस्था पर आश्रित होने के नाते गोरे जातिगत प्रतिद्वंद्व को अपने साथ ले लिया और डिवाइड एंड रूल नीति के अनुसार काम करने लगे। मॉरीशस की आबादी संसार के विभिन्न लोगों से बनी है। सबसे पहले ही यहां वर्ग भेद को किसी प्रकार का स्थान नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे जाति को समाज में लाया ।गोरे शासकों ने अपने शासन को सदा के लिए बनाए रखने के उद्देश्य से मॉरीशस के गौर ईसाई लोगों को ईसाई धर्मावलंबी बनाने का प्रयत्न किया। लाल पसीना उपन्यास में गोरे शासक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर धर्म परिवर्तन करने के लिए दबाव डालते हैं।

नारी की स्थिति के बारे में अगर विचार विमर्श करें तो यह महसूस कर सकते हैं कि नारी केवल गोरों की उपभोग वस्तुएं मात्र थीं। समाज में एक दिल यानि ह्रदय से जीने के लिए नारी को अधिकार नहीं था। गोरे शासकों के नजरों से पुरुष अपनी पत्नियों को बचाते रहते थे ।लेकिन विडंबना यह है कि किसी प्रकार आंखें चुराकर रख देते हुए पर भी गोरे नारी को ढूंढ कर आ जाते हैं और उसके घर के छोटे-मोटे कामों के लिए मजदूर औरतों को घर में रखते थे। सुंदर औरतों को गृह्कार्य के नाम पर कमरे में बुलाते थे ।लेकिन उद्देश्य केवल शारीरिक भूख मिटाने के लिए है ।

लाल पसीना उपन्यास में रेमों साहब का बेटा दाऊद नामक मजदूर से उसकी बीवी को उसके पास भेजने की आज्ञा देता है" तुम अपनी औरत को मेरे पास भेजो तो तुम्हें एक गोरा

बच्चा मिलेगा ।शाम को गास्तों आएगा उसी के साथ भेज देना"१उसी प्रकार गांववाली रेखा को शासक वर्ग की शारीरिक पूर्ति से बचने के लिए गांव उसके साथ रखता है ।उपन्यास का केंद्र पात्र कुंदन रेखा की रक्षा के लिए सरदार को मार कर पुनः जेल जाता है एक प्रसंग पर लेखक का कथन है-" हमारी बहनों और बहू बेटियों का आदर होना चाहिए। पिछले महीने एक बस्ती में चार लड़कियों ने आत्महत्या कर ली थी"२ ।इसप्रकार भोगलिप्सा के कारण जिंदगी को राख बनाने को नारी विवश बन चुकी है ।केवल नारी की ही नहीं बच्चों के लिए भी मज़दूर वर्ग लडते रहते थे। उन लोगों की मांग है कि-"उन्हें विवश ना करें ।हम सभी की अंतिम मांग यह है कि हमारे बच्चों को पढ़ने लिखने का अवसर दिया जाय।"३। मजदूरों का सपना है बच्चों का भविष्य। शिक्षा का अधिकार सामान्य बच्चे का जन्म सिद्ध अधिकार है। उसमें पाबंदी लगाने को अंग्रेज सक्षम था।

औपनिवेशीकरण का असर जनता को आप्रवास करने का कारण बनकर आता है। कॉलनी का एकतरफा अर्थ यह है कि आप्रवासियों का डेरा डालना। इतिहास के पहलुओं की सहायता से यदि कॉलनी पर विचार करें तो यह महसूस कर सकते हैं कि अंग्रेजी में इसे सेट्लर कोलोनयलिज़्म कहलाते हैं। अर्थात उस प्रकार का उपनिवेशवाद है जिसमें बड़ी संख्या में प्रवासी जो अक्सर धार्मिक,राजनीतिक या आर्थिक कारणों से प्रेरित होते हैं, एक नये स्थान पर बस जाते हैं और आर्थिक, राजनीतिक और साथ ही सामाजिक पहलुओं में स्थानीय स्वदेशी आबादी पर हावी हो जाते हैं। लेकिन एक्स्प्लोइटेशन कोलोनयलिज़्म में प्रवासियों की अपेक्षाकृत कम संख्या शामिल है और मुख्य रूप से उपनिवेश देश के संसाधनों के शोषण पर केंद्रित है ।मॉरीशस सेटलर कोलोनयलिज़्म के अंतर्गत आता है। लाल पसीना उपन्यास में मॉरीशस में आ गए भारतीयों के आप्रवास का वर्णन है। आप्रवास उपनिवेशवाद से सदैव जुड़ता है। अभिमन्यु अनत ने प्रकृति

के माध्यम से प्रवासी जीवन की विडंबनाओं को शब्दों में व्यक्त करते हैं" निपाती पेड़ों से आते हुए पक्षियों के कलरव में एक टीस थी उन पक्षियों के स्वर में घोंसले के टूट जाने और बंधु बांधवों से बिछुड जाने की पीड़ा थी बस्ती में अब भी कुछ घरों के छप्पर उजड़े हुए थे तूफान में दो आदमियों की मृत्यु भी हो गई थी लेकिन पुष्पा को सामने पाकर किशन उन सभी बातों को भूल गया था पक्षियों की दर्द भरी आवाज उससे अनसुनी रह गई थी"४।

विश्व विख्यात उपन्यासकार अमिताभ घोष का महत्वपूर्ण उपन्यास है अफीम सागर। अइबिस त्रयी का पहला उपन्यास अफीम सागर में सागर ऐसी उपनिवेश से ताल मेल बिठानी वाली साम्राज्यवादी शक्तियों के सौदा का माध्यम बन जाता है। हम इस प्रकार की प्रक्रिया को कह सकते हैं 'उपनिवेश का सागर'।

उपन्यास प्रथम अफीम युद्ध की बात करता है ।उपन्यास में कई पात्रों की ज़िंदगी को एक धागे में पिरोया गया है ।कलकत्ता से यात्रा शुरु करते हुये माँरीशस तक पहूँचने वाला इतिहास है प्रस्तुत उपन्यास। इसमें 19 वीं सदी का ब्रिटिश भारत पर असर डालता है। कहानी की शुरुआत में 1830 के दिनों में दीती नाम की युवा महिला का परिचय देता है, जो भारतीय जातिप्रथा,पवित्र नारी आदि का प्रतीक बनकर आती हैं ।एक अन्य पात्र रस्कली के राजा नील रतन हलदार है। नील के व्यक्तित्व के माध्यम से पूंजीपतियों के व्यवहार एवं उच्च वर्ग का आत्म सम्मान आदि व्यक्त हैं। साथ ही ब्रिटेन,भारत,चीन आदि के बीच की व्यापार की कडी बन चुका है। नील हम कह सकते हैं कि अफीम सागर ब्रिटिश उपनिवेश का कोरा चित्र को स्वागत करता है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कारण पिसती हुई ज़िंदगी बितानेवाले निम्न जातीय लोगों का ज़िक्र उपन्यास में निहित है। कलुवा की कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है । उपन्यास के एक प्रसंग में कलुवा के बारे में उपन्यासकार कहते हैं-" बैलगाड़ी का चालक कलुवा एक विशालकाय

आदमी था। लेकिन उसने अपनी सवारी की मदद करने की कोई कोशिश नहीं की और ध्यान रखा कि अपना मुंह ढक के रखें ।वह चमार जाति से था और उच्च जाति का राजपूत होने के नाते हुकुम सिंह का मानना था कि कलुवा की शक्ल देखना दिन भर के लिए अपशकुन होगा" ५ ।इस प्रकार दलितों की स्थिति उस जमाने में भयावह थी।

उपनिवेशवाद के प्रभाव से विदेशी शक्तियों ने भारत में सौदा के लिए मार्ग अपनाने लगे ।1838 के इतिहास में अफीम व्यापार के लिए उपनिवेश से जुडी शक्तियां षड्यंत्र रचने के लिए तत्पर थीं। आइबिस नाव एकतरफा दास व्यापार के लिए माध्यम बना था, दूसरी तरफ अफीम का निर्यात इसका उद्देश्य था अफीम व्यापार के लिए भारत के सामान्य कृषक एवं मजदूरों को कुली के रूप में मॉरीशस भेजा करते थे। भारतीय किसान ब्रिटिश शासकों की इच्छा के अनुसार अफीम के पौधे लगाते थे ।इसलिए खेती से भूख मिटाने के अतिरिक्त नशा पैदा करना उसका लक्ष्य था। किसान लोग क्रमश अशिक्षित एवं अनपढ थे अपनी खेती बारी से पैसा कमाना उनकेलिये स्वप्न मात्र थे। उपन्यास में ब्रिटिश एवं अमेरिका शासकों से यह अनुमान कर सकते हैं कि शासक वर्ग अनैतिक गतिविधियों के तौर पर व्यापार ही नहीं करता है ईसाई धर्म परिवर्तन के लिए झूठी खेल रचते थे ।उपन्यास का एक पात्र बेंजमिन बर्न्हैम इसका प्रतिनिधि मान सकते हैं। उन्होंने कूट नीति की आड़ में ज़मींदार रस्कली के राजा नील रतन हल्दार से जमीन और संपत्ति छीन कर जेल भेजा करता है। उपन्यास के एक मार्मिक प्रसंग में बर्नहम साम्राज्यवाद के बारे में बातचीत करता है जैसे" और मुझे यकीन है कि साम्राज्य की ऐसा नहीं करेगा आप न सोचे कि मैं आपके देश में संसद की भूमिका से अपरिचित हूँ ।संसद?बर्न्हैम हंसा ।संसद को तो जंग खत्म हो जाने तक जंग का पता भी नहीं चलेगा। यकीन कीजिए सर अगर ऐसे मामला संसद पर छोड़ दिए जाते तो साम्राज्य होता ही नहीं"६।

अफीम सागर उपन्यास के माध्यम से अमिताभ जी उपनिवेश उत्पीड़न से त्रस्त निम्न वर्ग की दर्दनाक जिंदगी का पर्दाफाश करते हैं ।साथ ही प्रवासी जीवन की विषमता पर विचार विमर्श करते हैं ।प्रवासियों के लिए सुचारू ढंग से व्यवस्था तो नहीं है लेखक कहते हैं-" शहर की अस्वस्थ जलवायु एक और समस्या थी। क्योंकि हर बार प्रवासियों की एक बड़ी संख्या संक्रामक रोगों से मर जाती है" ७ ।बेहतर जिंदगी की अभिलाषा में वे प्रवास के लिए तैयार है ।लेकिन नगर में हज़ारों गरीब लोग थे जिनमें से बहुत से तो कुछ मुट्ठी चावल की खातिर अधमरे होने तक मेहनत करने को तैयार थे ।लेकिन सच यह है कि शासक वर्ग उन गरीब जनता को धोखा देता है ।अपनी संस्कृति को भी साथ लेकर जाने से शासक इनकार करते रहते हैं। कुल मिलकर कर सकते हैं भाषा,संस्कृति,मूल्य,अधिकार आदि मानव संबंधी सभी घटक तत्वों को निष्कासित करने की नीति अपनाना है उपनिवेशवाद का मंत्र।

अफीम सागर उपन्यास में आइबिस कश्ती पर उच्च वर्ग व निम्न वर्ग एक साथ रहते हैं। लेकिन उन्हें जहाज़ी भाई और जहाज़ी बहन की दर्जा देते हैं। जहाज़ में गिरमिट कागज़ में लदी गिरमिटियों की बोलबाला है। इन कूलियों के ऊपर शासक द्वारा किए गए शोषण के बारे में अमिताभ जी का वक्तव्य इस प्रकार है-" पीने के पानी की राशनिंग के नियम गिरमिटियों के लिए अभी भी नए और अनजान थे इस तरीके को पहले नहीं आजमाया गया था और अब जब सामने आने लगा तो ढाबुसा की व्यवस्था भी टूटने लगी दोपहर तक पीने के पानी का दिन का कोटा इतना कम हो गया था कि मर्द उन घडों के कब्जे के लिए लड़ने लगे थे जिनमें अभी भी कुछ बूंद पानी बचा था झगडू के उकसाने पर कोई आधा दर्जन प्रवासी सीढी पर चढ़ गए और तख्ते की जाली पर हाथ मारने लगे- पानी! सुनो! हमारे घड़े भरे जाने हैं!"८।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि लाल पसीना और अफीम सागर नामक दोनों उपन्यास ब्रिटिश उपनिवेश का इतिहास है।उपनिवेश से भारत में कैसी परिस्थितियों का आगमन हुए, इन सबका ठीकठाक वर्णन दोनों उपन्यासों में पा चुके हैं।अभिमन्यु अनत अपने उपन्यास के माध्यम से गिरमिटियों का आंदोलन उद्घाटित करते हैं तो अमिताभ घोष गिरमिटियों का इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।दोनों उपन्यास मानव इतिहास एवं संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।उपनिवेश से उत्पन्न सभी मामलाओं का विशद चित्रण दोनों लेखकों ने कल्पना एवं यथार्थ की समन्वय से पाठकों के समक्ष खींच रहे हैं।

संदर्भ

1.लाल पसीना,अभिमन्यु अनत,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, पृ.सं 171
2.वही,पृ.सं 149
3.वही,पृ.सं 150
4.वही, पृ सं 56
5.अफीम सागर, अमिताभ घोष,पेंगुइन बुक्स, पृ सं 96
6.वही, पृ सं 97
7.वही,पृ सं 162
8.वही,पृ सं 332

अरुंधती मोहन
शोध छात्रा
हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
मोबाइल नंबर:9746118715
ईमेल:arundhathimohan1996@gmail.com

****

24

वैशिविकता के परिप्रेक्ष्य में 'शब्द पखेरू'

डॉ. इन्दू के वी

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण को एक नए आर्थिक युग की परिभाषा में गणनीय स्थान प्राप्त हैं । अल्प विकसित और विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक दोहन के लिए बनाया गया षड्यंत्र है विश्वग्राम की संकल्पना जिसमें कमज़ोर देश फंसते जा रहे हैं । वैश्वीकरण की नयी अवधारणा ने मनुष्य को केवल उपभोक्ता बना दिया है । यह मानव को विश्व मानव का पद देने का वादा कर उनसे उनकी अपनी भाषा एवं संस्कृति को छीन लेता है । भारतीय संस्कृति में 'लोका समस्ता सुखिनो भवन्तु' का भाव निहित है लेकिन यह भूमंडलीकृत संस्कृति के विश्वमानव की अवधारणा से भिन्न हैं ।

आज इन्टरनेट ने पूरे विश्व को एक साथ खड़ा कर दिया है या अपने कब्जे में कर लिया है । इन्टरनेट को सूचनाओं और जानकारियों का विशाल संग्रहालय कहा जा सकता है । समकालीन सन्दर्भ में घर - घर में और नगरों में ही नहीं गाँवों में भी यह अपनी जगह बना चुका है और सब कुछ ऑनलाइन के माध्यम से हो रहा है । सोशियल मीडिया का प्रभाव भी बहुत है । सोशिअल मीडिया का सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव है । कार्यालयों, शिक्षा केन्द्रों और अनेक स्थानों में आजकल सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं । लेकिन इसका सबसे बड़ा उपयोग लोग मनोरंजन के लिए करते हैं । 'आज का मीडिया' नामक पुस्तक में शम्भूनाथ ने बताया है कि "आज की युवा माताएं लोरी को ढकियानूसी मानती है उनकी सलोनी संतानों की

नींद लोरी से टूट जाती है । उनके बच्चे रैप सुनकर सोते हैं । युवाओं को आज शास्त्रीय संगीत से वितृष्णा है । मईकिल जैक्सन की चीख और ऊधम उन्हें पसंद है । वे दिन भर न जाने कौन कौन से टी वी चैनलों और इन्टरनेट पर नंगी तस्वीरें, नंगे ब्लू फ़िल्में देखते है ।"1 इसप्रकार आजकल लोग विशेषकर युवा पीढी सोशल मीडिया के गुलाम बन रही है । जिससे मनुष्य ओर आत्मकेंद्रित होते जा रहे है । सामाजिक दृष्टि से मनुष्य के लिए बहुत बड़ा खतरा है यह । बिना मतलब के किसी भी कार्य को आदत बना देना विनाशकारी प्रवृत्ति है । पर यही प्रवृत्ति आजकल हो रही है ।

महानगरीय सुख-सुविधा में पले —बढे युवा वर्ग केवल अपने बारे में सोचता है, अपने ही भविष्य का स्वार्थ मोह रखता है । बहुराष्ट्रीय कंपनियों में दिन रात कठिन मेहनत करना और फिर ऐशो आराम की ज़िंदगी जीना यही अधिकांश युवा पीढी का जीवन धर्म बन गया है । वे घर में हो या समाज में किसी भी प्रतिकूल वातावरण से बच निकलना चाहते हैं । वे अपने घरवालों, सगे-संबधियों और दोस्तों के प्रति भी संवेदनहीन होते हैं । नासिरा शर्मा के 'शब्द पखेरू' उपन्यास में भी नयी पीढ़ी के दो बहिनों का चित्रण है जो भूमंडलीकरण के चंगुल में फंसे है ।

'शब्द पखेरू' में नासिराजी ने मनीषा और शैलजा नामक दो लड़कियों का मिसाल देकर नयी पीढ़ी की सोच को, उनपर मीडिया के प्रभाव को दिखाना चाहती हैं । शैलजा अपनी उच्च शिक्षा अमेरिका की किसी विश्व विद्यालय में करना चाहती है । उनकी सोच इसप्रकार है कि अमेरिका के किसी संपन्न युवा से प्रेम करके फिर शादी कर अपने भविष्य को उज्वल बनायें । इसलिए वह फेसबुक पर आनेवाली हर एक फ्रेंड रिकुएस्ट को कनफर्म कर देती है ।

शैलजा को उसकी बड़ी बहिन मनीषा इन्टरनेट बेबी कहकर पुकारती है । वह ऐसी ही है । हमेशा वह सोशल मीडिया के चारों ओर घूमती रहती है । उनके किताब सामने ही खुली

रखती है और पढ़ाई के बहाने लैपटॉप में ही फंसी रहती है, किसी से चैट करती रहती है । आजकल के छात्रों के प्रतीक के रूप में शैलजा हमारे सामने प्रस्तुत है । आजकल के बच्चे ऐसे ही है कि पढ़ाई का बहाना करके सोशल मीडिया में डूब जाते हैं । छोटे बच्चे ज्यादात्तर इन्टरनेट गेम्स के पीछे पड़े रहते हैं । कुछ गड़बड़ होने पर ही माता - पिता को इसकी खबर मिलती है । शैलजा ने अपने गूगल को 'ग्रांट पा' का नाम रखा है । इन्टरनेट के माध्यम से वह दुनिया के दूर दूर के कोने से भी लोगों का परिचय प्राप्त कर लेती है । इसप्रकार एक बार शैलजा का परिचय यू के फ्रेंक जॉन के साथ होता है । उनकी पत्नी तीन साल पहले एक दुर्घटना में मर गयी थी । इसलिए वह दूसरी शादी करना चाहती है । फ्रेंक जॉन इकसठ साल का है । उनकी बेटी स्कूल में पढ़ रही है । लेकिन शैलजा किसी - न - किसी प्रकार उनसे स्वयं मुक्त हुई । कहा कि उसके दो जवान बेटे हैं और उनसे बारह साल छोटी है । यह भी कहा कि "मैं इंडियन हूँ, सात समुद्र परवाले से शादी नहीं कर सकती । मैं तुम्हारी भावना को समझती हूँ ।"2

शैलजा की बड़ी बहिन हमेशा उसे याद दिलाती है कि आधुनिक नेटवर्क का उपयोग ही करना चाहिए मिसयूज नहीं । अनजाने लोगों से मेलमिलाप बढ़ाना उचित नहीं । शैलजा से वह कहती हैं कि इन्टरनेट पर जो उससे चाटिंग कर रहे हैं वह सही व्यक्ति है कि नहीं । जो तस्वीर फेसबुक वगैरह में लगाये जाते हैं उस तस्वीर के पीछे कौन है और वह क्या चाहता है वही जानता है । आजकल ऐसी अनेक खबरें भी बखूब देखने को मिलती हैं । कितनी लड़कियाँ और लड़के धोखा खाकर आत्महत्या कर डालते हैं । यू के फ्रैंक जॉन के जाल से उनके द्वारा बनाये गए साइबर क्राइम से शैलजा बाल - बाल बच गयी । जॉन ने अचानक एक दिन मुंबई एयरपोर्ट आकर शैलजा को फ़ोन किया कि उसे कस्टम्स वाले ने रोक रखा है । तब ही शैलजा समझ गयी

कि वह साइबर क्राइम में फंस चुकी है । कुछ दिनों के लिए वह न लैपटॉप खोली और न फ़ोन उठायी । वह डर गयी थी ।

शैलजा उत्तराधुनिक लड़कियों का वास्तविक प्रतीक है । वह अनुभव से पाठ नहीं पढ़ती । बार - बार विपत्तियों के अंदर फंस जाती है । इन्टरनेट के इंद्रजाल में फंसकर वह अपने भविष्य के बारे में भी सोचती नहीं । शैलजा आगे भी अपना चाटिंग जारी रखती है । वह अमेरिका के एक युवक क्रिस्ट एलेन जो अब पाकिस्तान में सिपाही हैं उनसे छह माह से चाटिंग करती है । वह पोलिटिक्स में एम् ए पास भी है । वह शैलजा को शब्द —पखेरू के द्वारा अपने वश में कर लिया था । अनेक सुन्दर सपने दिखाकर शैलजा को अपने प्रेम पाश में बाँध दिया था । क्रिस्ट एलेन के बल पर वह आगे की पढ़ाई किसी अमेरिकन विश्वविद्यालय में करना चाहती थी । यह जानते ही क्रिस्ट उसका फीस जमा करने के लिए तैयार हो जाता है । लेकिन सही वक्त पर शैलजा को होश आया और इस बात को ठाल दिया ।

'शब्द पखेरू'उपन्यास की कहानी दिल्ली में घटित है । दिल्ली एक महानगर हैं । सबसे अधिक अपराध, धोखेबाज़ी, सामाजिक विसंगतियां, आर्थिक घोटाले और सांप्रदायिक दंगे महानगर में घटित होते हैं । महानगर में लोगों की भीड़ हैं फिर भी व्यक्ति अकलेपन की समस्या से सबसे अधिक पीडित है । महानगर के लोगों में सबसे अधिक मध्यवर्ग के हैं जो हमेशा उच्च वर्ग की और ताकते रहते हैं । मध्यवर्ग के लोगों में दिखावा अधिक है । उनकी ख्वाहिशें हमेशा ऊपर उठने के लिए तैयार होकर रहती हैं । इसलिए उत्तराधुनिकता के जाल में महानगरों के मध्य वर्गीय लोग सबसे पहले फंस जाते हैं ।

'शब्द पखेरू' में ऐसी अनेक बातों का चित्रण किया है जो वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण की समस्या के रूप में आज समाज के सम्मुख उपस्थित है । महानगरों में काम करनेवाले

अधिकांश लोग ऐसे हैं जो परिवार के लिए जीवन भर मेहनत करते हैं, अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हैं लेकिन जीवन को जीना भूल जाते हैं । एक ही ताल में एक ही तान में आगे बढ़नेवाली ज़िंदगी में होनेवाले एक छोटे करवट भी उनके पारिवारिक जीवन को कष्टदायक बना देता है । इस उपन्यास के केन्द्रपात्र सूर्यकांत की पत्नी एकाएक बीमार हो गयी, तब सारा परिवार निराशा में डूब गया । अपनी निराशा को दूर करने के कठिन परिश्रम में सूर्यकांत यह भूल गया कि पारिवारिक जीवन में उत्तरदायित्व का ही नहीं प्रेम की भी अहम् भूमिका होती है । इसी प्रेम की कमी से सूर्यकांत वर्मा की बीमार पत्नी साधना मौत के अँधेरे में गुम होना चाहती है । उनकी बेटियाँ मनीषा और शैलजा घर के घुटन भरे वातावरण से बचकर रहना चाहती हैं । शैलजा इन्टरनेट बेबी बन जाती है । वह अपने अकेलेपन से बचने के लिए तथा अमेरिका जैसे राष्ट्रों के बाहरी चमक दमक देखकर वहाँ जाने के लिए उत्सुक रहती है । इसकेलिए वहाँ के लोगों से इन्टरनेट के माध्यम से दोस्ती करती है । अंत में धोखा खाती है ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि शब्द पखेरू उपन्यास में महानगर के एक परिवार के माध्यम से भूमंडलीकरण की वर्तमान परिस्थिति में होनेवाली समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण मिलता है । शैलजा के ज़रिए साइबर क्राइम जैसे वर्तमान युवा पीढ़ी की ज्वलंत समस्या को पाठक के सम्मुख लाया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आज का मीडिया —शम्भूनाथ , पृ सं -१३४
2. शब्द पखेरू —नासिरा शर्मा , पृ. सं -७८

डॉ. इन्दू के वी

सहायक आचार्या , हिन्दी विभाग

दूरशिक्षा संस्थान, केरल विश्वविद्यालय

तिरुवनंतपुरम, केरला, भारत

Mob. No: +919497457004

E-ma ll: lndukvku@gma ll.com

****

25

वैश्वीकरण

प्रो. एन. मोहनन

"वैश्वीकरण और असहमतियाँ" शीर्षक पुस्तक की भूमिका में जोसफ ई. स्टिग्लिस ने यह जाहिर किया था कि वैश्वीकरण विश्व जनता को उसकी वास्तविक परिकल्पना की सुविधाएँ प्रदान करने में असफल निकला है। इस पर खेद प्रकट करते हुए उन्होंने वैश्वीकरण के रूपायन के सन्दर्भ के वास्तविक उद्देश्य को स्पष्ट किया। वैश्वीकरण का वास्तविक उद्देश्य विश्व के दरिद्र राष्ट्रों को आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान करके उन्हें विकास की ओर ले आना और दरिद्रता, अभाव और भेदभावों को मिटाकर विश्व को एक गाँव बनाना था। क्योंकि विश्व में तीन प्रकार के राष्ट्र मौजूद हैं, विकसित राष्ट्र, विकासोन्मुख राष्ट्र और अविकसित राष्ट्र। संसार में विकसित राष्ट्र आठ थे फ्राँस, जर्मनी, इटली, जापान, यूके, अमेरिका और कानडा ।1997 में इनका एक संगठन बना उसका नाम है जी 8 पर अब हैं सात। 2014 में रूस उस संगठन से बाहर गया, अब उस संगठन का नाम है जी 7। इन राष्ट्रों ने मिलकर वैश्वीकरण की प्रक्रिया को शुरु किया था। इस योजना के रूपायन में स्टिग्लिस जैसे विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री को भी भाग लेने का सुअवसर मिला था। उस समय वे अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिण्डन की आर्थिक सलाहकार समिति के सदस्य थे।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं के ज़रिए अविकसित तथा विकासोन्मुख राष्ट्रों को आवश्यक आर्थिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहायता

देकर उन्हें विकासोन्मुख करना तथा विश्वराष्ट्रों का एक खुला मंच तैयार करना इसका लक्ष्य था। विश्वस्तरीय व्यापार में जो बाधाएँ थीं उन्हें मिटाकर एक खुले व्यापार क्षेत्र का गठन भी इसके उद्देश्यों में प्रमुख रहा था जिससे विश्व के हर पिछडे राष्ट्र को आगे आ जाने, अपने उत्पादनों केलिए योग्य मंडी चुन लेने तथा सबसे अधिक मुनाफा प्राप्त करने का अवसर मिले। इस बिलकुल अच्छे उद्देश्य को साकार बनाने केलिए बनाई गयी योजना है वैश्वीकरण याने भूमण्डलीकरण। योजना जब साकार हो गयी तो प्रतीक्षा के विपरीत धीरे - धीरे विकसित राष्ट्रों के स्वार्थ ने उस योजना के ऊपर अपना कब्जा जमा लिया तो विश्व को मिला उसका बुरा परिणाम। विकसित राष्ट्रों में अमेरिका का प्रभुत्व अधिक रहा। वे शनै: शनै: इस योजना का अगुआ बने। फिर सारी प्रक्रियाएँ उन्हीं के हाथों चलने लगीं। उन्होंने अपनी स्वार्थता के तहत विश्व को अपनेलिए अनुकूल मण्डी बना लेने का तंत्र रचा। परिणामत: विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्वव्यापार संगठन आदि भी अपने मूल लक्ष्य से विचलित होकर अमेरिकी व्यापार नीति लागू करने वाली संस्थाओं में रूपान्तरित हो गए। गोया कि जन हित के जिस महान उद्देश्य को लेकर वैश्वीकरण की योजना बनाई गई वह जन विरुद्ध की सिद्ध हो गयी। यह भी नहीं वह अविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के ऊपर अधिकार जमा लेने की अमेरिका की गुप्त एजेण्डा साबित हो गयी। इस लिए वैश्वीकरण आज जनविरोधी शक्तियों का षड्यंत्र मात्र समझा जाने लगा। लेकिन जनता इसकी तीव्रता से अनभिज्ञ है। उनका मानना है कि वैश्वीकरण विश्व जनता केलिए वरदान है, सब कुछ उनके सामने सुलभ हैं सिर्फ़ चुनने मात्र की ज़रूरत है।

रजनी कोठारी ने इसलिए कहा कि वैश्वीकरण एक युद्धरत लोकतंत्र है। आर्थिक उदारीकरण जहाँ कहीं भी हुआ हो उसका लाभ अमेरिका ने ही उठाया है। इसलिए नव उपनिवेश एक सुचिंतित पश्चिमी योजना है जिसका साधन शोषण है साध्य मुनाफ़ा। उपनिवेश में शक्ति का

उपयोग होता था पर नव उपनिवेश में बुद्धि का तंत्र चलता है। अत: जन साधारण को पहचान पाना मुश्किल है। वे उन्हें सोचने का अवसर भी नहीं देते। इसलिए गायत्री स्वीपाक् ने कहा कि वैश्वीकरण रेडियेशन के समान है आपको लगेगा ही नहीं कि लगा है और आप अपने को बिलकुल स्वतंत्र भी महसूस करेंगे । (Neo colonialism is like radiation. You feel it less like you don't feel it you feel like you are independent) यह एक विशेष प्रकार की उपस्थिति है साम्राज्यवादी शक्तियों की। यह पुराने ज़माने के उपनिवेश का जैसा नहीं। यह काफ़ी खतरनाक है। इसमें मानवराशी सहित संपूर्ण जगत की संपत्ति को चूस लेने की अद्भुत क्षमता निहित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी प्रत्यक्ष उपस्थिति नहीं होती। उपनिवेश में दुश्मन सामने है याने कि शोषक और उसका शोषण तंत्र स्पष्ट है। लेकिन नव उपनिवेश में प्रत्यक्षत: कोई दुश्मन या शोषक दीखता नहीं सब मित्र या हितैषी दीख पडते हैं। आम आदमी इस जाल में फँस जाते हैं और भीषण शोषण के शिकार बन जाते हैं। इसलिए नव उपनिवेश याने कि वैश्वीकरण एक सुचिंतित पश्चिमी योजना है जिसके साधन शोषण, साध्य मुनाफा है।

ये किसी राष्ट्र के आभ्यंतर कार्यों में निर्बाध रूप से प्रवेश करते हैं इसकेलिए अनुकूल नियम वे बना लेते हैं। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्वव्यापार संगठन, गाट समझौता आदि उनके सशक्त उपकरण हैं। जी 8 में वे इसकेलिए आवश्यक शर्तें बना लेते हैं। सचमुच वैश्वीकरण उपनिवेशकालीन आर्थिक नीतियों का विस्तार ही है। सिर्फ रूप-रंग में ही भिन्नता है। वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल उन्होंने निराकार रूप को अपनाकर पूरे विश्व में अपना जाल बिछा लिया है। इस निराकार रूप में विश्वमानवता के संहार की ताकत विद्यमान है। आगे हमें देखना है कि इन माध्यमों के माध्यम से वे किस प्रकार की मानव विरोधी नीतियाँ चला रहे हैं और उसका परिणाम क्या क्या है।

उदारीकरण: Liberalization

सुनते ही प्रत्येक के मन में यह विचार उभर आता है कि वैश्वीकरण कितना गुणदायक है कि उसमें उदारता है। वे सामाजिक-आर्थिक नीतियों में जो नियंत्रण पहले वर्तमान रहे उन सबको समाप्त करके इन क्षेत्रों को काफ़ी उदार बना देते हैं। यह उदारता व्यापार के क्षेत्र में है। हमें लगेगा कि देशी व्यापार की गति शीघ्र हो जाएगी और देशी अर्थव्यवस्था की वृद्धि भी। पर होता तो यही है कि देशी अर्थव्यवस्था को तहस - नहस कर डालने वाले तंत्रों को लेकर बहुराष्ट्र कंपनियाँ हमारे बाज़ार में प्रवेश करती हैं और सारा व्यापार अपने अधीन बना लेती हैं। उनके उत्पादनों के सामने टिकने की क्षमता देशी उत्पादनों को नहीं। वे तो ब्राण्डेड चीज़ें हैं, कम रुपए में बेच डालते हैं तो देशी व्यापार मंदिम पड़ जाता है और विदेशी व्यापार की वृद्धि हो जाती है। सारा धन मुनाफ़ा सहित इन बहुराष्ट्र कंपनियों को मिल जाता है। देशी व्यापार धीरे - धीरे खतम। फिलहाल मॉल संस्कार इसका परिणाम है। लोग सोचते हैं कि मॉल का अगमन अच्छा ही हुआ। एक ही जगह पर सारे का सारा सामान मिल जाते हैं कम रुपए में। इसके दूसरे पक्ष पर वे सोचते नहीं । देशी दूकानें धीरे - धीरे बंद हो जाती हैं। देशी उद्योग, कुटीर व्यवसाय सब खतम। परिणाम सारा धन बहुराष्ट्र कंपनियों को चला जता है। देशी अर्थव्यवस्था गिर जाती है तो देश को विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोश आदि से उधार लेने के सिवा और कोई रास्ता नहीं दीखता। तो जनता के साथ - साथ देश भी इन शक्तियों के गुलाम बनने लगते हैं।

भारत ने 1991 में इस उदारीकरण की नीति को स्वीकार किया था। पर उसके पहले ही इन्दिरागाँधी के समय से याने कि 1977 के बाद ऐ.एम.एफ से लाखों करोड डॉलर सोना बेचकर लेना शुरू कर दिया था। वहीं से भारत भी इन संस्थाओं से ऋण लेने लगा। उसके पहले तक भारत गुटनिरपेक्ष राष्ट्र था और उसकी नीतियों पर चल रहा था। विश्व के समाजवादी राष्ट्रों से

उसका गठबन्धन रहा था। फिर 1986 में नरसिंहराव के शासन काल में यह सारा गठबन्धन समाप्त करके जी 8 के नेतृत्ववाले गुट में शामिल हो गया भारत। मतलब गुट निरपेक्षता को छोडकर गुट की नीति को अपनाया गया। वहीं से भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गतिविधियों का नियामक विदेशी गुट याने कि विकसित राष्ट्रों का गुट जी 8 बन गया। वहाँ विश्वभर के राष्ट्र नेता मिल जाते हैं और कई शर्तों पर हस्ताक्षर किए जाते हैं। प्रत्येक हस्ताक्षर हमारे देश के तथा जनता के किसी - न - किसी स्वातंत्र्य को हड़प लेता ही रहा। गोया कि भारत पूर्णत: नव उपनिवेशवादी शक्तियों का गुलाम बन गया।

निजीकरण: Privatisation

निजीकरण वैश्वीकरण का और एक शक्तिशाली औजार है। इसके तहत सार्वजनिक क्षेत्रों, उद्योगों एवं वस्तुओं का निजीकरण किया जाता है जो साम्राज्यवाद का और एक शोषणतंत्र है। निजीकरण के केन्द्र में पूँजीवाद के विकसित एवं अमानवीय वृत्तिवाले साम्राज्यवादी शक्तियों की मेधा सक्रिय है। इन्होंने सेवा उद्योग, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में जो राहत दी जाती थी उन्हें समाप्त कर के उन क्षेत्रों को बड़े - बडे उद्योगपतियों के हवाले कर दिए। इससे सरकार का नियंत्रण समाप्त हो जाता है। ये उद्योगपति अपनी इच्छा के अनुसार जी 8 के नियमों के तहत अपनी नीति को चलाने लगते हैं। पेट्रोल, डीज़ल के सन्दर्भ में देखिए उस पर सरकार मौन है क्यों कि उसका निजीकरण हो गया। अब निर्णय लेने वाला कोई सरकार नहीं, बहुराष्ट्र कंपनियाँ हैं। वे तो TRIMS, (Trade related investment measures) TRIPS (Trade related intellectual property Rights) आदि का उपयोग करके पूरे विश्व के उद्योगों, खेतीबाड़ियों एवं उत्पादनों पर अपना अधिकार जमा ले रहे हैं। इसलिए कल तक जो सरकारी सुविधाएँ देश के आम आदमी के हक थीं वे आज बेहत्तर सेवा के नाम पर बहुराष्ट्र कंपनियों, निगमों के अधीन हैं। बौद्धिक

संपदा के क्षेत्र के निजीकरण हो जाने से सैकडों साल के ज्ञान-भण्डार जो हमारे अपने थे सब निजीकृत हो गए।

नव उदारवाद - Neo Liberalaisation

नव उदारवाद शोषण के विदेशी व्यापारिक जाल का नया अस्त्र है। यह मुख्य रूप से दस मुद्दों पर ज़ोर देता है। राजकोशीय अनुशासन, सार्वजनिक व्ययों में कटौती, कर संबन्धी सुधार, वित्तीय उदारीकरण, विनिमय दर का बाज़ार की शक्तियों द्वारा निर्धारण, व्यापार का उदारीकरण, बेरोक-टोक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, निजीकरण, विनियमनों की समाप्ति और उन्मुक्त संपत्ति का अधिकार। सुनने पर ये सब अच्छे और सुविधाजनक लगते हैं, पर छिपे हैं इनके पीछे मानव विरोधी साज़िशें।

नव उदारवाद का परिणाम आज हम भोग रहे हैं। रॉशन व्यवस्था में बड़े परिवर्तन हुए हैं। जनता को कई खेमों में बाँटकर रॉशन व्यवस्था को सीमित कर दिया गया। पेंशन में सरकार के दायित्व को समाप्त करके नयी पेंशन योजना लागू कर दी गयी जिससे सरकार का दायित्व बहुत कम हो गया। विनिमय दर का बाज़ार की शक्तियों द्वारा निर्धारण का कुचल हम भोग रहे हैं पेट्रोलियम् उत्पादन को लेकर। इस प्रकार संपूर्ण निजीकरण के तहत सरकार अपने परम दायित्व से मुक्त हो कर बहुराष्ट्र कंपनियों एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथों की कठपुतली बन गयी है। अर्थ अपहरण के अलावा इनका और कोई मकसद नहीं है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण जैसी प्रक्रियाओं से गुज़रकर नव उदारवाद संपन्न हो रहा है। मुक्तबाज़ारवाद दुनिया को आपस में जोड़ना चाहता है। इसके बाधक तत्वों को हटाने की सुदृढ़ योजना है उदारीकरण। इन दोनों का समुचित सातत्य है निजीकरण। नव उदारवाद में सरकार काफ़ी उदार है। उनकी उदारता औसत जनता को लेकर नहीं संपन्न स्वदेशी एवं विदेशी कॉरपरेटों को लेकर

है। इस प्रकार एक ऐसी वित्तीय योजना वैश्वीकरण के पीछे सक्रिय है जो आम आदमी को और अधिक दरिद्र और अमीर को और अधिक अमीर बनाने के षड्यंत्र से उपजी है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

अन्तर्राष्ट्रिय व्यापार को सुगम बनाने के लिए विश्वव्यापार संगठन की अपनी नीतीयाँ हैं। वे नीतियाँ है TRIPS, TRIMS और GATTS । ये नीतियाँ अविकसित और विकासोन्मुख देशों की मज़बूरी बन गई हैं क्योंकि ये नीतियाँ जी 8 में पारित हैं, विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने हस्ताक्षर देकर मंजूर किया है। इसका परिणाम है प्रत्येक देश के भीतर अब वर्तमान SEZ और ZEZ। ये सचमुच बहुराष्ट्र कंपनियों के हैं जो अपनी व्यापारिक पद्धतियों को शक्ति देने केलिए स्थापित हैं। शर्त के अनुसार इन संस्थाओं में क्या हो रहा है, ये कैसे चल रहे हैं इन सब के निरीक्षण करने का कोई अधिकार उन देशों को भी नहीं जहाँ ये स्थापित किए गए हैं। ये पूर्णत: बहुराष्ट्र कंपनियों के नियंत्रण में हैं। यहाँ उन देश-राष्ट्रों के आर्थिक एवं व्यापार संबन्धी नियमों केलिए कोई स्थान नहीं। दुनिया को एक "मुक्त व्यापार क्षेत्र" (Free Trade Zone) बनाना विश्वव्यापार संगठन का लक्ष्य है। मतलब अमेरिका के एकछत्राधिकार के नीचे पूरे विश्व के बाज़ारों को लाने का सुनियोजित योजना है वैश्वीकरण। इसकी प्रत्येक संस्था विश्व जनता के किसी - न - किसी अधिकार को हड़प लेने वाली है। पूरे विश्व में इन संस्थाओं के माध्यम से अमेरिका अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे हैं। इसकेलिए गढ़े गए संगठन हैं, Free trade Zone (FTZ मुक्त व्यापार केन्द्र), Export processing Zone (EPZ), Industrial parks and industrial estates, Free ports, Urban enterprise Zone, Qualifying industiral Zone, ASEAN free Zone आदि।

विदेशी पूंजी का निवेश (Foreign capital investment)

यह भी पूँजीवाद का नवीकृत रूप है। इसमें विदेश की कंपनी या पूँजीपति द्वारा दूसरे देश में स्थित कंपनी को खरीद लेते हैं या उनसे व्यापारिक संबन्ध जोड़ लेते हैं। इस व्यवस्था में जिस कंपनी के पास आधी से अधिक शेयर हो वह उस संस्था का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त कर लेता है। बहुराष्ट्र कंपनियाँ पूँजी के निवेश केलिए विशेष आर्थिक क्षेत्र को चुन लेती हैं। जी 8 में इसकेलिए आवश्यक शर्तें पारित की गयी हैं उसका परिणाम है "SEZ' (Special Economic Zone) यह उनके पूर्ण स्वामित्व में है। वहाँ किसी बाह्य शक्तियों का हस्तक्षेप नहीं होता। यह सचमुच विदेशी पूँजीपतियों की याने कि साम्राज्यवादी शक्तियों की परोक्ष उपस्थिति की निशानें हैं। इस प्रकार के आधिपत्य से जो आर्थिक निवेश होता है उससे देशी शिक्षा स्वास्थ्य, बीमा निगम, बैंकिंग, यातायात आदि पर उनका कब्जा मज़बूत हो उठता है और इन क्षेत्रों में जो देशी व्यवस्था ज़ारी रही थी उसका पतन हो जाता है। भारत में देखिए अनेक बीमा कंपनियाँ प्रवेश कर चुकी हैं, अनेक विदेशी बैंकें आ गयी हैं, यातायात के क्षेत्र में जैसे विमान कंपनियाँ, विदेशी बसें आदि आ गईं, स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक प्रकार के विदेशी मशीनें, दवाएँ आदि आ चुकी हैं। इस प्रकार पूरे देश की आर्थिक व्यवस्था को तहस - नहस कर अपनी आर्थिक नीति को ज़बरदस्त लागू करने का तंत्र चला रही हैं। हमें लगेगा कि विदेशी पूँजी के निवेश से देश की वृद्धि हो जाएगी। प्रत्यक्षत: हमें ऐसा ही लगेगा पर अप्रत्यक्ष रूप से देश बड़े कर्ज़दार बन जाता है उससे कभी मुक्ति भी नहीं होती।

बहुराष्ट्र कंपनियाँ (Multi National Enterprises)

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना हुई। विदेशी पूँजी के भरपूर मात्रा में आने की सोच में इनके सही मूल्यांकन के बिना अविकसित देश अपना दरवाज़ा खोल देते हैं। देशी संस्कृति एवं उद्योग का दोहन करके ये अपनी गुप्त एजेण्डा चलाते हैं। इनके

आधिपत्य ने एक नई पीढ़ी का निर्माण किया है जिन्हें बहुराष्ट्रीयता का गुलामीपन स्वीकार्य है। दुनिया के बहुत बडे हिस्से का भूभाग आज इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में है। इन्होंने पूरे विश्व में यहाँ तक विकासोन्मुख और अविकसित दरिद्र राष्ट्रों के लोगों की दिमाग में ब्राँड संस्कृति को बिठा दिया। इसकेलिए उन्होंने मीड़िया के सहारे विज्ञापनों का आश्रय लिया। इस कार्य में वे बहुत आगे बढ़ गए। अब लोग किसी भी चीज़ की खरीदगी के समय अपने दिलो-दिमाग में बैठ गये विज्ञापनों को ही सच मान लेते हैं और उन्हीं चीज़ों को खरीद लेते हैं। इलेक्ट्रोणिक मीड़िया का बड़ा उपयोग वे अपने व्यापार केलिए कर रहे हैं।

गाट्ट समझौता : General Agreement on Tariff and Trade (GATT)

यह एक व्यापारिक समझौता है 1947-48 में शुरू हुआ। 1978-79 तक लगभग 99 राष्ट्र इसके सदस्य बने। 1980 में अमेरिका की आर्थिक स्थिति बिगड गयी। इस आर्थिक मंदी से बचने केलिए तथा तीसरी दुनिया के देशों से बदला लेने केलिए अमेरिका ने अपनी व्यापारिक नीतियों तथा गाट्ट में परिवर्तन लाने का षड्यंत्र तैयार किया। अमेरिका की इस कूटनीति ने गाट्ट के उरुगुआई बैठक को गतिशील बनाया। इस अधिवेशन में चार मुद्दों को और जोड़ा (1) सेवा उद्योग (Service Sector), (2) बौद्धिक संपदा के अधिकार); (3) खेती (Agriculture) (4) विदेशी पूँजी का निवेश (Foreign Capital Investment)। विश्वव्यापार के खुले मंच केलिए बनाए गए इस समझौते को अमेरिका ने अपनी स्वार्थ वृत्ति का पुतला बनाया।

आर्थर डंगल गाट के डायरेक्टर जनरल बने। उन्होंने इस वैश्विक योजना को अमेरिका के अनुकूल बनाने केलिए तोड़ा-मरोड़ा। अमेरिका ने अपने मनमाने ढंग से गाट्ट समझौते की शर्तों पर हेरफेर कर डाला। डंगल निर्देशों के चालू होने पर ही अविकसित राष्ट्रों ने समझ लिया था कि जिस गाट्ट समझौते पर उन्होंने विश्वास रखा था वे सब गलत थे। अत: भारत जैसे

विकासोन्मुख राष्ट्र और विश्वभर के अविकसित राष्ट्र पुन: उपनिवेश के चंगुल में फँस गए। इन राष्ट्रों की देशी व्यापार व्यवस्था खत्म हो गयी, सब कहीं बहुराष्ट्र कंपनियों तथा नव पूँजीपतियों के मॉल स्थापित हो गए। इस मॉल संस्कार ने देशी अर्थव्यवस्था को तहस तहस कर डाला। देशी दूकानें बन्द हो गयीं। गाट्ट के कारण खेतीबाडी में विदेशी नियंत्रण आ गया, परिणामत: किसानों का पूरा स्वातंत्र्य नष्ट हो गया। बीज, खाद-पानी सब केलिए विदेशी कंपनियों पर निर्भर रहना पड़ा। अंतक बीज के कारण हर बार खेती करने केलिए इन्हें इन संस्थाओं से जुड़े रहना पड़ता है। आर्थिक संस्थाओं से ऋण लेकर खेती करना पड़ता है। खेती अगर बिगड जाय तो कोई सहायता उन्हें नहीं मिलती सारा नुक्सान खुद भरना पडता है, आखिर कर्ज के कारण उन्हें आत्महत्या करनी पड़ती है। मतलब जो किसान स्वतंत्ररूप से खेतीबाड़ी करते आ रहे थे वे पूर्णरूप से परमुखापेक्षी बन गए, आखिर खुदखुशी करने केलिए विवश भी।

गोया कि वैश्वीकरण वर्तमान सन्दर्भ में एक आर्थिक षड्यंत्र मात्र रह गया जिसका सारा फल अमेरिका भोग रहा है। खाद्य पदार्थ के क्षेत्र में, भाषा के क्षेत्र में यहाँ तक कि संस्कृति के क्षेत्र में भी इसका हस्तक्षेप विवाद का विषय अवश्य है। इन प्रतिकूलताओं से पूरा समाज संत्रस्त है। बुद्धिजीवि वर्ग परेशान है। उन्होंने विश्वभर में व्यापे हुए इन फाँसीवादी ताकतों को पहचान लिया और वे उनकी करतूतों से आतंकित हो गए। जनसाधारण अनजाने ही इन आतंकों से गुज़र रहे हैं। इस नव उपनिवेश की शक्तियों का सान्निध्य प्रत्येक सन्दर्भ में जनता महसूस कर रही है। पर मुक्ति का कोई रास्ता दीखता नहीं। साहित्य सचमुच जनसाधारण के पक्ष में खड़े होकर उनकी मुक्ति केलिए संघर्षरत माध्यम है। रचनाकार ने देश की तथा जन सामान्य की इन प्रतिकूलताओं को रचना का विषय बना कर अपना प्रतिरोध सृजनात्मक स्तर पर जाहिर कर रहे हैं। नव उपनिवेश का साहित्य याने कि उत्तराधुनिक साहित्य सचमुच इस पहचान और प्रतिरोध का

साहित्य है। इस विशाल पृष्ठभूमि पर खड़े होकर ही वैश्वीकरण की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन संभव है। इसलिए वैश्वीकरण मानवराशी के ऊपर थोपा गया आर्थिक षड्यंत्र है जिसका इलाज उसे पहचान कर उससे दूर रहना और प्रतिरोध करना ही है। इसके अलावा कोई दूजी राह नहीं। जैसे कोरोणा के बीच में उसको रोकने के सारे उपादानों को स्वीकार करते हुए जीने का अभ्यास ही उसको पराजित करने का एकमात्र उपाय है वैसे ही वैश्वीकरण के खतरों को पहचान कर उससे लड़ते हुए, प्रतिरोध करते हुए दूर रहना ही उससे मुक्त होने या बचते रहने का रास्ता है।

डॉ. एन. मोहनन

प्रोफसर एमरिट्स

कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,

कोच्ची – 22

मो. 9447056148

****

26

आधुनिकोत्तर स्थिति गति

डॉ.षीला टी नायर

उत्तराधुनिकोत्तर स्थिति गति में आज के सन्दर्भ को व्यक्त करने का प्रयास है । "उत्तराधुनिक"शब्द में आधुनिकता का सम्बन्ध परिलक्षित होता है । आधुनिकता का प्रवेश आधुनिक काल में हुआ । "परिवर्तन" मनुष्य जीवन की प्रकृति है । हरयुग में यह परिवर्तन हुआ है । आधुनिक युग में मनुष्य की सोच एवं व्यवहार में तेज़ी से परिवर्तन हुआ । इसी को आधुनिकता का नाम दिया गया । जीवन में आधुनिकता के प्रवेश के कई कारण रहे हैं । जिसमें सबसे प्रमुख भूमिका विज्ञान की है । वैज्ञानिक स्थिति-गतियों ने मनुष्य के जीवन में बहुत बडा परिवर्तन ला दिया है । विज्ञान ने मानव प्रगति के अनगिनत विकास मार्ग खोल दिये । आज मनुष्य सभी सुख-सुविधाओं से लैंस है । आधुनिकता की अगली कडी के रूप में "उत्तराधुनिकता" का प्रयोग होता है । उत्तराधुनिकता पर विचार करना या इसकी समीक्षा करना ही "उत्तरराधुनिक विमर्श" है ।

पाश्चात्य देशों में आधुनिकता का प्रभाव पहले दिखाई दिया । उसके कितने वर्षों बाद भारत में आधुनिकता पहूँची । आधुनिक जीवन रीति और सोच को अपनाने में भी भारतीयों को समय लगा । भारतीय संस्कृति, सभ्यता और जीवनमूल्यों की जडें इतनी मजबूत थी कि उसे उखाड कर दूसरे को रोपित करना आसान न था । लेकिन बदलता समय अपना रंग बिखेरे नहीं रहता । उत्तराधुनिक सन्दर्भ में जीवन मूल्यों और जीवन रीति में बहुत बडा परिवर्तन परिलक्षित

होता है । इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता । काल इसका साक्षी है कि हर पीढी परिवर्तन की ओर अग्रसर होती है ।

भारत का जीवन दर्शन भिन्न रहा है । सुख-लोलुपता का त्याग करना हमारा जीवन-आदर्श रहा है, जबकि विज्ञान, सुख-भोग की लालसा को जगाने की कुंजी है । दूसरों के लिए सब कुछ लुटा देना-भारतीयों का दर्शन रहा तो उत्तराधुनिकता पूँजी संचय का मूल है । यही कारण रहा कि प्रारम्भ में बदलते हुए आधुनिक सन्दर्भों को पचाना भारतीयों के लिए मुश्किकल रहा । लेकिन इक्कसवीं सदी की युवा पीढी ने इसका स्वागत किया है । क्योंकि परिवर्तित स्थितियों को स्वीकारने से ही उनकी भौतिक प्रगति सम्भव है ।

हिन्दी साहित्यकारों ने उत्तराधुनिकता के अच्छे और बुरे पहलूओं को हमारे सामने रखने का प्रयास किया है । पूँजीवाद ने हर युग में अलग-अलग तेवर दिखाये हैं । लेकिन आज पूँजी सर्वेसर्वा बन गयी है । आज के जीवन की आधारशिला पूँजी है । प्राचीनकाल में भारत में व्यक्ति का गुण, उसकी महानता का मापदण्ड होता था । वही आज, व्यक्ति के पास जितनी पूँजी होगी समाज में उसका उतना ही रुतबा बढ़ेगा । इसी सोच ने आज व्यक्ति को अधर्मी बनाया है । आज पैसेवाला ही महान है, चाहे वह गलत रास्ते की कमाई ही क्यों न हो । इस सोच के कारण भारतीयों के नैतिक मूल्यों में बहुत बडा ह्रास हुआ है । नैतिकमूल्यों का पालन करते हुए पैसा कमानेवाला आज समाज में अकेला पड़ जाता है । चारो ओर का माहौल अनैतिकता की ओर बढने के लिए मजबूर करता है । इसके विरूद्ध कार्यवाही के लिए नियम, किताबों में भरे पडे हैं, लेकिन उसका पालन न के बराबर होता है ।

भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण के इस दौर में एक दूसरे की संस्कृति इस कदर घुलमिल गई कि इसमें अपनी संस्कृति कहीं गुम हो गई । फिर से अपनी खोई हुई स्थानियता की खोज

आज की विशेषता है । व्यक्ति, प्रादेशिक संस्कृति को संजोए रखने की आवश्यकता को महसूस कर रहा है और कुछ प्रयास भी इस क्षेत्र में हो रहे हैं । लेकिन उस प्रयास में अपनी मिट्टी की खुशबू कहीं खो गई है । वैश्विकता, भारतीयता जैसे विशाल सोच, प्रादेशिकता की सोच में सिमट रहा है । यह संकुचित भाव अलगाव को पोषित करेगी । हमें चाहिए कि प्रादेशिकता को बनाये रखते हुए सम्पूर्णता में विश्वास रखें । आज हमारी राजनीतिक, धर्मिक और सामाजिक स्थितियाँ प्रादेशिकता की संकुचित सोच की ओर संकेत दे रहे हैं । इस सोच में यदि प्रादेशिक संस्कृति को बचाये रखने की विशाल सोच होती तो अच्छी बात होती लेकिन इसमें संकुचित स्वार्थ की भावना ठीक नहीं । इस सन्दर्भ में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार का उल्लेख करना समीचीन होगा । भारत के कई राज्य केवल अपनी भाषा के प्रयोग पर अडे हुए है । ऐसी सोच कुछ लोगों के लिए स्वार्थपूर्ति का पायदान हो सकती है लेकिन यह साधारण जनता के विकास मार्ग को अवरुद्ध करेंगी ।

बाज़ारवाद ने हमें स्वर्गीय दुनिया की सैर करवाई है । भारत का व्यापारिक स्तर इसके कारण बहुत विकसित हुआ है । लेकिन यह भी सत्य है कि मल्टीनाशनल कम्पनियाँ इस कदर यहाँ फैल गई कि हमारे छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों का अस्तित्व ही मिट गया । बाज़ारवाद के खतरों को आज हमने बखूबी पहचान लिया है । इस कारण आज स्थानीय वस्तुओं को एक अलग पहचान प्रदान करते हुए बाज़ार में प्रस्तुत किया जा रहा है और बेचा जा रहा है । इससे स्थानीय वस्तुएँ दुनियाभर में पहूँच रही है और यहाँ के लोगों को इसका अच्छा खासा दाम भी मिल रहा है । प्रादेशिक या आदिवासियों के आभूषण आज फैशन के रूप में इस्तेमाल किये जा रहे हैं और आधुनिक-परस्त लोग इसे खरीद रहे हैं । स्थानीय विशेषताएँ आज पर्यटकों का मुख्य केन्द्र बन

गया है । इससे ग्रामीण जीवन का चाल एवं रीति बदल रही है । ग्रामीणों में इतनी जागरूकता होनी चाहिए कि कोई उनकी निष्कलंकिता का गलत फायदा न उठा पावें ।

मीडिया का प्रभाव हर जगह दृष्टिगोचर हो रहा है क्योंकि आज सब कुछ मीडिया पर निर्भर है । सूचनाओं को आम-आदमी तक पहुँचाना हो तो विज्ञापन रूपी सीढ़ी के बिना सम्भव नहीं । या यों कहा जा सकता है कि विज्ञापनों ने अपने चंगुल में मीडिया को जकड़ लिया है । विज्ञापन की सोच में आज मनुष्य खाता-पीता, उठता-बैठता है । पत्र पढो या दूरदर्शन चानल देखो, सब में मुख्य मुद्दा कम और विज्ञापन ज्यादा है । फिर भी मनुष्य उसके पीछे भागता है । कारण साफ है कि आज समाज ने एक ऐसी सोच पैदा कर दी है कि यदि एक व्यक्ति को दुनिया भर की सूचना या खबर की जानकारी नहीं है तो उसे "अनाडी" मान लिया जाता है । फलस्वरूप वह अपने जीवन का अधिक समय मोबाइल, इंटरनेट या कम्पयूटर के आगे व्यतीत करता है इससे स्वयं सोचने और कार्य करने की क्षमता घटती जा रही है । लोगों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध कम होता जा रहा है । व्यावहारिक जीवन से कोसों दूर होता जा रहा है । इनके उपयोग में मानसिक प्रयास बहुत हो रहा है लेकिन शारिरिक श्रम बहुत कम । भविष्य में यह प्रवृत्ति एक अलग तरह के मुनष्य वर्ग का रूपायन करेंगी ।

नारी की स्थिति-गति उत्तराधुनिक दौर में बहुत बदल गई है । वह विविध क्षेत्रों में उन्नति कर रही है और बहुत सी नारियाँ स्वतन्त्रता से कार्य कर रही हैं । इसमें शिक्षा का बहुत बडा योगदान रहा है । आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता ने उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न किया है । लेकिन आज भी बहुत सी स्त्रियों में अशिक्षा और आर्थिक तंगी है । ऐसी स्त्रियों की स्थिति कष्टप्रद है । नारी के स्वतन्त्र होने के साथ ही उसकी सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लग गया है । स्त्री पर दरिंदगी करने की मानसिकता कुछ पुरुषों में क्यों बढ़ रही है? इस मानसिकता का शास्त्रीय अध्ययन आवश्यक

है । आधुनिक पढ़ी-लिखी नारियों का भी यह कर्तव्य है कि वह स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखल न बने । नारी की शक्ति नाश की ओर नहीं सृजन की ओर होनी चाहिए ।

दलित चेतना ने निचले तबके के लोगों को अपने अधिकारों के लिए सचेत किया है । उत्तराधुनिकता ने जाति-पाँति के भेदभाव को पाटने का सराहनीय कार्य किया । विशेषकर नई पीढ़ी में जाति भेद की सोच बहुत कम है । दलित प्रगति के लिए अधिकारियों की ओर से कई मार्ग खुले हैं । उन्हें इसका फायदा उठाना चाहिए । आरक्षण के जरिए उन्हें कई अवसर प्राप्त हो रहे हैं । उनको इन अवसरों को प्रतिबद्धता के साथ निभाना चाहिए । ऐसा इसलिए कहा जा रहा है कि यदि आरक्षण के जरिए आपको स्कूल-कॉलेजों में भर्ती मिल रही है तो उसे मात्र छात्रवृति का जरिया न बनाकर ज्ञान प्राप्ति का साधन बनाइए और उस चेतना से दुसरों को भी चेताने का प्रयास कीजिए ।

आदिवासी समाज की सबसे बडी दुर्गति आधुनिक काल में हुई है । धरती के हकदार तो सही मायने में आदिवासी ही है । जो लोग आदि काल से जिस भूमि पर वास कर रहे हो, वही आदिवासी हैं । अपने आप को सभ्य माननेवाले लोगों ने आदिम जाति के सभी हक को छीन लिया और उन्हें समाज की मुख्य धारा से अलग कर दिया । आदिवासियों के संसाधनो पर कब्जा कर लिया । जीवनानुभव का गहरा ज्ञान आदिवासियों को है । वे अपनी ज़मीन पर अपने तरीके से जीवन बसर कर रहे थे । लेकिन मुख्य धारा के लोगों ने उनकी जमीन को हडप कर उन्हें भूमिहीन बना दिया है । पढ़े-लिखे लोगों ने उनकी चिकित्सा पद्धतियों को उनसे चुराकर अपने-नाम "पेटेन्ट" बना लिया । शैक्षिक रूप से उन्हें जागरूक बनाने का कार्य बहुत कठिन है, कारण यह है कि आदिवासियों के प्रत्येक कबीले में अलग-अलग भाषाएँ है । आम-बोली से आदिवासी अवगत नहीं है । उनके अपने कबीलो का व्यक्ति पढ-लिखकर अध्यापक बने तो ही शिक्षा के

स्तर पर उन्हें शक्त बनाया जा सकता है । ऐसा होने में बहुत वक्त लग सकता है । बहुत से आदिवासी ऐसे है जो मुख्य धारा में जुड़ने से कतराते है । इस कारण वे बाहरी ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं । वर्षों पहले चायबागानों में काम करवाने के लिए कई जगहो से आदिवासियों के ले आये थे । उन लोगों से कडी मेहनत करवाई गयी लेकिन उनका जीवन स्तर पशुओ से भी बदतर रहा । वे "टी ट्राइब" के नाम से जाने जाते है । उन लोगों में कुछ जागरूकता आई है । अब वे अपने अधिकारों की माँग कर रहे हैं । आदिवासियों में पुनर्वास की समस्या बहुत तीव्र है । आज इन आदिवासियों के हित में सक्रियवादी आवाज उठा रहे है ।

आज एक और वर्ग चेता है, वह है - किन्नर । नरवंश की उत्पत्ति से ही स्त्री, पुरूष और किन्नर रहे है । पुराणों में भी इसका उल्लेख रहा है । भारत में उपनिवेशिक सत्ता के पदार्पण से किन्नरों की दुर्गति होनी शुरू हो गयी । उन्हें समाज से अलग समझा जाने लगा । हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और हास्यास्पद लोगों के रूप में उनकी गणना की जाने लगी । भारत के प्रत्येक राज्य में किन्नरों की समस्या अलग-अलग रूप में हैं । उन्हें देखने और समझने की दृष्टि हर राज्य में अलग-अलग है । उत्तर भारत में ये लोग गा-बजाकर जो पैसा मिलता है उससे अपना गुजारा करते है । कई बार आन्ध्राप्रदेश कर्नाटक में रेल यात्रा के दौरान किन्नर, यात्रियों से पैसा ऐठंते हुए दिखाई देते है । केरल में उनकी अलग स्थिति है । किन्नरों के शारीरिक गठन के लिए वे जिम्मेदार नहीं है न ही यह कोई रोग है? न वे पागल है । यह एक ऐसा वर्ग है - जो जन्मते ही अपनो से दुत्कार प्राप्त करते है । वास्तव में उनका भी अपना एक अस्तित्व है । उनके हित में 2014ई.को जो नियम पारित हुआ वह उनके लिए बहुत बडा आश्वासन रहा । केरल सरकार भी इस क्षेत्र में साराहनीय कार्य कर रही है. इनमें से कुछ किन्नर अपना जीवन बसर करने के लिए देहव्यापार

करने के लिए मजबूर है । यदि उनको जीवन साधन जुटाने के मार्ग मिल जाए तो उनमें निहित शक्ति को सकारात्मक रूप से समाज के लिए प्रयोजनप्रद बना सकते है ।

दुनियाभर में विकास के नाम पर पर्यावरण पर जितना कहर ढाया गया उतना इससे पहले कभी नहीं हुआ । प्राकृतिक स्रोत नाश के कगार पर है । विकास को इतना न बढाओ कि वह हमें ही निगल जाए । जलवायु और जलस्रोतो की स्थिति दयनीय है । "पर्वत नहीं तो नदी नहीं" इस सच्चाई को जानते हुए भी मनुष्य उसे अनदेखा कर रहा हैं । आज पर्वतो को ध्वस्त करके हवाई अड़डे बनाये जा रहे है । खेती को आगे बढाने के लिए जमीन को बचाए रखना होगा लेकिन जमीन पर आबादी कब्जा करती जा रही है । अब तक तो जल है लेकिन मलिन है । प्लास्टिक के मालिन्य से धरती बंजर बनती जा रही है । कई विदेशी देशों ने मालिन्य संस्ककरण के तकनीक ईजाद किये है । भारत में उन तकनीकों को अपनाना चाहिए । सिंगपूर जैसे देशों को हम नमूना बना सकते है । निजी संस्थाओ और सरकारी संस्थाओ को इस क्षेत्र में आगे आना चाहिए । मनुष्य के कई क्रिया कलाप नदी जल को गन्दा कर रहे है । इसके लिए हमारे धार्मिक अनुष्ठान भी जिम्मेदार है । पेइन्ट और विषैली रंग लगी मूर्तियों को नदी में बहाते है । वर्षों पहले नदी-जल को साफ करने केलिए ऐसा अनुष्ठान किया जाता था । केवल चूने का इस्तेमाल करके भगवान की मूर्तियाँ बनाई जाती थी और उसे नदी में बहा दिया जाता था । चूना गन्दे पानी को साफ करता था यही इसके पीछे निहित-हित भाव था । यही रिवाज आज नदी को दुगुना गंदा कर रहा है । आज की श्रद्धा अंधी है । पहले ऐसा क्यों किया जाता था इसके अर्थ-को समझे बिना अनुकरण करते जा रहे है ।

राजनीतिक स्तर पर भी राष्ट्रीयता की सोच प्रादेशिकता में बदल गई है राजनीति में विघटन की स्थिति है । इसके कारण आमलोगो का विश्वास इससे उठाता जा रहा है देश के कई

हिस्से आतंकवाद और नक्सलवाद के चपेट में है । देश के लोग आतंकवादी या नक्सलवाद के चपेट में है । देश के लोग आतंकवादी या नक्सलवादी क्यों बन रहे है इसकी वजह खोजने की बिलकुल कोशिश नहीं होती है । बन्दूक की नोंक पर खतम करने की कोशिश सही समाधान नहीं । उन्हें शिक्षा एवं जीवन यापन के साधन प्राप्त कराने चाहिए । उन्हें व्यस्त रखने लायक व्यवस्था लानी चाहिए । उन लोगों के जीवन की समस्याओं की जडों तक पहूँचने की आवश्यकता है ।

हमारे देश की उत्पादन क्षमता बढ़ी है लेकिन मिलावट और मुनाफाखोरी ने हमारी क्षमता को मिट्टी में मिला दिया है । खेती और व्यापार में सच्चाई का सम्बन्ध कम होता जा रहा है । किसी भी प्रकार लाभ प्राप्त करने के लिए ऐसी मिलवट कर रहे है कि हमारा स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है । यह केवल मानव जाति के लिए ही नहीं, सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं के लिए हानिकारक है । उत्तराधुनिक दौर में निश्चित रूप से आम-जनता का जीवन सुखमय बना है । गरीबी में कमी आई है । खाद्यान्नों की आपूर्ति हुई है । लोगों में शैक्षिक स्तर बढ़ा है । खेती के क्षेत्र में नयी तकनीक अपनायी गयी है । आमजनता के सभी वर्गों में चेतना जगी है । अंधविश्वास कम हुआ है । स्वच्छता और स्वास्थ्य की ओर ध्यान गया है । वास्तव में उत्तराधुनिक हिन्दी साहित्य में आज की स्थिति गतियों का विमर्श प्रस्तुत किया गया है । यही साहित्य की प्रतिबद्धता का परिचायक है

Dr. Sheela .T. Nair
Assistant Professor
Department of Hindi
N.S.S College, Pandalam.
Phone No : 9495507110

****

27

'विज़न' उपन्यास में नारी और समाज की वैश्विक दृष्टिकोण

डॉ. लीना बी.एल

वर्तमान नारी घर, परिवार, समाज, देश के साथ—साथ वैश्विक शक्ति के रूप में उभर रही है । हिंदी के सशक्त उपन्यास नारी कथा से वंचित नहीं है । इस वैश्वीकृत युग में नारी का सशक्तिकरण तो हुआ मगर कहीं उसका घुटन आज भी बनी है । आधुनिक लेखिकाओं ने नारी जीवन के विविध आयामों को कुरेदा है । नारी विमर्श एक ओर नारा है, दूसरी ओर टंकार है तो तीसरी ओर गंभीर चिंतन और चिंता का विषय है । उस शोषण से नारी को मुक्त करने के लिए कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, शिवानी अग्निहोत्री, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ आदि लेखिकाओं ने संघर्षशील नारियों को चित्रित किया है । समसामयिक युग में नारी दो प्रकार की है — एक वर्ग आदिम समाज की तरह बंधनों में जगड़कर जीवन व्यतीत कर रहा है । दूसरी ओर मानवाधिकार के लिए संघर्षरत नारी का विद्रोही रूप तिलमिला उठता है । लेकिन एक ओर वर्ग भी है जो संघर्षरत होते हुए भी अपने संस्कारों को खोना नहीं चाहती । 'विज़न' नामक इस उपन्यास में डॉ. नेहा ऐसी एक पात्र है । लेकिन इसी उपन्यास के डॉ. आभा विद्रोहिणी बनकर अपनी अस्मिता और अस्तित्व कायम रखना चाहती है ।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने समय और समाज को ईमानदारी से अपने साहित्य में प्रस्तुत किया । 'विज़न' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है । यह शीर्षक उपन्यास के कथ्य को व्याख्यायित करता है । प्रस्तुत शीर्षक अंग्रेज़ी अर्थ ध्वनित करता है । इस उपन्यास के लिए व्यंजना प्रधान अर्थ ही उचित है । यहाँ विज़न आँखों की रौशनी या दृष्टि से ज़्यादा समाज के दृष्टिकोण को अधिक मुखरित करता है । इसमें लेखिका ने चिकित्सा क्षेत्र की व्यावसायिकता का पर्दाफाश किया है । इसमें सम्पूर्ण भारतीय समाज को खुलकर हमारे सामने प्रस्तुत किया है । समकालीन भारतीय ज़िन्दगी का यथार्थ अंकन उपन्यास में हुआ है । इसमें दिल्ली और आगरा की महँगी ज़िन्दगी, शिक्षित वेतनधारी मध्यवर्ग, नई पीढ़ी का शोषण, गन्दी भ्रष्ट राजनीति, घोर सामाजिक व्यवस्था, विद्रोही नौकरी पेशा नारी आदि को चित्रित किया है ।

आज अँधा वह नहीं है जो देख नहीं सकता बल्कि वह है जो देखते हुए भी देखना नहीं चाहता । शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार वर्तमान कुत्सित व्यवस्था की देन है । योग्य डोनेशन देकर कोर्स में भर्ती पाता है । और बिना रूचि के अपनी पढ़ाई पूरी करके अपने प्रोफ़ेशन में नकामयाब सिद्ध होते हैं । इस उपन्यास में डॉ. शरण अपने बेटे अजय को डोनेशन देकर मेडिकल कॉलेज में प्रवेश दिलाता है । नेत्र चिकित्सा का डॉक्टर बनता है । पुत्रवधू नेहा प्रतिभावान होते हुए भी आगे की उसकी पढ़ाई बंद करके पुत्र को उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजने का प्रयत्न करती है । जब एक मरीज़ की मृत्यु होती है तो नेहा को इसकी ज़िम्मेदारी लेने को कहकर अजय जान छुड़ाने का प्रयास करता है । डॉ. आभा और डॉ. मुकुल के बीच झगडा होने के कारण दोनों अलग होते हैं । उच्च और प्रतिष्ठित व्यवसाय का क्षेत्र भी स्त्री के लिए सुरक्षित नहीं हैं । इस उपन्यास में लेखिका ने हमारे देश का कानून, जो अँधा है उसका चित्रण किया है । लेखिका नेत्र

चिकित्सा के ज़रिये समाज की आँखों में ऐसा लेंस रखना चाहती है जिससे हम सामाजिक विद्रूपताओं को स्पष्टता से देख सकें ।

इस उपन्यास में विद्रोही नारी की भावना कूट-कूट कर भरी है । 'विज़न' उपन्यास की नायिका नेहा समस्त शोषण सहती है और उसका विद्रोह भी करती है । वह खुद अपने लगन और परिश्रम से डाक्टोरी हासिल करती है । वह अजय से शादी नहीं करना चाहती मगर माँ-बाप की आज्ञा मानकर उसे शादि करनी पड़ी । डोनेशन देकर डॉक्टर बने अजय की काबिलियत वह जानती थी । लेकिन वह अपने को पति से भी श्रेष्ठ मानती है । ऑपरेशन थिएटर में घुसते समय वह अजय से कहती है — " दिस इस माई ओन टाइम, माय ओन । आओ अजय असिस्ट कराओ । " वह अपनी काबिलियत दिखाती है । सफ़ल ऑपरेशन करके वह डे केयर मरीजों को जल्दी भेजती है, रोकती नहीं । लेकिन अपना ससुर डॉ. आर. पी शरण जो एक नेत्र चिकित्सक है, इस पर आलोचना करता है । मगर नेहा बहुत सशक्त नारी है, वह विद्रोह करती है । वह अपने निर्णय पर अटल रहती है । वह अपनी डोक्टरी ज्ञान का सही ढंग से उपयोग करने का संकल्प लेती है । स्त्रियों के प्रति जो शोषण समाज में हो रहे हैं, उसका विरोध ही नहीं बल्कि उसका संघर्ष भी करती है । एक ओर शिक्षित नारी पात्र डॉ. आभा अपनी नौकरी की परवाह किये बिना भ्रष्टाचार, राजनीति, बलात्कार आदि के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद करती है । उसे परिवार और समाज से यंत्रणा सहनी पड़ती है । चिकित्सा क्षेत्र में होनेवाले अन्याय और धोकेबाज़ी देखकर अपने सहकर्मियों के प्रति घृणा पनपती है । वे पुरुष समाज के सामने चुनौती बनकर खड़ी होती है । अपने विभाग के समस्त लोग उनका दुश्मन बन जाते हैं । लेकिन नेहा में एक ऊर्जा भर आती है और वे निराश और हताश नहीं होती है ।

इस उपन्यास में चित्रित दोनों नारियों को समान प्रकार की यंत्रणा झेलनी पड़ती है । दोनों सफल नेतृत्व क्षमता रखनेवाली नारियाँ हैं । डॉ. नेहा समाज के डर से अपने आपको पीछे की ओर खींचती है लेकिन डॉ. आभा अपने निर्णय पर अटल रहती है और पूरी ताकत से लडती है और सफल भी बन जाती है । ये दोनों सफल नेतृत्व रखनेवाली स्त्रियाँ हैं । अपने प्रोफ़ेशन में डॉ. नेहा पूरी बौद्धिक ईमानदारी निभाती है । 'शरण आई सेण्टर' के नाम को बचाने के लिए वह काफ़ी प्रयास करती है । वह नई तकनीक सीख लेने के लिए उत्सुक है । डॉ आभा भी नेतृत्व गुण रखनेवाली नारी है वह सरोज नामक एक मरीज पर हुए बलात्कार से व्यथित होकर उसे इन्साफ देने के लिए डॉ. अनुज वर्मा पर एफ. आई. आर दर्ज करती है । डिपार्टमेंट के खिलाफ अकेली लड़ती है । मैत्रेयी जी के सभी नारी पात्र स्वत्व युक्त है । बौद्धिक उत्कर्ष रखनेवाली एवं अस्तित्व बोध रखनेवाली व्यक्तित्व के रूप में उनका चित्रण हुआ है । इस उपन्यास में लेखिका ने चिकित्सा क्षेत्र में होनेवाली व्यावसायिक वृत्ति को उजागर किया है और उसे समाज से हटाने का आग्रह भी प्रस्तुत करती है । नेहा अस्पताल में अपने लिए एक स्थान बनाने के लिए संघर्षरत है । वह जुझारू होकर अपना अस्तित्व बनाना चाहती है । नेहा के पति और ससुर उसके होशियारी से डरते हैं । वह उन दोनों का विरोध भी करती है, लेकिन उसे संस्कारों की चिंता थी जो उसे पीछे खींचती है । डॉ. आभा परंपरागत मान्यताओं का विरोध करती है । अनैतिक पाखंडी पुरुषों से प्रतिशोध लेने के लिए वह तिलमिला उठती है । वह अपने व्यक्तित्व पर अड़िग है । वह पति की अनुगामिनी नहीं बल्कि सहगामिनी रहना चाहती है । जब यह संभव होने की गुंजाईश नहीं होती तब डॉ. आभा तलाक के लिए तैयार होती है । पुष्पाजी के स्त्री पात्र दोयम दर्जे से मुक्त होना चाहती है । डॉ. आभा बहुत सचेत है, इसलिए वह पति के दबाव में आकर अपने व्यक्तित्व को खोना नहीं चाहती । चिकित्सा क्षेत्र में वह अपनी दक्षता एवं कुशलता स्थापित करती है जो

नेहा के लिए संभव नहीं होती है । स्त्री के साथ होनेवाले अमानवीय कुकृत्यों का तीक्ष्ण विरोध वे करती है । लेखिका ने इस उपन्यास में नारी का अटूट दृष्टिकोण सामने रखा है ¬— स्त्री द्वारा अपने अस्तित्व के प्रति जागृत होकर खुद की जगह तलाशना । पुष्पाजी के स्त्री पात्र हमें सोचने के लिए प्रेरित करते है । स्त्री की आत्मनिर्भरता से उसकी यातनाओं का अंत एक हद तक होगा । लेखिका ने 'विज़न' उपन्यास में सशक्त स्त्री पत्रों का गठन किया है । पुरुषों और स्त्रियों को स्वंतत्र स्तर पर प्रतिष्ठित होकर उनके व्यक्तित्व विकास कायम करना चाहिए ।

'विज़न' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जो अपने समय के समाज को बेहद ईमानदारी से प्रस्तुत करता है । शीर्षक से व्यंजनार्थक धवनि सूचित होता है । इसमें दिल्ली और आगरा की महँगी ज़िन्दगी, शिक्षित वेतनधारी मध्यवर्ग, चिकित्सा क्षेत्र की गन्दी व्यावसायिक वृत्ति ,विद्रोही नौकरीपेशा नारी आदि का चित्रण हुआ है । उच्च और प्रतिष्ठित वातावरण में भी स्त्री सुरक्षित नहीं है । आज की परिस्थिति में अँधा वह नहीं है जो नहीं देख सकता बल्कि अँधा वह है जो देखना नहीं चाहता है । मेड़िकल कॉलेज में डोनेशन से डॉ शरण के बेटे अजय की भर्ती होती है । लेकिन प्रोफेशन में वह नाकामयाब सिद्ध होते है । हमारे देश का कानून जो अँधा हैं उसका चित्रण लेखिका इस उपन्यास में करती है । नियुक्तियों में जो भ्रष्टाचार और विद्रूपताएँ है उसका पोल उखाड़ने का प्रयत्न लेखिका ने किया है । लेखिका नेत्र चिकित्सा के ज़रिये समाज की आँखों में ऐसा लेंस रखना चाहती है जिससे हम सामाजिक विद्रूपताओं को स्पष्टता से देख सकें । शोषण हर क्षेत्र में एक अभिन्न अंग बना है । महानगरीय जीवन का परिचय इस उपन्यास में हुआ है । डॉ. आर. ई शरण, डॉ अजय वर्मा और डॉ. चोपड़ा जैसे लोगों के मन और मस्तिष्क की चिकित्सा की ज़रुरत है । लेखिका यहाँ दृष्टि की अपेक्षा दृष्टिकोण की अनिवार्यता पर बल देती हैं । स्त्री लेखिकाओं ने अपने औपन्यसिक रचना द्वारा नारी की राष्ट्रीय अस्मिता को बनाया है । सोच और सृजन के साथ गहरी संलग्नता मैत्रयी जी की खासियत है । आपकी नारियाँ अंगारों के बीच दहकती है। नारी के द्वंद को उभारने की कोशिश की है। डॉ. नेहा और डॉ. आभा दोनों ही कुशल मेधावी ,संभावनाओं से भरपूर नारियाँ हैं । लेकिन नेहा मानसिक रूप से विद्रोही है मगर व्यावहारिक रूप से समझौता करनेवाली नारी है। वे व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसी हुई है। योग्यता

और प्रतिभा होने के बावजूद भी उसके परिवार में उसका दोयम दर्जा है। वह विवेकशून्य नहीं बल्कि अच्छी बहु, अच्छी लड़की जैसे विशेषणों को उतारना नहीं चाहती थी। उनकी सारी आवाज़ उसके मन तक सीमित रहती है। आगे का सारा अवसर उसे गँवानी पड़ती है। लेकिन आभा इससे अलग एक व्यक्तित्व वाली नारी है। वह अपनी अस्मिता की तलाश करना और समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है। वह पुरुषवादी अहम् का सामना करती हुई बड़े चुनौतीपूर्ण ढंग से अपना रास्ता तय करती है और विजयी भी होती है। वह अपने करियर और आत्मसम्मान त्यागना नहीं चाहती। उसे अपनी नौकरी से हाथ धोनी पड़ी लेकिन थकती नहीं। इस प्रकार लेखिका ने शिक्षा प्राप्त आधुनिक महिलाओं के द्वंद को उभारा है। इस उपन्यास के ज़रिये लेखिका वर्तमान सामाजिक विद्रूपताओं को देखने की दृष्टि प्रदान करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 21 वीं शती के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यास – प्रो. सतीश पटेल & प्रो. शीला पटेल , सरस्वती प्रकाशन कानपुर – 21
2.हिंदी उपन्यास जनवादी परंपरा –कुंवरपाल सिंह , नवचेतन प्रकाशन , दिल्ली -110059

डॉ. लीना बी.एल
सहायक प्राचार्य
हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय

****

28

समकानीन यथार्थ से मुठभेड़ करता उपन्यास

गूँगी रुलाई का कोरस

प्रो. (डॉ.) एस.आर.जयश्री

''उपन्यास के पाठ में यह बात निहित होती है कि मनुष्य अकेला नहीं जीता है, उसका एक अतीत, वर्तमान और भविष्य होता है । उपन्यास यह भी सिद्ध करता है कि इतिहास के बिना कोई समाज नहीं होता और समाज के बिना इतिहास भी नहीं होता । इतिहास वह कथा रूप है जो ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से परिभाषित मनुष्य की पुनः प्रस्तुति करता है ।'' - मिशेल जोसफ

पिछले दो-तीन दशकों से भारतीय समाज के ढाँचे में बदलाव हुए हैं । ये बदलाव जल्दी से घटित नहीं हुए हैं । विज्ञान-प्रौद्योगिकी और वाणिज्य-व्यापार से वैश्वीकरण का जटिल संबंध है । इन दोनों ने मिलकर संचार-क्रांति को बढ़ावा दिया । इसकी भूमिका इतनी जटिल हो गयी कि इससे हटकर एक अलग सामाजिक अस्तित्व रूपायित नहीं कर सकते । इसके फलस्वरूप ग्लोबल और लोकल परस्पर विरोधी लगते हैं, साथ ही एक ही प्रक्रिया के अंग बन गए हैं । इसलिए केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ चलने लगीं । मतलब है- एकरूपता, वर्चस्व, सांस्कृतिक दमन, स्थानीयता और जड़ता का बढ़ावा हुआ । इसके समानांतर साम्राज्यवाद की लहरें अधिक तीव्र हो गईं । ''साम्राज्यवाद इतिहास की स्मृति बनता चला गया । लेकिन इधर भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, मीडिया क्रांति से फिर साम्राज्यवाद का एक नया

भयानक चेहरा नव सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के रूप में उभर रहा है जिसे लेकर आज एशिया बेचैन है । सबसे बड़ा बाज़ार भारत होने के कारण यहाँ शोषण के साँप की जीभ चौगुनी ताकत से लपलपा रही है और अमेरिकन साम्राज्यवाद का प्रभुत्व बढ़ रहा है ।"[1] इससे पूँजीवाद के नवसाम्राज्यवादीकरण के असर ने भारतीय समाज में विषमता बढ़ायी है । अंग्रेज़ी शासन के युग में शासकों ने शासन करने की सुविधा के लिए अनेक योजनाएँ बनायीं । हिंदुओं और मुसलामानों ने अभिजातवर्गों के आधार पर सांप्रदायिकता का प्रयोग किया । सामंतवाद और धर्मांधता दोनों पिछड़ी विचारधाराएँ हैं । यह सांप्रदायिकता अंग्रेज़ों की देन थी । आज इसका तरीका बदल गया है । आज का साम्राज्यवाद तो सभी पिछड़ी हुई शक्तियों तथा प्रवृत्तियों का इस्तेमाल कर रहा है । तानाशाही और धर्मांधता को मिलाकर नव सांप्रदायिकता को जन्म दिया है । इसका असर पूरे वैश्विक समाज पर हो रहा है । भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन में इसका प्रभाव देख सकते हैं । अजय तिवारी ने लिखा है- ''भूमंडलीकरण के कारण पश्चिमी मूल्यों का प्रसार मध्यवर्ग को अपने सांस्कृतिक अलगाव के प्रति और अधिक उद्धृत और आग्रही बनाता है । आर्थिक संकट और भविष्यहीनता के कारण जो उत्तेजना जन्म लेती है, वह उस मोह और आकर्षण को प्रतिशोध भाव से भरती जाती है । संस्कृति, परंपरा और अतीत के मूल्यों को धर्म से गड्डमड्ड करना आसान है । 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' इसी आसान नुस्खे से लोगों की भावना को उत्तेजित करता है । सच पूछा जाए तो धर्म को संस्कृति और राष्ट्रीयता का आधार बनाते समय वह आर्थिक, मानवीय और सांस्कृतिक संबंध चेतना को पृष्ठभूमि में ठेल देता है और उत्पीड़क-उत्पीड़ित को एक करके, भाषाई संस्कृतियों का अंतर मिटाकर धर्म के माध्यम से एकीकृत सामुदायिक पहचान निर्मित करता है । यह सामुदायिक पहचान प्रतिशोध भाववाली मानसिकता से जुड़कर अन्य धार्मिक समुदायों के प्रति घृणा और उत्तेजना में प्रतिफलित होती है

। इस दृष्टि से, भूमंडलीकरण द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद द्वारा प्रस्तावित समाधान से अंतरूनी संबंध स्पष्ट हो जाता है ।''[2] इससे सांस्कृतिक स्तर पर खतरनाक स्थिति पैदा हुई है । भाषाई, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में बहुलता के बजाय कट्टरता का माहौल मौजूद है । हर क्षेत्र में माने धर्म, भाषा, कला, संगीत जैसे सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में असुरक्षाबोध का वर्चस्व है ।इसका नतीजा यह हुआ कि समावेशी विकास की संभावना भी अवरुद्ध हो गयी ।

समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य सामाजिक संरचना से गहरा संबंध स्थापित कर रहा है । लेखकीय संवेदना से पाठकीय संवेदना के रिश्ते की अहम भूमिका का निर्माण भी करता है । उपन्यास के टेक्स्ट, प्रयोग,ऐतिहासिकता, सांस्कृतिक तथा सामाजिकता को उनमें महत्व है ।हरेक लेखक अपने-अपने पोलिटिकल फिलोसोफी का व्यक्त चित्रण भी पाठकों के सामने रखता है । लेकिन भी समकालीन शब्द को परिभाषित करके ही समकालीन उपन्यास का पाठ और चिंतन, मनन, विश्लेषण संभव होंगे । आज के समय और काल से व्यक्ति का अनुभव जुड़ा हुआ है । मतलब है कि समकालीन अनुभवों से रूपायित भाव विशेष है, समकालीनता । समकालीन उपन्यास में यह अनुभूति विशेष प्रतिबिंबित है । 1990 के बाद के उपन्यास की रचनात्मक विशेषताओं तथा आख्यान शैली के उपन्यास की समकालीनता को आत्मसात कर सकते हैं । तत्कालीन समय की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विसंगतियों तथा विडंबनाओं की अभिव्यक्ति है । मानव के व्यक्तित्व, अस्तित्व, स्थल, काल, देश सबसे संबंधित तथा सबों में आए परिवर्तन को समकालीन हिंदी उपन्यास अभिसंबोधन कर रहा है ।मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है-''उपन्यास केवल एक साहित्यिक रूप नहीं है, वह जीवन जगत को देखने की एक विशिष्ट दृष्टि है और मानव-जीवन तथा समाज का एक विशिष्ट बोध भी । उपन्यास का इतिहास

इस दृष्टि और बोध के परिवर्तन का इतिहास भी है, वह केवल इतिहास के बदलते रूपों का इतिहास नहीं है ।''[3]

रणेंद्र ऐसे रचनाकार हैं वे तत्कालीन समय के सामजिक संरचना पर अपना रचनात्मक हस्तक्षेप करके समकालीनता के वैचारिक तथा अनुभूति पक्ष को सुव्यवस्थित ढंग से अभिव्यक्ति देते हैं । उन्होंने अपनी रचनाओं में वैश्वीकरण की नहीं, वैश्वीकरण की वैश्विक स्थिति की तमाम जटिलताओं को समग्रता से उपस्थित किया है । बदलते सामाजिक स्वरूप का विवेचन –विश्लेषण करना साहित्यकार का दायित्व है । उस दायित्व को निभाने में सक्षम साहित्यकार वह है जो समाज की गतिशीलता को समझता है । 'ग्लोबल गाँव के देवता',(2009)'गायब होता देश'(2014) और 2021 में प्रकाशित 'गूँगी रुलाई का कोरस' तीनों उपन्यासों में रणेंद्रजी ने समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करके उसकी वास्तविकता को समाज के सामने रखा है तथा एक प्रतिसंस्कृति की रचना भी आपने की है । प्रथम दो उपन्यासों में आदिवासी जीवन के परिप्रेक्ष्य में सत्ता तथा कॉरपोरेट तंत्र के मुनाफ़ा केंद्रित आखेट का पर्दाफाश किया है । अनेक प्रकार की चुनौतियों का एकदम अलग अंदाज़ 'गूँगी रुलाई का कोरस'उपन्यास में देखने को मिलता है । भारतीय समाज में हुए ठोस बदलाव को रणेंद्र ने इस उपन्यास में उकेरा है । सांप्रदायिकता की परतों को उघाड़कर उसके भीतर की खतरनाक स्थिति के चित्रण से रणेंद्र ने उपन्यास की बनावट और बुनावट को आकार दिया है । ''भारतीय जन जीवन का लंबा दौर ऐसा ही रहा जिसमें हिंदू और मुस्लिम धर्म के अति-साधारण लोग बिना किसी वैचारिक आग्रह या सचेत प्रमाण के, जीवन की सहज धारा में रहते-बहते एक साझा सांस्कृतिक इकाई के रूप में विकसित हो रहे थे । एक साझा समाज का निर्माण कर रहे थे,जो विभाजन-प्रेमी ताकतें बीच में न खड़ी होतीं तो एक विशिष्ट समाज रचना के रूप में विश्व के सामने आता । हमारे गाँवों, शहरों

और छोटे कस्बों में आज भी इसके अवशेष मिल जाते हैं । परंपरा का एक बड़ा हिस्सा तो उसके ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में हमारे पास है ही ।''[4] इस उपन्यास के केंद्र में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत है । यह उस्ताद मह्ताबुद्दीन खान की चार पीढियों की कथा नहीं, विश्व की कथा है । संगीत की पृष्ठभूमि में देशकाल एवं वर्तमान सामाजिक स्थिति का मेलजोल है । मीड़िया, सामाजिक माध्यम और राजनीति का गठबंधन है । बहुलता के देश में एकल संस्कृति का खतरनाक माहौल उपस्थित हो रहा है । विभिन्न कथा संदर्भों तथा चरित्रों के माध्यम से वर्तमान दौर की इन समूची गतिविधियों का उद्घाटन उपन्यास में हुआ है । ''बाल्कनी के सामने सड़क के उस पार मौसिक़ी मंज़िल से अम्मू की रुलाई हमारे अपार्टमेंट के कोने-कोने को सिहरा रही है । सबकी नींद उचट गयी है । रुलाई कम नहीं हो रही, उसकी ध्वनि कम-ज़्यादा होती है । रुलाई की इन लहरों की मौजूदगी चारों ओर हृदयों में हूक जगा रही थी ।''[5] यह मौसिक़ी मंज़िल केवल एक मकान नहीं है । इस मकान का अर्थ विस्तार है । रो रही अम्मू शब्बो भाभी की अम्मीजान मात्र नहीं है, सबों की अम्मू है । सांप्रदायिकता की ताकत ने संगीत के लिए समर्पित चार पीढियों की ज़िंदगी में घुसपैठ किया है ।चार पीढियाँ धर्म,समुदाय आदि से परे हैं, इंसानियत और संगीत में लीन हैं । मौसिक़ी मंज़िल के संगीत का विस्तार बंगलादेश से लेकर पाकिस्तान तक है । बाबा गोरखनाथ की परंपरा के जोगियों से लेकर बंगाल के बाउलों तथा संगीत के विविध घरानों से संबंध जोड़ा है । संगीत की इंसानियत और भाईचारे की भावना है इसमें ।अम्मू के दादा मरहम उस्ताद मह्ताबुद्दीन खान के बड़े भाई, बड़े बाबा अलाउद्दीन खान ने छोटी उम्र में मौसीकी लौ लगी । किंतु नानू अयूबखान ने मौसीकी तालीम दी । इस औलिया फ़कीर के साथ एक शाप छाया की तरह साथ-साथ चलती थी । देश में कहीं भी कोई बलवा होनेवाला होता तो उनके एकतारे को उसकी खबर लग जाती । फिर जोगियों का झुंड चल पड़ता । हर कहीं जान जोखिम

में डाल किसी बच्चे-बूढ़े को बचाते । 1965 का गुजरात दंगा, 1976 का तुर्कमान गेट, 1984 के सिक्ख विरोधी दंगे आदि के उल्लेख से उपन्यास की संरचना के भीतर अनेक प्रकार के संबंधों की क्रियाशीलता को अभिव्यक्त किया है ।

सामूहिकता का जो सपना भारतीयों पर है, उस सपने को लेखक ने साक्षात्कृत किया है । निरंतर चलने वाला यह सपना इस उपन्यास के हर पात्र पर है । पिछले कुछ वर्षों से इस परिवार पर पड़नेवाली विपदाओं ने उस परिवार को विशिष्ट किया है । लेकिन उस परिवार को ही नहीं संपूर्ण भारतीय सामाजिक चेतना को कुछ सालों से ऐसी घटनाएँ विशिष्ट कर रही हैं । मौसिक़ी मंज़िल में पहले नानू, अब्बू, फिर कमोल बाबा की हत्या हुई । कमोल कबीर की लाश रेल की पटरियों के किनारे पड़ी है । पुलिस आत्महत्या बता रही है । लेकिन अपने गाँववाले स्टेशन से दस फर्लांग पर पहले कोई चलती ट्रेन से छलांग लगाकर आत्महत्या क्यों करेगा । सुआर्यन जागरण सेना और भगवान कच्छप रक्षा सेना की हरकतों से वह बेचैन था । लेकिन वह किसी तनाव में या डरा हुआ तो नहीं था । उसने आत्महत्या नहीं की है, इसकी तो गारंटी है । लेकिन सवाल यह भी है कि अगर हत्या हुई तो किसने करवाई ।यह सवाल पूरे उपन्यास की संरचना पर छा गयी है—"नानू पर गोली चलाते समय कुछ शुद्ध करने की बात चिल्ला-चिल्लाकर कही गयी थी । म्लेच्छों से माँ शारदा के मंन्दिर को शुद्ध करने की बात भी हुई । किसे म्लेच्छ कहा है,किस शुद्धि की बात हो रही है,नानू उस्ताद अय्यूब खान ने अपनी पूरी ज़िंदगी हिन्दुस्तानी मौसीकी की इबादत में गुज़ारी थी । अमीर खुसरो से लेकर शबनम खान तक हज़ारों-हज़ार उस्तादों —खान साहबों ने केवल मौसीकी से मुहब्बत की, इबादत की ओर ईश्वर और अल्लाह में फर्क नहीं किया । हरि ओम तत्सत गाते तो लगता बन्द पलकों की ओट में स्वयं भगवान विष्णु शेषशय्या पर लेटकर आनंदित हो रहे हो । जायसी , रहीम, खानखाना,रसखान, हब्बा खातून

और न जाने कौन-कौन, एक लंबी सूची पागलों की जिन्होंने कृष्ण के प्यार में पड़कर अजर-अमर भजन गान—कविता रच डालीं । अगर ये सभी म्लेच्छ थे तो इनकी रचनाएँ भी अशुद्ध थीं । इन सबको भी समझना पडेगा कि इन सबको वापस लिया जाए । हमें आपकी, आपके कवित्त, आपके भजन और आपके गान की ज़रूरत नहीं है । हमें शुद्ध,पवित्र सामगान-प्रबन्ध गान ही चाहिए । उससे आगे की म्लेच्छों की रचना और उनका गान, वादन ,नाचकुछ भी नहीं ।"[6] इस देश में आज़ादी की लड़ाई और आज़ादी मिलने के बाद उसके गर्दन के जुनून में इस नज़रिए को कुछ खास तवज्ञो नहीं मिली । विदेशी पौधा इस देश की मिट्टी में पकड़ नहीं पा रहा था । किंतु अब बदल गया है । वह ज़हरीला पौधा छतनार गाछ में तब्दील हो गया है । ये तरक्की पसंद, गंगा जमुनी तहज़ीब को जीनेवाले एक्टिविस्टों, लेखकों-शायरों-अफ़सानानिगारों के क़त्ल में भी गुरेज नहीं कर रहे । ये लोग पूर्ण में खान साहब और उनके साथी की हत्या करने के पहले महाराष्ट्र और कर्नाटक में कई हत्याओं को अंजाम दे चुके थे । अम्मू का मर्मस्पर्शी विलाप सिर्फ उस परिवार के सदस्यों के वजूद को सूखे पत्ते की तरह कंपाता नहीं है,बल्कि भारत के हरेक नागरिक के अस्तित्व पर खतरा पैदा कर रहा है । मौसिक़ी मंज़िल को उजाड़ने के लिए उसपर नज़र डालनेवालों का लक्ष्य क्या है-पूरे उपन्यास की घटनाएँ यह साफ़-साफ़ बताती हैं । ये घटनाएँ भारत में कुछ सालों से हो रही हैं । भारत के हर नागरिक इस परिवेश से परिचित हैं । उपन्यास के कई संदर्भों से व्यक्त भी है कि चार पीढ़ियाँ सात सदस्यों की कथा नहीं है । विश्व की कथा है । धर्म संप्रदाय, फाजीवाद , जाति, मीडिया , बाज़ारवाद, राष्ट्र-राष्ट्रवाद सबका असर है ।सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का विश्लेषण करते हुए उन्होंने व्यक्त किया है कि हिंदुस्तानी संगीत के इतिहास को सांप्रदायिकता के आधार पर कभी नहीं बाँटा जा सकता है । सांप्रदायिकता के प्रसार के विरोध में जन चेतना के प्रसार का आह्वान करते हैं लेखक । प्रत्येक पात्र की दृष्टि और स्वतंत्र

सत्ता से मानवीय गरिमा का निर्माण हुआ है । उपन्यास की संवादधर्मिता, अनेकता और विविधता ने पाठक का, उपन्यास से विशेष संबंध स्थापित किया है ।

संदर्भ :-

1. समकलीन साहित्य विमर्श – कृष्णदत्त पालीवाल –पृ 140

2. संचार, बाज़ार और भूमंडलीकरण- अजय तिवारी, पृ.56

3.संकलित निबंध – मैनेजर पाण्डेय – 56

4 'गूँगी रुलाई का कोरस',रणेंद्र, उपन्यास की भूमिका से

Prof (DR) S.R Jayasree

Department of Hindi

University of Kerala

****